डा. बाबासाहब आंबेडकर

राष्ट्रीय जीवन-चरित

डा. बाबासाहब आंबेडकर

लेखक

वसंत मून

अनुवाद

प्रशांत पांडे

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

1

व्यक्ति का जन्म उसके वश की बात नहीं है। उसके पैदा होते ही जाति, वंश और धर्म उससे जुड़ जाते हैं। इनसे उसकी मुक्ति नहीं है। परंतु कर्म ही उसके जीवन को बनाता-बिगाड़ता है। काम करने की योग्यता, उसका कर्म या तो उसे अपयश की खाई में गिराता है या फिर उसे ख्याति के उच्च शिखर पर पहुंचाने का सौभाग्य प्रदान करता है। संसार के महापुरुषों के चरित्रों का अध्ययन करते समय यह बात हमारे ध्यान में अवश्य आती है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से महान नहीं होता। यह महानता उसे अपने जीवन में त्याग और परिश्रम की भारी पूंजी लगाकर प्राप्त करनी होती है। इसीलिए महाभारत में कर्ण के मुख से जो उक्ति कहलवाई गयी है, यह अत्यंत उपयुक्त है—

दैवायत्तं कुले जन्म
मदायत्तं तु पौरुषम्

कर्ण को राधेय कहकर, सूतपुत्र विशेषण से संबोधित कर, अपमानित किया जाता था। किंतु जिस कुल में उसका जन्म हुआ उसे भले ही कितना भी हीन घोषित कर दिया गया हो उसमें कर्ण का क्या दोष है ? कर्ण को इसका पूरा बोध था कि अपना पुरुषार्थ दिखाना तो उसके हाथ की बात है। इसीलिए जब भी दानशीलता और पुरुषार्थ की पराकाष्ठा की उपमा देनी हो तो कर्ण को ही याद किया जाता है। अमेरिका और रूस विश्व के दो शक्तिशाली देश हैं। इन दोनों देशों के प्रमुख निर्माताओं के रूप में रूस के एक समय के सर्वेसर्वा स्टालिन और अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का नाम लेना पड़ता है ये दोनों ही महापुरुष एक साधारण से परिवार में पैदा हुए थे। स्टालिन का जन्म एक चर्मकार के घर में हुआ था। लिंकन भी एक फलों के बाग में बागवानी करने वाली एक जारज महिला की संतान थे। किंतु इन दोनों व्यक्तियों के विकास में सामाजिक गुलामी की बेड़ियों ने बाधा नहीं पहुंचाई थी। बाबासाहब आंबेडकर अस्पृश्य मानी जाने वाली महार जाति में पैदा हुए थे। इसलिए उनके लिए जन्म से ही सामाजिक वातावरण लिंकन और स्टालिन से विपरीत था। फिर भी उन्होंने इस देश के जनजीवन में जो क्रांति पैदा की, उसकी कोई मिसाल नहीं है। उसे अद्वितीय ही कहना होगा।

अब्राहम लिंकन ने अमेरिका के उत्तरी और दक्षिणी भागों को एकता के सूत्र में बांधकर—वहां के काले और गोरों के भेद को सबसे पहले समाप्त किया और अमेरिका में प्रथम बार लोकतांत्रिक राज्य-प्रणाली की नींव डाली। उसके विपरीत स्टालिन ने व्यक्ति स्वातंत्र्य का विरोध कर सारे राज्य में समाज सत्तावादी अर्थव्यवस्था को स्थापित किया। डा. आंबेडकर ने प्रजातंत्र और साम्यवाद में समन्वय स्थापित करने का स्वप्न साकार करने का प्रयास किया। उन्होंने हजारों वर्षों से हिंदू धर्म द्वारा मान्य अस्पृश्यता को कानून के बल पर नष्ट करवाया। उन्होंने इस देश में जन-जन में निर्माण किये गये भेदों को मिटाकर समान अधिकारों को स्थापित करने वाला संविधान प्रदान किया और ढाई हजार बरसों के बाद पहली बार प्रजातंत्र के मूल्यों की नींव रखी। ऐसे अभूतपूर्व व्यक्तित्व के धनी डा. आंबेडकर का जीवन जितना रोमहर्षक और संघर्षमय है उतना ही वह शिक्षाप्रद भी है।

डा. बाबासाहब आंबेडकर का पूरा नाम है भीमराव रामजी आंबेडकर। उनका पैतृक स्थान रत्नागिरी जिले के मंडणगड तहसील में एक छोटा-सा ग्राम आंबवडे है। भीमराव की माता का नाम था भीमाबाई और पिताजी का रामजी वल्द मालोजी सकपाल। महाराष्ट्र में अपनी वीरता, पराक्रम और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध, प्रभावशाली, अस्पृश्य कहलाये जाने वाली महार जाति में उन्होंने जन्म लिया था।

भीमराव के दादा मालोजी सेना में हवलदार के ओहदे तक पहुंचे थे। परिवार के लड़के-लड़कियों के लिए दिन में पाठशाला लगती थी और प्रौढ़ लोगों के लिए रात्रि में कक्षाएं चलती थीं। इस पाठशाला में रामजी सूबेदार ने प्रधान-अध्यापक के रूप में चौदह सालों तक काम किया। जब वे फौज में थे, तब लक्ष्मण मुरबाडकर से उनकी घनिष्टता हुई और मुरबाडकर ने अपनी कन्या भीमाबाई का विवाह रामजी के साथ संपन्न करवाया।

भीमाबाई संपन्न धनी परिवार में पली थीं। परंतु रामजी को पुणे शहर में शिक्षक-प्रशिक्षण केंद्र में, शिक्षक का काम करते समय बहुत कम वेतन मिलता था। उसमें से कुछ ही रकम वे भीमाबाई को मुंबई भिजवा सकते थे। इसलिए भीमाबाई ने बहुत ही अभावग्रस्त परिस्थितियों में दिन बताये। सन् 1890 तक रामजी को तेरह संतानें हुईं।

जब रामजी सूबेदार की फौजी टुकड़ी मध्यप्रदेश स्थित महू की छावनी में थी तब 14 अप्रैल 1891 को भीमाबाई को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उस नवजात शिशु का नाम भीम रखा गया। परिवारजन उसे 'भीवा' कहकर पुकारा करते थे। एक दो साल बाद

रामजी सेना से सेवानिवृत्त हुए और उन्होंने रत्नागिरी तहसील में कापदापोली गांव में अन्य सेवानिवृत्त सैनिकों के साथ स्थायी रूप से रहने के लिए प्रस्थान किया।

सन् 1894 के आसपास दापोली नगर परिषद की पाठशालाओं में अस्पृश्य विद्यार्थियों का प्रवेश निषेध था। उसके विरुद्ध अस्पृश्य पेंशनरों ने जिलाधीश के पास अर्जी पेश की। अपनी अर्जी में रामजी सूबेदार ने अपने रहने के लिये जगह की भी मांग की। जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि दापोली में अपने बच्चों को पाठशाला में भर्ती कराना संभव नहीं है तो रामजी सूबेदार अपने परिवार सहित मुंबई में आ बसे। वहां से उन्होंने सेना के अधिकारियों को निवेदनपत्र भेजे और फलस्वरूप सातारा पी. डब्ल्यू. डी. के दफ्तर में स्टोर-कीपर की नौकरी प्राप्त की। सातारा की फौजी छावनी में बसे कोंकणवासी महार पेंशनर परिवारों के साथ रहते हुए भीम का बचपन बीता। उनकी प्राथमिक शिक्षा भी यहीं संपन्न हुई।

बचपन में भीम बहुत ही शरारती था। पास के वटवृक्ष पर रोज ही 'सूरपारब्या' खेल खेलने और झगड़े मोल लेने, मारपीट करने, ऊधम मचाने और बखेड़े खड़े करने के मारे, घर के लोगों को भी भीम के इन झमेलों को सुलझाते-सुलझाते मुसीबत हो जाती थी। जब भीम छह साल का हुआ तो मां की मृत्यु हो जाने से वह ममता की छत्रछाया से वंचित हो गया। उसके बाद अपंग बुआ मीराबाई ने ही भीम का लालन पालन किया।

सूबेदार रामजी कबीरपंथी थे। वे रोज अपने बच्चों से भजन, अभंग और दोहों का पाठ करवाते थे। सुबह उठकर वे बच्चों से उनका अभ्यास करवा लेते, इसलिए भीमराव के मन पर धार्मिक शिक्षा के संस्कारों की भी गहरी छाप पड़ी थी।

भीमराव के अस्पृश्य होते हुए भी उनके प्रति स्नेह रखने वाले कुछ अध्यापक भी थे। आंबेडकर उपनाम वाले एक ब्राह्मण शिक्षक ने उन्हें अपना कुल-नाम ही नहीं दिया, बल्कि दोपहर की छुट्टी में वे भीमराव को खाने के लिए रोटियां भी दिया करते थे। सन् 1927 के करीब जब आंबेडकर मास्टर उनसे मिलने आये तो बाबासाहब उन्हें देखकर गद्‌गद हो गये, उनका गला भर आया। बाबासाहब ने बहुत दिनों तक मास्टर साहब का प्रेम से ओतप्रोत एक पत्र अपने पास संभाल कर रखा था।

7 नवंबर, 1900 के दिन भीवा को वहां के हाईस्कूल में अंग्रेजी की पहली कक्षा में प्रवेश मिला। एक दिन पाठशाला से छुट्टी पाने के लिए भीवा बरसात में भीगता हुआ स्कूल पहुंचा। पेंडसे नामक शिक्षक महोदय ने उसे अपने घर भिजवाकर पहनने के लिए लंगोटी और ओढ़ने के लिए अंगोछा दिलवाया और उसे कक्षा में बैठने का

आदेश दिया। उस दिन भीवा ने अपने स्वभाव के हठीलेपन को तिलांजलि देने का निश्चय किया, परंतु उसके जीवन की घटनाओं से यह प्रतीत नहीं होता कि स्वभाव के हठीपन ने हार मान ली हो।

बचपन में भीवा को सातारा में रहते हुए अस्पृश्यता के प्रहारों को सहन करना पड़ता था। उसके सिर के बाल काटने के लिए कोई हज्जाम तैयार नहीं होता था। इसलिए उसकी बड़ी बहन ही उसकी हजामत बनाया करती थी। अकाल के दिनों में रामजी सूबेदार को गोरेगांव के पास काम पर तैनात किया गया था। उनके बच्चे सातारा में रहते थे। एक बार भीम अपने भाई और भांजों को साथ लेकर रेलगाड़ी से गोरेगांव पहुंचा। मगर स्टेशन से गांव तक पहुंचने के लिए उसे और साथियों को, अछूत होने के कारण कोई गाड़ीवान अपनी गाड़ी में ले जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। आखिर एक बैलगाड़ी वाला मान गया, मगर बैलगाड़ी भीम को हांकनी पड़ी। गाड़ीवान गाड़ी पर विराजमान अवश्य था, लेकिन अस्पृश्य के लिए गाड़ी हांकना उसको अपनी आन के खिलाफ लग रहा था। किसी को भी इन बच्चों पर दया नहीं आयी, उन्हें डेढ़ दिन बिना पानी के गुजारा करना पड़ा, क्योंकि अछूत होने के कारण उन्हें किसी भी कुएं से पानी पीने को नहीं मिल सका। दूसरे दिन भीम और उनके साथी भूखे-प्यासे अधमरे से अपने गंतव्य तक पहुंचे। एक बार अध्यापक ने भीम को ब्लैकबोर्ड पर रेखा-गणित के एक सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए बुलाया तो सारे विद्यार्थियों ने शोरगुल मचाकर उस ब्लैकबोर्ड के पास रखे गये अपने खाने के डिब्बों को वहां से तुरंत हटा लिया ताकि वे अपवित्र न हो जाएं और उसके बाद ही भीम उस सूत्र को ब्लैकबोर्ड पर सिद्ध कर सका। इस प्रकार की अपमानजनक घटनाओं से भीम का मन विद्रोह करने के लिए उद्यत हो उठा था। सन् 1904 में भीवा के चौथी अंग्रेजी की परीक्षा उत्तीर्ण होते ही सूबेदार रामजी अपने परिवार को मुंबई ले गये और परेल मौहल्ले में डबक चाल में घर लेकर वहां पहले से बसे हुए कोंकणवासी महार परिवार के साथ रहने लगे। भीवा को सरकारी एल्फिंस्टन हाईस्कूल में नवम वर्ग में भरती करवा दिया।

इस बीच रामजी ने दूसरा विवाह किया। भीवा को अपनी माता के आभूषण सौतेली मां के शरीर पर देखकर बहुत ही रोष हुआ। तब से उसका मन घर से खट्टा होने लगा और एक दिन जीवन से विरक्त होकर सिद्धार्थ की तरह वह घर छोड़कर चला भी गया। मगर फिर उसे अपने जीवन के लक्ष्य की अभिज्ञता का बोध हुआ और वह जल्द ही घर वापिस लौट आया। जब वह लौटा तो अपने सब आत्मीय जनों,

नाते-रिश्तेदारों के चिंतातुर चेहरों और डबडबाई आंखों को देखना उसके लिए असहनीय हो गया।

जैसे जैसे वह ऊपरी कक्षाओं में प्रवेश कर रहा था, उसके स्वभाव का हठीलापन, उतावलापन और शरारतीपन कम होने लगा और वह अध्ययन की ओर ध्यान देने लगा। पाठशाला के छूटते ही वह चर्नीरोड गार्डन में जाकर पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों का अध्ययन करता रहता था। उसी उद्यान में कृ. अ. केलूसकर गुरुजी भी संध्या समय पधारा करते तथा अपने अध्ययन में लीन रहते। एक दिन उन्होंने भीम से पूछताछ की और उसे पठन-पाठन के लिये पुस्तकों के चयन का मार्गदर्शन किया।

एल्फिस्टन हाई स्कूल में पढ़ते समय ही उसके पिता रामजी सूबेदार ने भीवा की शादी भिकू वलंगकर की पुत्री रमाबाई के साथ संपन्न की। विवाह के समय रमा की उम्र 9-10 साल थी और भीवा 17 साल का था।

उन दिनों मैट्रिक की परीक्षा बहुत कठिन मानी जाती थी। अस्पृश्य छात्रों में मैट्रिक की परीक्षा पास करने वाला भीमराव पहला विद्यार्थी था। डबक की चाल के निवासियों ने उसका अभिनंदन करने के लिए एक समारोह का आयोजन किया था। इस सत्कार समारोह में केलूसकर गुरुजी ने मराठी में स्वरचित भगवान बुद्ध के आत्मचरित्र की पुस्तक भीवा को पुरस्कार के रूप में भेंट की। साथ ही उन्होंने यह आश्वासन दिया कि वे उसकी आगामी शिक्षा के लिए बड़ौदा नरेश श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड़ से आर्थिक सहायता दिलवा देंगे। उन्होंने इसके बाद भीमराव की बड़ौदा नरेश से भेंट भी करवा दी। श्रीमंत गायकवाड़ ने 20 रुपये माहवार की छात्रवृत्ति भी स्वीकृत कर दी।

3 जनवरी 1908 के दिन भीवा को एल्फिस्टन कालेज में प्रवेश मिल गया। अब उसे अपनी जिम्मेदारी का बोध होने लगा था और उसका मन खेल में कम ही लगता था। उसने शेक्सपियर के नाटक 'किंग लियर' पर 'शहाणी मुलगी' नाम का एक प्रहसन भी एक बार प्रस्तुत किया था। संध्या समय वह क्रिकेट खेलने के लिए जाया करता था। परीक्षा के दिनों में, उसके पिताजी आधी रात में दो बजे उसे नींद से जगाकर पढ़ाई करने के लिए बैठा देते थे, जिससे उसका अध्ययन अच्छी तरह से हो सके। भीवा की पुस्तकों की इच्छा पूरी करने के लिए वे कभी कभी अपनी बिटिया के घर जाकर उसके गहने गिरवी रख देते थे।

उन दिनों एल्फिस्टन कालेज में धनी और उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक रहती थी। भीवा को अंग्रेजी और फारसी पर अच्छी प्रवीणता थी। इसलिए फारसी के उप-आचार्य के. वी. इरानी और अंग्रेजी के आचार्य प्रो. मुल्लर भीवा पर

अधिक स्नेह रखते थे। प्रो. मुल्लर तो भीवा से इतना प्रेम करते थे कि उसे अपने शर्ट भी दे दिया करते थे। उन दिनों एल्फिंस्टन कालेज में प्रो. ओसवाल्ड, मुल्लर, जार्ज अंडरसन, प्रिंसिपल कॉवर्नटन जैसे प्रसिद्ध प्रोफेसर थे। फिर भी भीवा के अंतकरण में नयी चेतना का निर्माण न हो सका, यह बात उतनी ही सच है। बाबासाहब के शब्दों में : "यद्यपि मैं विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में हर साल सफल होता रहा, फिर भी कभी दूसरी श्रेणी नहीं मिली। बी. ए. की परीक्षा में तो मेरी दूसरी श्रेणी कुछ ही अंकों के कारण मिलना रह गई।"[1]

उस समय अस्पृश्य समाज की दयनीय स्थिति और शिक्षा के प्रति उनकी उदासीनता पर यदि गौर किया जाये तो रामजी सूबेदार ने जिस लगन और उत्साह के साथ भीवा को बी. ए. तक पढ़ाया वह सचमुच प्रशंसनीय है। सन् 1912 के नवंबर मास में भीवा बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।

उसे 750 अंकों में से 280 अंक मिले। सब बेहद खुश हुए। उसकी पढ़ाई पर पिताजी ने जो अथक परिश्रम किया और जी जान से कोशिश कर खर्च का असहनीय भार भी वहन किया, उसके लिये बाबासाहब ने उनके बाद अपने पिताजी के प्रति अनेकों बार हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की है।

भीमराव आंबेडकर को कालेज में जो प्राप्तांक पत्र[2] मिला उसे यदि देखा जाये तो यह स्पष्ट है कि उनकी कभी भी पहली श्रेणी के विद्यार्थियों में गणना संभव न थी। किंतु केवल कालेज की शिक्षा ही इंसान की किस्मत का आइना नहीं है। यदि बी. ए. की स्नातक परीक्षा के प्राप्तांक पत्र के आधार पर किसी ने यह भविष्यवाणी की होती कि यह भीमराव आंबेडकर नाम का विद्यार्थी जग-प्रसिद्ध विद्वान होगा, नाम

---

1. भीवा ने प्रिंसिपल को यह सूचित किया था कि गणित विषय में मैं कमजोर होने के कारण इस नवंबर 1908 की परीक्षा में नहीं बैठूंगा। इस कारण उसका एक साल व्यर्थ गया। (कॉलेज रिकार्ड)
2. सन् 1909 में प्रीवियस के तेरह उत्तीर्ण विद्यार्थियों में से 884 अंकों में 282 अंक प्राप्त हुए। सन् 1910 की इंटरमीडियेट परीक्षा में भीमराव की विषयानुसार अंक-सूची निम्न प्रकार से है :–

	अंग्रेजी	फारसी	गणित	तर्कशास्त्र
कुल अंक	200	100	200	100
उत्तीर्ण होने के लिए आवश्यक अंक	60	30	60	30
प्राप्त अंक	69	52	60	42

(एल्फिंस्टन कॉलेज रिकार्ड फाइल्स में) कुल = 223/600

कमाएगा तो उसे पागल करार दिया जाता। लेकिन जब व्यक्ति की बुद्धिमत्ता और निपुणता को विस्तृत क्षेत्र मिलता है तो वह किस प्रकार खिल उठता है, इसका अंदाजा भीमराव के भावी जीवन से दृष्टिगोचर होता है।

बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद भीमराव ने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध नौकरी करने का निश्चय किया। उन्होंने बड़ौदा रियासत में प्रार्थना पत्र भेजा। उत्तर में उन्हें तुरंत ही बड़ौदा रियासत की सेना में लेफ्टिनेंट के पद पर नियुक्त कर कार्य ग्रहण करने का आदेश मिला। उन्हें वहां काम पर लगे लगभग 15 दिन ही हो पाये थे कि जनवरी 1913 में उन्हें अपने पिता की गंभीर बीमारी की सूचना तार से मिली। वे तुरंत ही बड़ौदा से रेलगाड़ी द्वारा रवाना हुए। मार्ग में सूरत स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी तो वे परिवार को देने के लिए मिठाई खरीदने गाड़ी से उतरे। इतने में ही गाड़ी चल दी और वे दूसरे दिन मुंबई पहुंच पाये। घर आने पर उन्हें मृत्यु-शैया पर पड़े अपने पिता के दर्शन हुए। ऐसा लगा मानो उनके पिता के प्राणपखेरू अपने बेटे को देखने के लिए ही रुके हुए थे। 2 फरवरी, 1913 को रामजी सूबेदार का देहावसान हो गया।

रामजी सूबेदार की मृत्यु के बाद भीमराव को अब अपने पैरों पर खड़े रहना आवश्यक हो गया था। किंतु वे अब अपनी नौकरी पर बड़ौदा नहीं जाना चाहते थे। इन्हीं दिनों बड़ौदा नरेश ने कुछ विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका भिजवाने का निश्चय किया। भीमराव ने नरेश के मुंबई स्थित राजवाड़े में उनसे भेंट की। महाराजा ने प्रार्थना-पत्र भेजने को कहा और 4 जून, 1913 के दिन भीमराव को बड़ौदा जाकर शिक्षा उपमंत्री के कार्यालय में संविदा पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस करारनामे के अंनुसार अपनी उच्च शिक्षा पूर्ण होते ही भीमराव को 10 वर्षों के लिए बड़ौदा राज्य की नौकरी में रहना आवश्यक था।

इसके बाद भीमराव ने तुरंत अमेरिका जाने की तैयारी की। बाइस वर्ष के एक अस्पृश्य युवक को अमेरिका जैसे उन्नत देश में ऊंची पढ़ाई का अवसर मिले, यह अपने में ही एक अलभ्य उपलब्धि थी। विश्व में जहां उच्चतर विद्यापीठ हैं, उच्चतम गगनचुंबी अट्टालिकाएं हैं, ऐसे देश के महान विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण करने भारत देश का एक निर्धन-सा विद्यार्थी जा रहा है।[1] शिक्षाविद् अमरनाथ झा ने उस समय यह कहा था।

जुलाई की बारह तारीख को आंबेडकर न्यूयार्क पहुंचे। उन्होंने अपने प्रवास में

1. बनौधा रामचन्द्र : आंबेडकर का जीवन संघर्ष, पृ. 19

अध्ययन के लिए बौद्ध धर्म के ग्रंथ रखे थे।[1] वे कुछ दिन कोलंबिया विद्यापीठ के हार्टले हॉल नामक छात्रावास में रहे। फिर वे 554 वेस्ट, मार्ग 144 स्थित कास्मॉपालिटन क्लब में भारतीय विद्यार्थियों के साथ रहने गये। इसके बाद वे नवल भतना नामक एक पारसी विद्यार्थी के साथ लिविंगस्टन हॉल छात्रावास में रहने लगे।

श्री भतना के साथ उनकी यह मित्रता जीवन भर कायम रही। वैसे अमेरिका में उनके एकमात्र मित्र सी. एस. देवल थे जिनके साथ वे घंटों चर्चा किया करते थे।[2]

1. बनौधा रामचन्द्र : आंबेडकर का जीवन संघर्ष, पृ. 17

2. बनौधा, रामचन्द्र : पृ. 17

अन्य चरित्र ग्रंथों में श्री देवल का उल्लेख नहीं है। किंतु बनौधा को दी हुई जानकारी स्वयं डा. आंबेडकर ने उन्हें बताई, यह बनौधा ने लिखा है।

2

जिस समय अन्य विद्यार्थी सिनेमा, शराब और सिगरेट पर पैसा बहाते थे, उन दिनों भीमराव पुस्तकें खरीदने के सिवा अन्य कोई खर्चा नहीं करते थे। शराब और सिगरेट को उन्होंने कभी स्पर्श तक नहीं किया था। केवल बचपन से लगी हुई चाय-पान की आदत वहां अवश्य बढ़ गयी थी। उन्हीं दिनों उन्हें अपनी आंखों पर चश्मा लगाना पड़ा था।

अमेरिका में रहते समय अपने जीवन में उन्हें तत्काल परिवर्तन प्रतीत हुआ। यहां का जीवन उनके मन को नवीन अनुभवों से ओत प्रोत कर रहा था। उनके मन की सीमाएं विस्तृत हो उठी थीं। उनकी ठोस भुजाएं, गठीला बदन और हृष्ट-पुष्ट शरीर देखकर अमेरिकी विद्यार्थी उन्हें आदरणीय मानने लगे। जब उन्हें पता चला कि भीमराव भारतीय प्रणाली का व्यायाम करते हैं तो वे उनसे व्यायाम विधि भी सीखने आने लगे।[1]

इस प्रकार की गुरुताप्राप्त परिस्थिति में उनकी लेखनी भी प्रौढ़ व्यक्ति के समान उपेदशात्मक पत्र लिखने लगी तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। जमेदार नामक व्यक्ति को लिखे गए पत्र में[2] उन्होंने शेक्सपियर के नाटक की कुछ पंक्तियां उद्धधृत करते हुए यह दर्शाया कि व्यक्ति के जीवन में अवसरों का समुद्र लहराता है। यदि वह उन अवसरों का सही उपयोग करे तो उस व्यक्ति को गरिमा प्राप्त होती है।" सामाजिक बुराइयों का रोग-निदान करते हुए वे कहते हैं, "माता-पिता अपनी संतान के केवल जन्मदाता हैं, वे उसके भाग्यदाता नहीं हैं। इस दैवी विधान को हमें तिलांजलि देनी होगी। हमें अपने मन में पक्की गांठ बांध लेनी चाहिए कि संतान का भवितव्य माता-पिता के हाथ में है। बेटों के समान ही अपनी बेटियों को भी लिखाया-पढ़ाया जाये तो हमारा विकास तीव्रगति से हो सकता है, यह निश्चित है।" आंबेडकर के इस पत्र में उनका स्वाभिमान, स्वावलंबन और आत्मोद्धार के लिए मची हलचल का अंकुर स्पष्ट दिखाई देता है।

---

1. बनौधा : पृ. 18
2. खैरमोडे : खंड 1 पृ. 66-67—पत्र दिनांक 4-8-1913

उनके पास धन का अभाव था। इसलिए सैर सपाटे पर जाना, सिनेमा देखना, इत्यादि बातों की ओर उनका मन कभी नहीं दौड़ा। उन्हें अपने भोजन के लिए एक डालर और दस सेंट खर्च करने पड़ते थे। इसमें एक कप काफी और दो केक, एक प्लेट मछली या सब्जी मिल जाती थी। जब तक जोर की भूख न लगे तब तक वे खाने पर भी कुछ खर्च नहीं करते थे। उन्हें जो छात्रवृत्ति मिलती थी, उसमें से वे अपनी पत्नी को घर का खर्च चलाने के लिए कुछ रकम भारत भी भेजते थे। उनके सहपाठियों का यह कथन है कि आंबेडकर ने अपने छात्र जीवन का एक एक क्षण अध्ययन में ही बिताया।

भीमराव सन् 1913 से 1916 तक न्यूयार्क शहर में ही रहे। 'स्वतंत्रता की देवी' का पुतला उस शहर के निकट ही है। मुंबई के एल्फिस्टन कालेज के कुंद वातावरण और न्यूयार्क के स्वतंत्रप्रिय तथा बंधनरहित जीवन का तुलनात्मक अध्ययन, उनका मन अवश्य कर रहा होगा।

उन दिनों कोलंबिया विश्वविद्यालय में जॉन ड्यूई, जेम्स शाटवेल, एडविन सेलिग्मन, जेम्स हावे राबिन्सन, फ्रेंकलिन, गिडीग्ज, और अलेक्जेन्डर, गोल्डन वेझर जैसे दिग्गज विद्वान शिक्षा प्रदान करते थे। अमेरिका की विचारधारा से संबद्ध जीवन पर उन सबका बहुत प्रभाव था। इन महान अध्यापकों के साथ व्यतीत किये गये समय में उन्हें आशावादी और प्रगतिशील तथा व्यापक विचारों की दीक्षा मिलना स्वाभाविक ही था।[1]

उन्होंने वहां इतिहास, समाजशास्त्र, मानववंश शास्त्र, तत्वज्ञान, मानसशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का अध्ययन सम्पन्न किया था।

जॉन ड्यूई के विचारों की छाप उनकी अनेक पुस्तकों में दृष्टिगोचर होती है। वे कक्षा में अध्यापन करते समय भी जॉन ड्यूई की शैली का अनुकरण करते थे।[2] "अनहिलेशन आफ कास्ट" जात पात तोड़ने के विषय पर लिखी गयी अपनी किताब में उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा, "जॉन ड्यूई मेरे अध्यापक थे। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा है।" सन् 1939 के 20 अक्तूबर को जॉन ड्यूई ने अपने 80वें जन्म दिवस के उपलक्ष में जनतंत्र शासन पर एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखकर अपने विद्यार्थियों को संदेश के रूप में प्रस्तुत किया था। इस समारोह में डा. आंबेडकर स्वयं उपस्थित न रह सके, किंतु इस लेख की प्रतिलिपि बनाकर उसे उन्होंने विशेष रूप से अपने पास संभाल कर रखा था।[3]

1. झेलियट : 81
2. पृष्ठ क्रमांक 10 की टीप क्र. 1
3. झेलियट : 88 हाइकोर्ट कागज, दिनांक 24-8-54, को डा. आंबेडकर ने ड्यूई के "जनतंत्र शासन" पर लिखे लेख की प्रतिलिपि बनाकर भेजने के लिए पत्र लिखा था।

लेकिन अपने जिस प्राध्यापक के साथ उन्होंने भारत लौटने पर भी पत्र व्यवहार बनाये रखा। वे थे डा. सेलिग्मन। जब वे सिडनहम में प्राध्यापक थे तब उन्होंने अपने कुछ विद्यार्थियों को भी डा. सेलिग्मन के पास भेजा था।[1]

वह अमेरिका में अध्ययन करते समय भी भारतीय समस्याओं पर विचार किया करते थे। उनके पठित निबंधों और प्रस्तुत किये गये प्रबंधों का भारत से गहरा संबंध होता था। उन्होंने अमेरिकावासी नीग्रो समाज के सवालों का भारतीय अस्पृश्यों की समस्या के साथ कभी एकीकरण नहीं किया।[2] अपने "भारतीय जाति" निबंध में उन्होंने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि अस्पृश्य, समाज से संबंधित भेदभाव वांशिक नहीं है, वरन वे भारतीय संस्कृति का एक अविभाज्य अंग है। उनके भविष्य के सारे अनुसंधानों का यही मूल स्रोत रहा है।

इस तरह भीमराव आंबेडकर अपनी ज्ञान साधना में रत रहे। वे प्रतिदिन लगातार 18 घंटे अविराम साधना में लीन रहते। सन् 1915 में उन्होंने "एडमिनिस्ट्रेशन एंड फायनांस ऑफ ईस्ट इंडिया कंपनी" विषय पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत कर एम.ए. की उपाधि प्राप्त की।[3] इन्ही दिनों ये "नेशनल डिविडेंड ऑफ इंडिया—ए हिस्टारिकल एंड अनेलेटिकल स्टडी" विषय पर भी शोध कार्य कर रहे थे। उन्होंने यह शोध प्रबंध सन् 1916 में कोलंबिया विश्वविद्यालय को विचारार्थ प्रस्तुत किया और इसे सन् 1925 में लंदन की पी. एस. किंग एंड कंपनी में "दि इवोल्यूशन ऑफ प्राविन्शियल फायनांस इन ब्रिटिश इंडिया" नाम से प्रकाशित किया। (बाद में कोलंबिया विश्वविद्यालय ने उन्हें पी-एच. डी. की उपाधि से विभूषित किया।) इसी समय सन् 1916 में डा. गोल्डन बेझर ने मानववंश शास्त्र पर एक परिचर्चा का आयोजन किया था। इस परिसंवाद में भीमराव आंबेडकर ने "कास्ट्स इन इंडिया—देयर मेकेनिजम, जेनेसिस एंड डेवलपमेंट" नामक निबंध मई, 1916 को पढ़ा था। केवल तीन वर्षों में डा. आंबेडकर ने अमेरिका में जो काम कर दिखाया उस विद्वता की ऊंची उड़ान और ज्ञान की महान प्रगति के प्रति अपना आदर प्रकट करने के लिए विश्वविद्यालय के कला विभाग के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों ने उनका सत्कार किया। सन् 1917 तक उन्होंने जो उपाधियां प्राप्त कीं, उनसे उनके अत्यधिक ज्ञान की उपलब्धियों की धरोहर वे अपने साथ लाये थे।[4]

1. झेलियट : 87
2. झेलियट : 81
3. अनुसंधायक डा. कार्नेलान ने इस अप्रकाशित प्रबंध की प्रतिलिपि 1979 में कोलंबिया विश्वविद्यालयों से पहले प्राप्त कर, लेखक को उपलब्ध की है।
4. ब्लेक क्लार्क : रीडर्स डायजेस्ट, मार्च 1950

3

पी-एच. डी. के लिए लिखे गए अपने प्रबंध की प्रकाशित पुस्तक, भीमराव ने बड़ौदा नरेश, सर सयाजीराव गायकवाड़ को, "मेरे विद्यार्जन के लिए आपने जो सहायता प्रदान की उसकी कृतज्ञता के रूप में" सादर अर्पित की है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में, उन्होंने अपने प्राध्यापक मिस्टर एडविन, आर. ए. सेलिग्मन के, "पब्लिक फायनेंस के प्राथमिक पाठ सिखाने के लिये" हार्दिक आभार माने हैं। सेलिग्मन ने भी पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है, "इस विषय के मूलभूत तत्वों का इतना विस्तृत विवेचन अन्य कहीं उपलब्ध होगा, इसका मुझे ज्ञान नहीं है।" इस किताब को लिखते समय आंबेडकर ने 'मॉन्टफोर्ड सुधार' को भी समावेश कर अपने प्रबंध को अधिक विस्तृत किया है। "बरतानवी हुकूमत के उद्योगपतियों के लाभ के लिए यह नौकरशाही यहां की अर्थव्यवस्था को निचोड़ रही है।" आंबेडकर इस प्रकार हुकूमत पर टिप्पणी कसना भी नहीं भूले।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर लिखी गयी यह किताब उन दिनों केंद्रीय विधान सभा के सदस्यों के लिए, बजट पर चर्चा करने के लिए, संदर्भ-ग्रंथ के रूप में आवश्यक मानी जाती थी।[1] उन्होंने किताब का उपसंहार करते समय अपना मन पसंद सवाल प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं, "राजनैतिक स्वाधीनता पाने के दो मार्ग हैं। एक है सैनिक शक्ति और दूसरा है नैतिक सामर्थ्य। जिस देश के पास सैनिक सामर्थ्य नहीं है, उन्हें अपने नैतिक सामर्थ्य को बढ़ाना चाहिए। भारत का राजनैतिक प्रश्न पूरी तरह एक सामाजिक मसला है, और सामाजिक सवाल को आगे तहकूब करते रहना, यह जाहिर करता है कि जनमत से प्राप्त स्वतंत्र सरकार की स्थापना होने तक राजनैतिक प्रश्न हल नहीं हो सकता।"[2]

न्यूयार्क में रहते समय आंबेडकर ने अपने अवकाश काल में पुरानी पुस्तकों की

---

1. जनता : विशेषांक 1942 प्रि. एम. वी. दोंदे लिखित "साहित्यिक डा. आंबेडकर।"
2. आंबेडकर, बी. आर. : "दि इवोल्यूशन आफ प्राविंशियल फायनेन्स इन ब्रिटिश इंडिया।" 1925, पृ. 280

29 जून 1929 को वैदिक रीति से संपन्न महार जाति के विवाह समारोह में उपस्थित डा. बाबासाहब आंबेडकर

डा. बाबासाहब आंबेडकर, उनकी पत्नी श्रीमती रमाबाई आंबेडकर एवं उनके परिवार के अन्य सदस्य

डा. बाबासाहब आंबेडकर समता सैनिक दल सम्मेलन में राव बहादुर एन. शिवराज तथा श्रीमती मीराबाई शिवराज के साथ—1942

डा. बाबासाहब आंबेडकर और पेरियार रामस्वामी नायकर—1944

डा. बाबासाहब आंबेडकर संविधान निर्माण की प्रारूप समिति के सदस्यों के साथ

डा. बाबासाहब आंबेडकर विधि मंत्री के रूप में शपथ ग्रहण करते हुए

डा. बाबासाहब आंबेडकर

डा. बाबासाहब आंबेडकर

दुकानों में जाकर बहुत-सी किताबें खरीदी थीं। उन लगभग 2,000 किताबों को भारत लौटने वाले एक मित्र को सौंपकर उन्होंने लंदन के लिए प्रस्थान किया। किंतु कुछ समय के उपरांत भारत लौटने पर उन्हें उन किताबों में से बहुत कम हाथ आयीं।

डा. आंबेडकर को अपनी तरुणावस्था में ही पुस्तकों से बहुत लगाव था, प्यार था। उनकी यह लगन 'बांबे क्रानिकल' को लिखे गए एक पत्र से प्रगट होती है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की पहली सीढ़ी के स्वतंत्रता सेनानी, सर फिरोजशाह मेहता का सन् 1915 में देहांत हुआ। यह समाचार अमेरिका बहुत समय बाद पहुंचा। भारत के प्रति आस्था के साथ खोज खबर रखने वाले आंबेडकर को जब यह पता चला कि मेहता की स्मृति में उनका एक पुतला खड़ा किया जायेगा तो उन्होंने 'क्रानिकल' को अपने विचार एक पत्र द्वारा सूचित किये थे।[1] उन्होंने लिखा था, "मेहता की स्मृति में केवल पुतला खड़ा कर ही स्मारक स्थापित न कर, उनकी याद में एक सार्वजनिक लायब्रेरी की योजना साकार करनी चाहिए। किसी भी राष्ट्र की बौद्धिक और सामाजिक प्रगति के लिए एक ग्रंथागार का बहुत बड़ा आधार रहता है। इस भांति उस स्मारक का उपयोग हितकर होगा ही। साथ ही वह उनकी स्मृति को भी चिरंतन बनाये रखेगा।"

उनके अमेरिका निवास की अवधि में लाला लाजपतराय ने उन्हें भारत के स्वतंत्रता संग्राम में लाने का बहुत प्रयास किया, किंतु आंबेडकर ने बड़ी नम्रता के साथ अपनी अध्ययन की विवशता को कारण बताकर अपनी अस्वीकृति प्रगट की।

लंदन के विश्वविद्यालय में प्रवेश मिल जाने पर डा. आंबेडकर ने जून, 1916 में अमेरिका से विदा ली। उन दिनों अमेरिका में लाला हरदयाल की 'गदर पार्टी' एक क्रांतिकारी संगठन का रूप ले रही थी। डा. आंबेडकर का भी इस पार्टी से संबंध संभव है, इस आशंका के कारण लंदन के हवाई अड्डे पर उनकी जमकर तलाशी ली गयी।

अक्तूबर, 1916 में उन्हें कानून की पढ़ाई के लिए 'ग्रेज इन्न' तथा अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए 'लंदन स्कूल आफ एकानामिक्स एंड पोलिटिकल साइंस' में प्रवेश प्राप्त हुआ। उन्होंने अपना प्रबंध लेखन प्रारंभ किया ही था कि बड़ौदा रियासत के दीवान ने उन्हें सूचना भेजी कि उनकी छात्रवृत्ति समाप्त कर दी गयी है और वे वापिस भारत लौट आयें। इसलिए अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर उन्हें वापिस लौटना पड़ा। अपनी इस विवशता में उन्होंने अपने प्राध्यापक प्रो. एडविन केनन की सहायता और सिफारिश

---

1. बांबे क्रानिकल : 25 मार्च, 1916

से चार साल के बीच पुनः अध्ययन प्रारंभ करने की लंदन विद्यापीठ से अनुमति ले ली।

यह अनुमति सन् 1917 से प्राप्त हुई थी। उन्होंने अपना बोरिया-बिस्तरा समेटकर, सारा सामान 'थामस कुक एंड सन' कंपनी के सुपुर्द कर, उसे मुंबई भिजवाने को कहा। वे स्वयं मार्सेलिस बंदरगाह तक मोटर से आये और फिर वहां से कैसरेहिंद जहाज पर उन्होंने भारत के लिए प्रस्थान किया। उन दिनों पहला महायुद्ध छिड़ा हुआ था। खबर उड़ी कि, भूमध्य सागर में सुरंग फटने से एक जहाज डूब गया है। इस डर से सब का दिल दहल उठा कि कहीं आंबेडकर इस हादसे के शिकार तो नहीं हो गये। लेकिन उस जहाज पर केवल आंबेडकर का सारा सामान ही था, यह जानकर लोगों की जान में जान आयी। डा. आंबेडकर 21 अगस्त, 1917 को कोलंबो होते हुए मुंबई पधारे।

4

पहले महायुद्ध ने बरतानिया हुकूमत की नाक में दम कर रखा था। भारत में स्वाधीनता की मांग जड़ पकड़ रही थी। 20 अगस्त, 1917 को यह स्पष्ट किया गया कि भारत को उत्तरदायी सरकार उपलब्ध करवाने के हेतु, क्रमशः शासन के अधिकार हस्तांतरित करने की प्रक्रिया शीघ्र प्रारंभ करने की ब्रिटिश साम्राज्य की अभिलाषा है। फिर बरतानिया के सेक्रेटरी आफ स्टेट श्री माग्टेग्यू ने भारत की राजनैतिक परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए भारत का दौरा किया। भारत के इतिहास में पहली बार अस्पृश्य समाज की भिन्न भिन्न संस्थाओं ने उनको अपनी अपनी मांगें और निवेदन प्रस्तुत किये।

आंबेडकर के भारत पधारते ही संभाजी वाघमारे और उनके साथ काम करने वालों ने डा. आंबेडकर का स्वागत करने का निश्चय किया। लेकिन आंबेडकर ने यह कहकर अपनी स्वीकृति नहीं दी, "अभी तो मैंने कुछ किया ही नहीं है, फिर मेरा यह सत्कार किसलिए किया जाये ?"

बड़ौदा सरकार के साथ हुए इकरारनामे के अनुसार आंबेडकर का बड़ौदा पहुंचना जरूरी था। लेकिन उनके पास पैसों के लाले पड़े हुए थे। उस समय थामस कुक कंपनी ने उन्हें सामान समुद्र में डूब जाने के हरजाने के रूप में कुछ रकम दी। मुसीबत के समय मिली हुई इस रकम को पाकर आंबेडकर प्रसन्न हुए और अपनी पत्नी को घर का खर्च चलाने के लिए रुपये देकर वे सितंबर माह में बड़ौदा के लिए रवाना हुये।

अपने वादे के अनुसार आंबेडकर को दस साल रियासत की नौकरी करना आवश्यक था। वैसे तो जब रियासत का कोई बड़ा अधिकारी स्टेशन पहुंचता तो उसका स्वागत करने दरबार के कई लोग उपस्थित रहते। परंतु महार जाति का होने के कारण स्टेशन पर आंबेडकर की अगवानी करने कोई नहीं आया। आंबेडकर अपने भाई के साथ किसी होटल या रहने का स्थान पाने के लिये सारे शहर में भटके, मगर जाति बताते ही उनसे कोई सीधे मुंह बात नहीं करता था और उनको निकाल बाहर करता था। आखिर वे एक पारसी के होटल में बिना जाति बताये रहने लगे। मगर कुछ ही दिनों में बात

सब तरफ फैल गयी और पारसी लोग हाथों में छड़ियां लिये हुए उस होटल में आंबेडकर को मारने आ धमके। उन्होंने आंबेडकर से उनकी जाति पूछी और उन्हें तुरंत होटल खाली करने की चेतावनी दी।

बड़ौदा नरेश की बड़ी इच्छा थी कि वे आंबेडकर को अपनी रियासत का अर्थमंत्री बनायें। फिर उन्होंने अन्य विभागों का प्रशासनिक अनुभव हो सके, इस दृष्टि से आंबेडकर को अपना मिलीटरी सचिव बनाया। इतने ऊंचे पद पर आसीन अधिकारी को, वहां के क्लर्क, मुंशी, यहां तक कि अरदली भी दूर से फाइल फेंककर दिया करते थे। जब वे अपनी कुर्सी से उठकर जाते तो उनके नीचे बिछी दरी को भी धोया जाता था। दफ्तर में उन्हें पीने के लिए पानी भी नहीं मिलता था। इसलिए खाली समय में वे लाइब्रेरी में जा बैठते और मन को बहलाने की कोशिश करते।

इस तरह अपमान का घूंट पीते हुए वे काम कर रहे थे, तभी उन्हें पारसी के होटल से भी निकाल बाहर किया गया। कोई हिंदू या मुसलमान उन्हें रहने के लिए स्थान देने को तैयार नहीं था। यह बात उन्होंने एक पत्र द्वारा बड़ौदा नरेश को सूचित की। महाराज ने, अपने मंत्री से उनके रहने की व्यवस्था करने के लिए कहा। मगर मंत्री ने अपनी लाचारी जाहिर की। भूखे प्यासे भटकते भटकते आंबेडकर एक पेड़ की छांव में जा बैठे, मगर उनकी आंखों से गंगा-जमुना बह निकली और वे दहाड़ मारकर रो पड़े। कैसी दशा है हिंदू समाज के अस्पृश्य की ! वह कितनी भी ऊंची पढ़ाई हासिल कर क्यों न आया हो, फिर भी अन्य जातियों से हीन-से-हीन व्यक्ति से भी उसे कनिष्ठ ही समझा जाता है।

अत्यंत खिन्न मन से निराशा में डूबे हुए डा. आंबेडकर 1917 के नवंबर महीने में मुंबई वापिस लौट आये। उन्होंने अपना सारा हाल केलूसकर गुरुजी के मारफत महाराज सयाजीराव को लिख भेजा। केलूसकर गुरुजी के एक मित्र बड़ौदा निवासी थे। उन्होंने गुरुजी को लिखा कि वे आंबेडकर को रहने के लिए स्थान देने को तैयार हैं। एक पेइंग गेस्ट की हैसियत से आंबेडकर उनके घर रह सकते हैं। आंबेडकर फिर बड़ौदा पहुंचे, मगर स्टेशन पर ही उन प्राध्यापक महोदय का पत्र उनके हाथ में थमा दिया गया। उस पत्र में लिखा था, "हमारी पत्नी को आपका हमारे साथ रहना स्वीकार नहीं है।" आंबेडकर ने स्टेशन से ही बड़ौदा रियासत को अलविदा कहा और वापिस मुंबई लौट आये।

सन् 1917 में स्पृश्य समाज ने अस्पृश्यों की दो परिषदों का आयोजन किया, लेकिन डा. आंबेडकर स्पृश्यों द्वारा आयोजित किसी भी परिषद में सम्मिलित नहीं हुये। उनकी माली हालत डावांडोल थी। अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करना उनके लिए

लाजिमी था। वह उनका पहला फर्ज था। इसलिए उन्होंने तिनके का सहारा ही सही यह समझकर,एक पारसी सज्जन के मारफत दो विद्यार्थियों का निजी शिक्षक बनना स्वीकार किया। साथ ही, उन्होंने शेयर बाजार के दलालों को सलाह मशविरा देने के लिए एक कंपनी भी खोली। मगर जैसे ही यह पता चलता है कि इस कंपनी का मालिक एक अस्पृश्य है, लोग तुरंत वहां से कन्नी काटते। आंबेडकर ने कुछ दिनों के लिए पारसी व्यक्ति का हिसाब-किताब रखने और जांचने का काम भी किया।

इन्हीं दिनों आंबेडकर ने बर्ट्रांड रसेल की पुस्तक 'रिकन्सट्रक्शन आफ सोसायटी' का विवेचनात्मक परीक्षण लिखकर 'इंडियन एकानामिक सोसायटी' मासिक में छपवाया था।[1]

उनका "कास्ट्स इन इंडिया" निबंध दुबारा छापा गया। यह निबंध इतना मौलिक माना गया कि 'दि अमेरिकन जर्नल आफ सोशियोलाजी' के संपादक ने उस निबंध का बहुत सा भाग 'वर्ल्डस् बेस्ट लिटरेचर आफ दि मंथ' नामक मासिक में उद्धृत किया गया।[2]

खेती का एकत्रीकरण करने से पहले औद्योगीकरण करना कितना आवश्यक है और क्यों ? इसका विवेचन करने वाला उनका निबंध "स्माल होल्डिंग्स इन इंडिया एंड देयर रेमिडीज" भी इन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ।[3]

इसी समय मुंबई के सिडनहम कालेज में एक प्राध्यापक का स्थान रिक्त हुआ। आंबेडकर की आर्थिक परिस्थिति अभी भी सुधरी नहीं थी। इसलिए उन्होंने इस नौकरी के लिए 5 दिसंबर, 1917 को अपनी अर्जी भेजी।

इस जगह के लिए ग्यारह उम्मीदवार थे। प्राचार्य अन्स्टी की राय थी कि इनमें से, आर. एन. जोशी को नियुक्त किया जाये। किंतु जब उन्होंने इंग्लैंड से प्रो. एडविन केनन की राय पूछी तो केनन ने सूचित किया, "विद्यार्थियों को उत्तीर्ण करने के लिए आंबेडकर अपने ज्ञान का सारा खजाना उनके सामने उंडेल देंगे।"[4] अधिकारियों ने भी उनके आवेदन पत्र पर यही टिप्पणी लिखी कि 'महार' होते हुए भी उन्होंने जो ज्ञानार्जन किया है और यश पाया है इससे ही यह स्पष्ट है कि वे असाधारण गुणों के धनी हैं। उनका व्यवहार अत्यंत सभ्य तथा व्यक्तित्व आह्लादकारक है।[5]

---

1. बाबासाहब आंबेडकर : रायटिंग्ज एंड स्पीचेस, खंड 1–1979, पृ. 481-492
2. प्रि. एम. वी. दोंदे : साहित्यिक डा. आंबेडकर–जनता विशेषांक, 1942
3. डा. बाबासाहब आंबेडकर : रायटिंग्स एंड स्पीचेस, खंड 1, पृ. 453-479
4. महाराष्ट्र शासन पुराभिलेख विभाग, अभिलेख शिक्षा विभाग, खंड 651, 1918, पृ. 237; पार्ट 1, एडविन केनन का पत्र दि. 25.4.1918
5. फाइल में लिखी टिप्पणी, दि. 18.4.1918, पृ. 238

सिडनहम कालेज में पोलिटिकल इकानामी विषय के प्राध्यापक के रूप में डा. आंबेडकर का चयन किया गया।

सरकार ने डा. आंबेडकर को नवंबर, 1918 से 450 रुपये प्रतिमास के वेतन पर अस्थायी रूप से नियुक्त किया।[1]

पहले पहले डा. आंबेडकर अस्पृश्य हैं, यह पता चलते ही विद्यार्थी उनकी कक्षा में विशेष रुचि नहीं लेते थे। किंतु जैसे जैसे उनकी पढ़ाने की शैली प्रशंसा पाने लगी, वैसे वैसे उनकी कक्षा में विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ने लगी। आंबेडकर का गहन अध्ययन, सर्वांगीण विवेचन और विचारों का स्पष्टीकरण, विद्यार्थियों को कक्षा में बांधे रखता था। यहां तक कि अन्य कालेज के विद्यार्थी भी आंबेडकर की अनुमति प्राप्त कर उनकी कक्षा में उनका व्याख्यान सुनने सहर्ष उपस्थित रहते थे। अपने पढ़ाने के तरीके से वे विद्यार्थियों में बहुत ही लोकप्रिय हो गये थे।

अपने विद्यार्थियों पर आंबेडकर का जबरदस्त रुतबा था।[2] इस श्रद्धा के कारण कोई भी विद्यार्थी उनका मजाक उड़ाने या उपहास करने का साहस नहीं करता था।

डा. आंबेडकर की दृष्टि में तत्कालीन शिक्षा पद्धति उचित नहीं थी। मूल्य निर्धारण इस बात पर होना चाहिए कि विद्यार्थी कक्षा में क्या सीख रहा है। लिखित परीक्षा से मौखिक परीक्षा को अधिक महत्त्व देना चाहिए। डा. आंबेडकर की जीवनी के लेखक रामचन्द्र बनौधा ने जब उनके परीक्षक के रूप में कार्य करते समय इस बारे में अनुसंधेय दृष्टि से छानबीन की[3] तब डा. आंबेडकर ने कहा, "उत्तर पुस्तिकाएं जांचते समय मेरी अपनी कुछ कसौटियां हैं। मैं 50% अंक उत्तर में लिखी गई जानकारी के लिए रखता हूं, और 50% अंक उत्तर देने की रीति के लिए रख छोड़ता हूं। रीति में भाषा, लेखन-शैली, और विषय प्रतिपादित करने की पद्धति समाविष्ट है। जहां तक हो विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने का मेरा प्रयास रहता है। तात्पर्य यह है कि 33% अंक अधिक से अधिक उत्तर पुस्तिकाओं को मिल सकें, यह प्रयास रहता है। इसके बाद जो उत्तर पुस्तिकाएं अच्छी लगती हैं उन्हें 45% अंक दिये जाते हैं, मगर इससे अधिक अंकों के लिए निरीक्षण अधिक कड़ा हो जाता है।

"60% प्रतिशत अंक पाने वाले विद्यार्थी बहुत ही कम रहते हैं, क्योंकि ऐसी उत्तर पुस्तिकाएं बहुत कड़ी नजर से देखी जाती हैं।"

---

1. वाल्यूम 65/1918, आदेश क्र. 2559, दिनांक 1.10.1918
2. बनौधा : पृ. 31
3. बनौधा : पृ. 32-34

बनौधा ने फिर पूछा, "क्या आपने किसी को 60% से अधिक अंक दिये ही नहीं?" इस पर डाक्टर साहब को एक पुरानी घटना याद आ गयी और गंभीरता धारण कर उन्होंने कहा, "60%: अंकों को पाने के योग्य जो विद्यार्थी होते हैं उन्हें मैंने 60 प्रतिशत से अधिक अंक भी दिये हैं। एक समय मैंने एक विद्यार्थी को 150 अंकों में से 144 अंक दिये थे। उस विद्यार्थी ने सवालों के जवाब इस निपुणता और खूबी से दिये थे, कि कई बार ऐसा लगता था कि उसे 150 में से 150 ही अंक दिये जायें। मगर यह कोई गणित जैसा विषय तो था नहीं, इसलिए उसकी उत्तर पुस्तिका पर मैंने 6 अंक कम दिये थे।

"वह उत्तर पुस्तिका जब मैंने उपाधि प्रदान करने वाले कालेज के अधिकारियों को वापिस लौटायी तो कई अधिकारियों को ऐसा लगा कि यह विद्यार्थी तो दूसरे कालेज का छात्र है और उसे पहला स्थान प्राप्त होने की संभावना है। इसलिए उन्होंने वह उत्तर पुस्तिका पुनः जांच करने के लिए भिजवायी। मैंने उस उत्तर पुस्तिका को वैसे ही वापिस लौटा दिया। साथ ही लिख भेजा कि यह मेरा अंतिम निर्णय है। फिर उन्होंने यह उत्तर पुस्तिका अन्य परीक्षकों के पास भिजवायी। किसी ने 144 अंक से कुछ अंक अधिक दिये, कुछ ने एक दो अंक कम। आखिर उन अधिकारियों को मेरा ही फैसला मानना पड़ा।"

"क्या कभी कोई आप से सिफारिश करने भी आया था?"

डा. आंबेडकर ने गंभीर होकर कहा, "हां, एक बार एक अस्पृश्य विद्यार्थी के रिश्तेदार को यह पता चला कि मैं मुंबई विश्वविद्यालय का परीक्षक हूं। वह व्यक्ति मेरे पास आकर अपने उस विद्यार्थी को पास करने के लिए अनुरोध करने लगा। उसे लगा कि वह विद्यार्थी भी एक अस्पृश्य है, इसलिए मैं उसका आग्रह मानकर यह मदद अवश्य करूंगा। मगर मेरे लिए जो असंभव था। मैंने उसे साफ साफ कह दिया, "माना कि यदि मैं चाहूं तो यह संभव है, परंतु मुझे यह शोभा नहीं देता। साथ ही, इस तरह किसी के लिए सिफारिश करना मुझे घृणास्पद लगता है। मेरी तो यह धारणा है कि अस्पृश्य विद्यार्थी की ओर से ऐसा व्यवहार ही नहीं होना चाहिए कि जिससे अपनी बुद्धिमानी और योग्यता में अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा उसमें किसी भी प्रकार की कमी प्रगट हो। मैं तो यही चाहता हूं कि वह अन्य विद्यार्थियों की तुलना में एक आदर्श विद्यार्थी के रूप में ही अपना अस्तित्व स्थापित करे।"

"मेरा यह जवाब सुनकर वह व्यक्ति चुपचाप लौट गया।"[1]

एक परीक्षक के रूप में डा. आंबेडकर की यह निष्ठा महान थी।

---

1. बनौधा : पृ. 32-34

5

27 जनवरी, 1919 को बाबासाहब आंबेडकर ने मताधिकार की पूछताछ करने वाली 'साउथबरो समिति' के सामने अपनी गवाही दी। उन्होंने इस समिति के सामने अपना प्रतिवेदन भी पेश किया था।[1] इस प्रतिवेदन में विस्तारपूर्वक यह विवेचन प्रस्तुत किया था कि अगर लोक प्रतिनिधियों की सरकार सही मायने में बनानी है तो अस्पृश्य समाज को उसकी जनसंख्या के अनुरूप प्रतिनिधित्व देना कितना आवश्यक है। उन्होंने अस्पृश्यों के लिए नौ जगह रखने की मांग की थी।

सन् 1919 के करीब डा. आंबेडकर कोल्हापुर के महाराजा के निकट संपर्क में आये। यह संपर्क उन्होंने कोल्हापुर निवासी दत्तोबा पवार के मारफत स्थापित किया था। उन्होंने 'मूकनायक' नामक पाक्षिक पत्र प्रारंभ करने की इच्छा से महाराजा साहब से आर्थिक मदद देने का अनुरोध किया। यह पाक्षिक 'मूकनायक' दलित आंदोलन के मुखपत्र के रूप में प्रारंभ हुआ था। फिर भी डा. आंबेडकर सरकारी कालेज में प्राध्यापक होने के कारण उसके संपादक नहीं बन सकते थे। दलित समाज के प्रति सवर्णों के हृदय में इतनी घृणा थी कि 'मूकनायक' का विज्ञापन छापने के लिए भी लोकमान्य तिलक के अखबार 'केसरी' ने मना कर दिया ; इस समय लोकमान्य तिलक जीवित थे।

'मूकनायक' के कुछ प्रारंभिक अंकों में स्वयं आंबेडकर ने अग्रलेख लिखे थे। एक अग्रलेख में उन्होंने लिखा था कि यदि भारतवासियों को ब्रिटिश शासन से मुक्ति चाहिए—अपना स्वराज्य चाहिए, तो उन्हें अस्पृश्यों को पहले मुक्त करना चाहिए। यह पाक्षिक बहुत थोड़े समय तक चलकर बंद हो गया था।

21 मार्च, 1926 को कोल्हापुर रियासत में मानगांव में अस्पृश्यों की परिषद आयोजित की गयी थी। इस परिषद में कोल्हापुर के छत्रपति श्री शाहूजी महाराज खुद हाजिर थे। महाराज ने अपने भाषण में कहा था, "आप लोगों को आंबेडकर के रूप में उद्धार करने वाला मिल गया है। वह आपकी बेड़ियों को तोड़ कर रहेगा। इस बात

---

1. रिपोर्ट आफ दि रिफार्म कमेटी (फ्रंचाइज), वाल्यूम 2–1919

पर मुझे पूरा भरोसा है। केवल इतना ही नहीं, भारत के महान नेताओं की श्रेणी में इसका विशिष्ट स्थान रहेगा।" इस परिषद में महाराज की उपस्थिति में सब जाति के लोगों को एक पंगत में बैठा कर भोजन परोसा गया था। इस दावत में अनेक सरदारों के साथ साथ आंबेडकर आदि महार जाति के नेता गण भी थे।

मई, 1920 में नागपुर में अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद हुई थी। इस परिषद का सभापतित्व छत्रपति श्री शाहू महाराज ने किया था। नागपुर के राजे रघूजी भोंसले को डर था कि इस परिषद में छत्रपति शाहू महाराज पधारकर अस्पृश्यों के साथ बैठकर भोजन करेंगे और उन्हें भी उस पंगत में बैठने को विवश होना पड़ेगा। इसलिए वे अपने परिवार के साथ नागपुर से बाहर चले गये थे। इस परिषद में यह प्रस्ताव पास किया गया कि अछूतों के प्रतिनिधि अछूतों के मतों द्वारा कौंसिल में चुन कर आयें। इस परिषद में डा. आंबेडकर की नीति-निपुणता के कारण अस्पृश्य समाज की आंखें खुल गयीं और उन्हें यह अनुभव हुआ कि अब हिंदू-प्रधान संस्था के भरोसे रहना हितकर नहीं होगा। इस परिषद में ही आंबेडकर ने महार जाति की बारह उपजातियों के लोगों को एक पंगत में बिठाकर उनका आपसी पंगत भेद पहली बार समाप्त कर दिया था। एक प्राध्यापक के नाते डा. आंबेडकर को जो मासिक वेतन मिलता था, उसमें अपना जीवन निर्वाह करने के लिए उन्हें बहुत ही संभाल कर खर्च करना पड़ता था। अपनी पत्नी रमाबाई को घर गृहस्थी चलाने के लिए उन्हें अपने वेतन का कुछ भाग देकर वह बची रकम को जमा खाते में देते थे।[1] रमाबाई स्वभाव से ही कम बोलने वाली, दृढ़निश्चयी और स्वाभिमानी महिला थीं। उन्होंने अपने वैवाहिक जीवन के पहले बरसों में बहुत ही बुरी हालत और आपदाओं का सामना किया था। इस मुसीबत में भी उन्होंने अपने मन की शांति और घर की व्यवस्था को बनाए रखा। जब उनके पति विदेश में थे, उन दिनों उन्होंने अपनी विधवा भौजाई और उसके बेटे को कभी अपने से अलग नहीं होने दिया। उन्होंने अपनी तकलीफों और मुसीबतों में कभी उफ तक नहीं की। यहां तक कि किसी के लिए उन्होंने कभी कठोर बात तक नहीं कही। जब डा. आंबेडकर अमेरिका गये थे, उस समय वे गर्भवती थीं। उनकी कोख से जिस संतान ने जन्म लिया, उसका नाम गंगाधर रखा गया। किंतु वह ज्यादा दिन न रहा सका, जल्द ही परलोक सिधार गया। अब उनकी एक ही संतान शेष थी—यशवंत। अपने बेटे की तबियत के बारे में उन्हें हमेशा बड़ी चिंता लगी रहती थी। उन्होंने बड़ी मेहनत से लिखना पढ़ना सीखा, मगर यह भी ध्यान रखा कि उनके पति के अध्ययन में किसी भी प्रकार से विघ्न न आने पाये।

---

1. बनौधा : पृ 34—"हर महीने 50 रु. दिये जाते थे।"

6

डा. आंबेडकर ने अपने माहवारी वेतन से बची रकम तथा अपने स्नेही नवल भथेना के लिए हुए कर्ज के रूप में 5,000 रु. और कोल्हापुर नरेश से प्राप्त कुछ आर्थिक सहायता के बल पर लंदन जाने की तैयारी पूरी कर ली, और वे सन् 1920 के जुलाई महीने के अंतिम सप्ताह में लंदन पहुंचे।

लंदन में उन्होंने सितंबर महीने से अपना अध्ययन प्रारंभ किया। उस समय उनका ध्यान लंदन संग्रहालय की ओर आकर्षित हुआ। इस संग्रहालय में संसार में सहज न मिल सकने वाले ग्रंथों का ऐसा अपार संग्रह है कि उसे केवल देखने की इच्छा से कई विद्वान इस संग्रहालय में पधारते हैं। इस महान ग्रंथागार में डा. आंबेडकर सुबह 8 बजे से शाम 8 बजे तक बैठा करते थे। वे एक निजी तौर पर चलाये गये होटल में रहते थे। उस होटल की मालकिन जरा कठोर मिजाज की थी। वह उन्हें नाश्ते में सिर्फ एक प्याली चाय, एक पाव का टुकड़ा और एक मछली का टुकड़ा खाने को देती थी। बस इतना ही खाकर डा. आंबेडकर ग्रंथागार के लिए रवाना हो जाते और सबसे पहले वहां पहुंच जाते। फिर तो बिना किसी आराम के वे लगातार किताबों में डूब जाते थे। अपना समय व्यर्थ ही खराब न हो, इसलिए वे दोपहर का भोजन, अपरान्ह का अल्पाहार या शाम की चाय—सबको तिलांजलि दे दिया करते थे। अपनी पढ़ाई में वे इतने तल्लीन रहते कि चौकीदार उन्हें याद दिलाता और उस ग्रंथागार को बंद करता। आंबेडकर थक अवश्य जाते थे। लेकिन वहां लिखे कागजों के पुर्जों से उनकी जेबें भरी होती थीं। वे इस ग्रंथागार के अलावा इंडिया आफिस लायब्रेरी, लंदन यूनिवर्सिटी लायब्रेरी और दूसरे प्रमुख ग्रंथालयों का भी लगातार उपयोग करते थे। जब शाम को वे वहां से निकलते थे, तो भूख के मारे उनका सिर चकराने लगता था। वे फिर किसी सस्ते होटल में जाकर एक प्याला ब्रॉवरीन पीते और साथ में दो पाव खाते। घर लौटने पर वे रात का खाना भरपेट खाते थे।[1] एक गुजराती मित्र ने उन्हें कुछ पापड़ साथ दे दिए थे। आधी रात में वे दो चार पापड़ सेककर खाते और एक प्याली दूध पीते, फिर सुबह

1. गुरुवर्य कृ. अ. केलूकर : (डा. भीमराव राम जी आंबेडकर), जनता विशेषांक, 1933

तक अपनी पढ़ाई में लगे रहते थे। बाहर की दुनिया से उन्हें कोई सरोकार नहीं था। उन दिनों उनके कमरे में मुंबई निवासी अस्नोडकर रहा करते थे। वे जब भी उन्हें सोने के लिए आग्रह करते तो आंबेडकर का जवाब होता, "मेरे पास न खाने के लिए पैसा है, न सोने के लिए समय। मुझे तो बस अपनी पढ़ाई जल्द से जल्द खत्म करनी है।"[1] डा. आंबेडकर की ज्ञान साधना इस प्रकार अखंड चलती रहती थी।

यद्यपि डा. आंबेडकर विदेश में अध्ययन कर रहे थे, फिर भी वे भारत में रहने वाले अपने सहयोगियों का बराबर मार्गदर्शन किया करते थे। अछूतोद्धार के काम की ओर भी वे बहुत बारीकी से ध्यान दिया करते थे। इतना ही नहीं, वे शिवतरकर को पत्र लिखकर अपने बेटे और भतीजे की पढ़ाई लिखाई के बारे में पूरा ध्यान देने का सदा संकेत करते रहते थे। डा. आंबेडकर के हर पत्र से अछूतोद्धार के बारे में उसके मन की गहरी बेचैनी का पता चलता था। वे अपने पत्रों में सहयोगियों के स्वास्थ्य के बारे में भी पूरी दिलचस्पी के साथ पूछताछ किया करते थे।

डा. आंबेडकर का शोध कार्य अब बहुत कुछ पूरा हो रहा था। "प्राविंशियल डिसेंट्रलायजेशन आफ इंपीरियल फायनेंस इस ब्रिटिश इंडिया"—इस विषय पर सन् 1921 में उन्हें एम. एस-सी. की उपाधि प्रदान की गयी। इसके एक साल बाद ही उन्होंने अक्तूबर, 1922 में "दि प्राब्लेम आफ दि रूपी" नामक प्रबंध लिखकर उसे डी. एस-सी. पदवी प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया। इस तरह उन्होंने अढ़ाई साल में ही एम. एस-सी. और डी. एस-सी. दोनों ही पदवियां प्राप्त कर लीं। इन दिनों वे यह चाहते थे कि बैरिस्टरी की परीक्षा भी दे दें, मगर उस साल वे इस परीक्षा में नहीं बैठे। वे अप्रैल और मई महीने में जर्मनी हो आये। फिर एक बार बौन विश्वविद्यालय जाकर तीन माह तक संस्कृत का अभ्यास करते रहे।[2] लेकिन सन् 1923 में उनके आचार्य एडविन केनन ने उन्हें बुलावा भेजा। परीक्षकों को उनके प्रबंध में कुछ भाग आपत्तिजनक लगा था। इसलिए प्रो. केनन ने उन्हें यह सुझाया कि वे अपने विचारों को न बदलते हुए उस भाग की भाषा को सौम्य बनाकर अपना प्रबंध दुबारा प्रस्तुत करें। डा. आंबेडकर इससे पूर्व ही विद्यार्थियों की एक संस्था की सभा में "रिस्पांसिबिलिटीज आफ ए रिस्पांसिबल गवर्नमेंट इन इंडिया" विषय पर अपना सनसनीखेज लेख पढ़ चुके थे। उस लेख के बारे में राजनीति शास्त्र के सुप्रसिद्ध तत्ववेत्ता प्रो. हराल्ड जे. लास्की ने यह

---

1. की-र (म) : पृ. 50
2. बनौधा : पृ. 361 बनौधा के मतानुसार आंबेडकर जर्मन और संस्कृत भाषा जर्मन विद्यार्थियों को सिखाते थे।

राय प्रकट की थी कि "उस लेख में प्रकट किये गये डा. आंबेडकर के विचार क्रांतिकारी स्वरूप के हैं।"

डा. आंबेडकर के पास अब बहुत कम निधि बची थी। उसकी उन्होंने पुस्तकें खरीद लीं। वैसे घर की माली हालत भी खराब ही थी। इन हालात में उन्होंने स्वदेश वापिस लौटने का निश्चय किया। वह अप्रैल, 1923 में मुंबई पहुंचे। उन्होंने अपना प्रबंध दुबारा लिखकर भिजवा दिया और उनके परीक्षकों ने उन्हें 'डाक्टर ऑफ साइंस' की उपाधि से सम्मानित किया। यह प्रबंध पी. एस. किंग कंपनी ने दिसंबर, 1923 में प्रकाशित किया। डा. आंबेडकर ने इस ग्रंथ को अपने माता-पिता को उनके सर्वोपरि त्याग और पुत्र की पढ़ाई लिखाई के लिए तीव्र लालसा के प्रति हार्दिक आभार के रूप में समर्पित किया था।[1] यह ग्रंथ सारे संसार में मान्यता पा चुका है। डा. आंबेडकर के आचार्य एडविन केनन ने भी अपनी प्रस्तावना में अपने शिष्य के तर्क से मतभेद व्यक्त करते हुए उस ग्रंथ में व्यक्त किये गये विचारों और युक्तिवाद में प्रकट कुशाग्रबुद्धि की सराहना की है। अब डा. आंबेडकर अमेरिका से पी-एच. डी., लंदन से डी. एस-सी. और बैरिस्टर की उपाधियां प्राप्त कर चुके थे। वे अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और विधिशास्त्र में पारंगत थे, और अब किसी भी प्रकार के बवंडर का सामना करने के लिए तैयार थे।

---

1. ब्लेक क्लार्क : रीडर्स डायजेस्ट मार्च 1950,पृ. 109 (दि विक्ट्री आफ ऐन अनटचेबल)

7

डा. आंबेडकर का विवाह सन् 1908 में संपन्न हुआ था। उस समय उनकी उम्र 17 साल की थी। लेकिन सही मायने में तो उनकी गृहस्थी अब प्रारंभ हुई थी। वे जब दूसरी बार इंग्लैंड गये थे, उस समय उन्होंने अपनी पत्नी रमाबाई को घर खर्च चलाने के लिए जो रकम दी थी वह बहुत जल्द खर्च हो चुकी थी। रमाबाई के बंधु शंकरराव और छोटी बहन मीराबाई—दोनों छोटे मोटे मजदूरी के काम कर करीबन आठ दस आने (50-60 पैसे) रोज कमा पाते थे। उसी में रमाबाई बाजार से किराना-सामान खरीद कर लातीं और रसोई पकाकर सबका पेट पालती थीं। इस तरह मुसीबत के ये दिन उन्होंने बड़ी तंगी से बिताये थे। कभी कभी उनके परिवार को आधे पेट खाकर ही सोना पड़ता तो कभी भूखे पेट ही। जिन दिनों रमाबाई ने ये हालात डा. आंबेडकर को अपने पत्र में लिखे, उन दिनों वे भी आर्थिक अड़चनों का सामना कर रहे थे। उन्होंने पत्र में यही लिखा, "मैं खुद खाने को मुहताज हो रहा हूं। तुम्हें भिजवाने के लिए मेरे पास कुछ भी रकम नहीं है। फिर भी मैं तुम्हारे लिए कुछ इंतजाम करवा रहा हूं। यदि इसमें देरी हुई और तुम्हारे हाथ तंग हो गये तो अपने गहनों को बेच देना। मैं लौटने पर तुम्हें फिर से गहने बनवा दूंगा।" इसी पत्र में उन्होंने रमाबाई से यशवंत और मुकुंद की लिखाई पढ़ाई के बारे में भी पूछताछ की थी। अस्पृश्य समाज सेवकों ने रमाबाई को इन तंग दिनों में मदद देनी चाही, मगर रमाबाई ने मदद लेने से साफ इंकार कर दिया।

शाम के समय लोग अपनी अपनी काली कमली बिछाकर बैठ जाते और बाबासाहब के साथ इधर उधर की बातें किया करते थे। बाबासाहब भी अपने कार्यकर्ताओं की बातें बहुत ध्यान से सुना करते थे। उन दिनों सारे समाज में हलचल थी, लेकिन वह सारी असंगठित स्वरूप में थी।

बाबासाहब के विलायत से लौटने के बाद उनके अनुयायियों ने उन्हें मानपत्र और थैली भेंट करने की योजना बनाई, किंतु बाबासाहब ने सम्मान पत्र स्वीकार करने से साफ इंकार कर दिया।

अपने उदर निर्वाह के लिए उन्होंने वकालत का पेशा करने का विचार किया और सन् 1923 के जुलाई मास में वकालत के क्षेत्र में कदम रखा। वे मुंबई के उच्च न्यायालय

में काम करने लगे। सालिसीटरों की तरफ से उनकी जाति के कारण उन्हें जैसा चाहिए वैसा सहयोग नहीं मिल रहा था, इसलिए वे जिला कचहरियों में भी वकालत किया करते थे। धीरे धीरे वे अपने व्यवसाय में अपने आप के भरोसे जीने लगे। ऊंची पढ़ाई के बाद भी करीबन डेढ़ साल तक उन्हें बेकारी के दिन देखने पड़े थे।

अर्थशास्त्र पर डा. आंबेडकर का इतना अधिकार था, उस विषय की उन्हें इतनी गहरी समझ थी, कि उन्होंने उन दिनों अपने मनपसंद विषय पर कई पुस्तकें लिखने की रूपरेखा भी बना रखी थी। 'स्टडीज इन हिस्ट्री, इकानामिक्स एंड पब्लिक ला' नामक इस ग्रंथ की टाइप की गयी प्रति भी उन्होंने एक कंपनी को प्रकाशित करने के लिए दे रखी थी, मगर वह किताब प्रकाशित नहीं हो पायी।[1]

भारत की मुद्राप्रणाली में आवश्यक सुधार कार्यान्वित करने के लिए 'रायल कमीशन आन इंडियन करेंसी एंड फायनांस' की स्थापना की गयी। इस कमीशन के अध्यक्ष एडवर्ड हिल्टन यंग थे। इस कमीशन ने चालीस लोगों के बयान लिये जिनमें डा. आंबेडकर भी चुने गये थे। जब 15 दिसंबर, 1925 को डा. आंबेडकर को बयान देने के लिए आमंत्रित किया गया, तब कमीशन के हर सदस्य के हाथ डा. आंबेडकर लिखित 'इवोल्यूशन आफ प्राविंशियल फायनांस इन ब्रिटिश इंडिया' ग्रंथ की प्रतियां थीं।

सारे भारत में यह चर्चा का विषय बना हुआ था[2], कि रुपये का मूल्य पौंड के हिसाब से 1 शि. 4 पें. रखा जाये या 1 शि. 6 पें.। इस विषय में डा. आंबेडकर ने दो लेख लिखकर अपनी राय जाहिर की थी।[3] उसमें उन्होंने यह सलाह दी थी कि रुपये का मूल्य 1 शि. 6 पें. रखना ही राष्ट्र के लिए हितकर होगा। उन्होंने एच. एल. छाबलानी की किताब 'इंडियन करेंसी एंड एक्सचेंज' पर समालोचना भी लिखी थी।[4]

कमीशन के सामने दिये गये अपने बयान में डा. आंबेडकर ने स्पष्ट कहा था कि सरकार की मुद्रानीति की दुविधामय स्थिति के कारण ही कीमतों में भारी उतार चढ़ाव होता रहता है और उसका परिणाम गरीबों को भुगतना पड़ता है।

मध्यवर्ती विधान सभा के तत्कालीन सदस्य श्री न. चि. केलकर को डा. आंबेडकर ने एक पत्र लिखकर मध्यवर्ती विधानसभा में बेसिल ब्लकेट द्वारा प्रस्तुत मुद्रायोजना में सुधार सुझाने वाली एक परियोजना भी साथ भेजी थी, और प्रार्थना की थी कि वे उसे विधानसभा में पेश करें।

---

1. खैरमोडे : खंड 2, पृ. 95
2. कृ. अ. केलुसकर : जनता, विशेषांक 1933
3. सर्वेंट आफ इंडिया : दि. 9 और 16 अप्रैल 1925
4. वही : दि. 25-6-1925

8

जैसे ही डा. आंबेडकर को यह प्रतीत होने लगा कि उनकी पारिवारिक स्थिति में कुछ स्थिरता आ रही है, वैसे ही उन्होंने सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवन में पदार्पण करने का निश्चय किया। अस्पृश्य जनता के लिए एक सर्वव्यापी आंदोलन का समस्त भार संभाल सकने वाली संस्था की स्थापना कर, उसके द्वारा विभिन्न आंदोलनों के कार्यक्रमों की योजना कार्यान्वित करने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया।

20 जुलाई, 1924 के दिन 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना घोषित की गई।[1] तीन स्पृश्य हिंदू गृहस्थ इस संस्था के उपसभापति नियोजित किए गये थे। सुप्रसिद्ध वकील डा. सर चिमनलाल सीतलवाद इस संस्था के अध्यक्ष मनोनीत किए गये थे। कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष डा. आंबेडकर स्वयं थे। सचिव पद पर मोची समाज के नामदेव शिवतरकर को चुना गया था। अन्य सोलह दलित कार्यकर्ताओं को इस संस्था का ट्रस्टी नियुक्त किया गया था।

संस्था की ओर से एक आवेदनपत्र प्रकाशित किया गया था।[2] इस पत्र में यह संकेत दिया गया था कि उन दिनों दलित वर्ग की सेवा में लगी हुई अन्य संस्थाओं का काम किस तरह अधूरा है और दलित समाज की एक अपनी संस्था स्थापित होना कितना आवश्यक है, इस बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी देकर यह इशारा भी किया था कि हिंदू समाज को भी स्पृश्य और अस्पृश्यों के बीच बढ़ती खाई और वैमनस्य को मिटाने के लिए पूरी लगन के साथ भरसक प्रयत्न करने चाहिए। नहीं तो अपना राजनैतिक उद्देश्य प्राप्त करना अत्यंत कठिन होगा। अंत में यह चेतावनी भी दी गयी थी, "जब तक देश का इतना बड़ा वर्ग दीन-हीन दशा में पंगु बना हुआ है तब तक यह सारा देश भी दीन-हीन हालत में ही रहेगा।" इसलिए सभी अपने और पराये समाज

1. खैरमाडे : खं. 2, पृ. 107
2. वही : खं. 2, पृ. 107-11
विदेशों में गुलाम रखने के रिवाज के साथ डा. आंबेडकर ने अस्पृश्यता की तुलना करते हुए जो लेख लिखे हैं वे अब तक अप्रकाशित है। 'डा. बाबासाहब आंबेडकर राइटिंग्स एंड स्पीचेस' के पांचवें खंड में, "पेरेलल केसिस" नाम से उन लेखों का समावेश किया गया है।

के लोगों को इस दलित समाज की उन्नति के लिए जी-जान से कोशिश करनी चाहिए, तभी देश की दुर्दशा का अंत हो सकेगा।

ये पर्चे महाराष्ट्र के भिन्न भिन्न भागों में वितरित किये गये। फिर सोलापुर जिले के बारशी शहर में 'बम्बई प्रदेश बहिष्कृत परिषद' का अधिवेशन बुलाया गया। इस अधिवेशन में डा. आंबेडकर स्वयं उपस्थित थे। 17 मई, 1924 को इस अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में करीब दो घंटे तक उन्होंने राष्ट्र की दासता और अस्पृश्य जनों की गुलामी की तुलना करते हुए सिद्ध किया कि राष्ट्र की गुलामी से अस्पृश्य समाज की गुलामी हालत बहुत ज्यादा दर्दनाक है। इसे समाप्त करने के लिए अस्पृश्यता समाप्त करनी होगी, नहीं तो देशांतर करने का रास्ता अपनाना पड़ेगा। उन्होंने यह भी एक विकल्प सुझाया था। अपने भाषण में उन्होंने संगठन का महत्व भी मनवाने का प्रयास करते हुए कहा था, "केवल सिद्धांतों के प्रतिपादन करने की अपेक्षा उन्हें अमल में लाना अधिक परिणामकारक है और इसे संपन्न करने के लिए ऐसे संगठन की स्थापना करना अत्यंत आवश्यक है।" यह कहना गलत न होगा कि डा. आंबेडकर का यह भाषण मानो उसके "किस पथ से जाना सुखकर है" शीर्षक सन् 1936 में दिये गये धर्म परिवर्तन के भाषण की संक्षिप्त रूप रेखा ही थी।

इसके बाद हर जिले में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की ओर से बहिष्कृत परिषदों का आयोजन प्रारंभ हुआ। किंतु मुंबई शहर में बाबसाहब द्वारा आयोजित पहली सभा बहुत निराशाजनक रही। इस सभा में केवल पांच छह कार्यकर्ता ही उपस्थित थे। अन्य लोग केवल अपने घरों के दरवाजों, चबूतरों, दालानों, चाल के बरामदों में बैठकर ही दूर से सारा माजरा देख रहे थे और मजे ले रहे थे ; मजाक उड़ा रहे थे, या गपशप हांक रहे थे। लेकिन जब इन सम्मेलनों ने जोर पकड़ा तब लोग स्वयं जमा होने लगे और उसमें सम्मिलित होने लगे। मुंबई क्षेत्र की 'प्रांतीय बहिष्कृत परिषद' का तीसरा अधिवेशन दिनांक 10-11 अप्रैल, 1925 को जिला बेलगांव के निपाणी शहर में हुआ। इस अधिवेशन में डा. आंबेडकर ने विस्तृत भाषण दिया। अपने भाषण में उन्होंने कहा था, "महात्मा गांधी जितना महत्व हिंदू मुस्लिम एकता और खादी प्रसार को देते हैं उतना वे अस्पृश्योद्धार को नहीं देते।" महात्मा गांधी ने वैकोम सत्याग्रह के समय हरिजनों का पक्ष लेकर जो तीन सुझाव दिये थे उनकी वैकोम के धर्म पंडितों ने कैसी खिल्ली उड़ाई, इसकी जानकारी देते हुए बाबासाहब ने कहा, "अस्पृश्यता का समर्थन करने वाले ये सारे शास्त्र सारी जनता का निरादर कर रहे हैं। सरकार को उन्हें बहुत पहले ही जब्त कर लेना चाहिए था।" अपने विचार रखते हुए उन्होंने फ्रांस और अमेरिका में

गुलाम प्रथा के विरुद्ध चल रहे जन संघर्ष का हवाला दिया और कहा, "वहां हजारों लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी और आज नयी पीढ़ी इस बलिदान के मधुर फलों का आनंद ले रही है। यदि हम आज कुरबानी देते हैं तो उसका फायदा आने वाली पीढ़ी को मिलता है। मां-बाप बस अपनी संतानों की शादी कर देते हैं, मगर यह कभी नहीं सोचते कि क्या उनका बेटा स्वावलंबी बन सका है ? क्या वह अपने पैरों पर खड़ा है ? ऐसे मां-बाप ही अपनी संतान के सर्वनाश का कारण बन जाते हैं।" इस तरह अपने स्पष्ट, मुंहफट, सच्चे राजनैतिक तथा समाज सुधारवादी विचारों को निर्भीकता से सामने रख उन्होंने लोगों को सोचने समझने के लिए तैयार किया। उन्होंने कहा, "यह कहने से बात नहीं बनती कि हर पुरानी बात सोने की सानी होती है। लकीर के फकीर बनकर काम नहीं चलता कि, बस जो बाप दादा करते आये वही सब औलादों को भी करना ही चाहिए। सोचने का यह तरीका ठीक नहीं है। सिर्फ पुराने समय के सहारे जीना अच्छा नहीं है। हालात बदलते ही खयालात भी बदलने ही चाहिए। यह जरूरी है।" इस तरह आगरकर के समान सामाजिक क्रांति के विचारों को प्रतिपादित करते हुए, उन्होंने सबसे पहले एक छात्रावास खोलने की योजना प्रस्तुत की। इस विद्यार्थी निवास की व्यवस्था को संभालने का कार्य श्री न. ह. वराले ने स्वीकार किया। बाद में यह छात्रावास धारवाड़ में स्थानांतरित किया गया।

निपाणी अधिवेशन के तुरंत बाद ही उन्होंने रत्नागिरी जिले के मालवण शहर में अस्पृश्यों की परिषद का मार्गदर्शन किया। फिर वे अपने कार्यकर्ता शिवतरकर के साथ गोवा होते हुए मुंबई लौटे।

मुंबई विश्वविद्यालय की कुछ समस्याओं को पूरी तरह समझकर सुलझाने के लिए मुंबई सरकार ने एक 'यूनिवर्सिटी रिफार्म्स कमेटी' की स्थापना की थी।

सर चिमनलाल सीतलवाद इस कमेटी के अध्यक्ष थे। इस कमेटी ने अपने 329 सदस्यों को एक प्रश्न पत्रिका भिजवाई थी। बाबासाहब ने 15 अगस्त, 1924 को उन चौदह प्रश्नों में से कुछ प्रश्नों के उत्तर भेजे, और अपनी राय जाहिर की थी।[1]

16 दिसंबर, 1925 को 'रायल कमीशन आन इंडियन करेंसी एंड फायनांस' के सामने उन्होंने गवाही दी थी।[2]

कुछ ही दिनों में जलगांव, पनवेल और अहमदाबाद में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा'

---

1. रिपोर्ट आफ द कमेटी आन युनिवर्सिटी रिफार्म्स, पृ. 226-31, 1925-26
2. रिपोर्ट आफ रायल कमीशन आन इंडियन करेंसी एंड फायनंस, वाल्यूम दो, पृ. 235

द्वारा छात्रावास, स्थापित किये गये।[1] इसी सभा की ओर से 'सरस्वती विलास' नामक एक मासिक पत्र भी चलाया गया था। साथ ही, अस्पृश्य समाज के नौजवानों को जुएबाजी की बुरी आदत से बचाने के लिए एक महार हाकी क्लब भी शुरू किया गया था।

मुंबई क्षेत्र में मा. का. जाधव की, कलेक्टर की नौकरी के लिए, अपेक्षा की गयी तब इस उम्मीदवार की ओर से उन्होंने सरकार से पत्र व्यवहार किया, अखबारों में मामला उठाया और सरकार को उसे वह नौकरी देने के लिए विवश किया था।

मई, 1925 में डा. साहब कोल्हापुर पहुंचे। वहां उनकी कोल्हापुर दरबार में काफी साख थी। उस दरबार के बहुत से सदस्यों की यह अभिलाषा थी कि डा. आंबेडकर वहां के दीवान का पद स्वीकार करें। लेकिन इस मुलाकात में उन्होंने दीवान बनने के बारे में अपनी अनिच्छा सदस्यों के सामने स्पष्ट रूप में प्रकट की।[2] कोल्हापुर से वापस लौटते समय उन्होंने अपने मित्र दत्तोबा पवार और गणेशाचार्य के आग्रह पर एक नाटक देखा। दूसरे दिन वे तीनों मिरज स्टेशन पर गाड़ी का इंतजार कर रहे थे, तब कुछ महार समुदाय के लोगों ने उन्हें पहचाना और चूंकि रेलगाड़ी को आने में काफी देर थी इसलिए वे घर से बढ़िया मटन पकवाकर साथ लाये और एक थाल में परोस दिया। तब डा. साहब ने हंसी-मजाक के साथ गप्पें लगाते हुए दत्तोबा पवार और गणेशाचार्य, जो मांडा नामक महाराष्ट्र की एक अस्पृश्य नीच जाति के थे, अपने साथ ही एक ही थाली में खाने के लिए राजी किया। ऐसे छोटे मोटे अवसरों और मामलों में डाक्टर साहब हमेशा अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं के मन से जातीय भेदभाव की भावना को समाप्त करने का जानबूझकर प्रयास किया करते थे।

पुणे जाने के लिए रेलगाड़ी आने पर दत्तोबा पवार बाबासाहब के साथ पुणे निकल गये और गणेशाचार्य लौट आये। जब गाड़ी करहाड स्टेशन पहुंची तो एक दुर्घटना हो गयी और पवार का पंजा रेलगाड़ी के दरवाजे में आ जाने से लहूलुहान हो गया। बाबासाहब ने सातारा स्टेशन पर उनके साथ उतर कर पहले उनकी घायल उंगलियों का उपचार करवाया। लौटते समय सातारा कैंप के पास वे तांगे से उतरे, पवार को भी साथ लिया और पैदल चल कर उस मैदान में पहुंचे जहां उनकी माता की समाधि थी। समाधि के दर्शन करते समय उनकी आंखों से गंगा-जमुना बह निकली।[3] माता की समाधि को अश्रु पुष्प अर्पित कर वे पवार सहित तांगे पर सातारा रोड स्टेशन पहुंचे।

---

1. खैरमोडे : खंड 2, पृ. 122
2. वही : खंड 2, पृ. 128
3. वही : खंड 2, पृ. 129

इन दिनों डाक्टर साहब मुंबई के परेल इलाके में इंप्रूवमेंट ट्रस्ट के दो कमरों में रहा करते थे। इस चाल के चारों तरफ मजदूरों की बस्ती थी। इस कारण वे मेहनतकश मजदूरों के सुख दुख को अच्छी तरह से देख समझ सकते थे। आंबेडकर की वकालत का दफ्तर सोशल सर्विस लीग की इमारत में एक छोटे से कमरे में था। वे उस कमरे में एक लुंगी लपेट कर काम करने बैठ जाते। उनसे मिलने के लिए बड़े बड़े नेतागण वहां आया करते थे। एक बार तो कोल्हापुर नरेश और श्रीमंत शाहू महाराज तथा एक बार विशाल डीलडौल वाले मुसलमानों के नेता शौकत अली भी उन्हें इस जगह मिलने के लिये आये थे। इन दिनों सिडनहम कालेज के प्राचार्य का स्थान रिक्त हुआ था। केलूसकरजी ने तत्कालीन शिक्षामंत्री परांजपे से महाबलेश्वर में मुलाकात की और उन्हें डा. आंबेडकर को इस स्थान पर नियुक्त करने का बहुत आग्रह भी किया।[1] परंतु शिक्षामंत्री परांजपे आंबेडकर को अस्पृश्य होने के कारण इस स्थान पर नियुक्त नहीं कर सके। लेकिन उन्होंने एल्फिस्टन कालेज में उन्हें प्राध्यापक नियुक्त करने की स्वीकृति अवश्य दी। मगर डा. आंबेडकर ने इस नौकरी को मंजूर करने से इंकार करते हुए केलूसकर जी को लिखा, "मुझे इस तरह की नौकरियों की अभिलाषा नहीं है। अपने समाजोद्धार के लिए सारा जीवन बिताने का मेरा निश्चय अटल है।" उन्हें नौकरी करने की परवाह नहीं थी, मगर उन्होंने 'बाटलीबाय अकाउंटैंसी ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट' नामक संस्था में 25 जून से 28 मार्च तक एक शिक्षक के रूप में काम किया।

सर्वसाधारण व्यक्ति के हर पहलू पर डा. आंबेडकर बहुत बारीकी के साथ ध्यान दिया करते थे। सन् 1925 में किसानों के भूमिकर का प्रश्न खड़ा हुआ। यह भूमिकर, किसान की पैदावार पर आधारित किया जाये या फिर उसे खेत के क्षेत्रफल के अनुसार निर्धारित किया जाये, इस विषय पर काफी चर्चा शुरू हुई। इस प्रणाली पर दुबारा विचार करने के लिए सरकार ने लैंड रेविन्यू कमेटी की स्थापना की। 'केसरी' अखबार ने इस विषय पर 28 जुलाई, 1925 के अंक में "खेती पर कितना भूमिकर दिया जाये" शीर्षक से संपादकीय लिखा था।[2] डाक्टर आंबेडकर ने "किसानों का सवाल" शीर्षक से 18 अगस्त, 1925 को एक लेख प्रकाशित करवाया जिसमें यह दर्शाया गया था कि किसानों के हित की दृष्टि से पूर्वोक्त लेखक के विचार कितने अनुचित हैं। उन्होंने अपने लेख में यह सूचना भी दी थी कि भूमिकर को आयकर के कानून के तहत लाना चाहिए। डाक्टर साहब ने अपने विचार कमेटी के एक सदस्य को अच्छी तरह से समझा भी दिये और उनसे अनुरोध किया कि वे उन विचारों को कमेटी के सामने पेश करें। उस

---

1. केलूसकर कृ. अ. : जनता विशेषांक 1933
2. खैरमोडे खंड 2, पृ. 148

सदस्य ने सारी बातें सुनकर यह कहा, "हम आपको कमेटी के सामने गवाही देने के लिए आमंत्रित करेंगे।" परंतु इस कमेटी ने न तो डा. आंबेडकर को कमेटी के सामने अपना बयान देने बुलवाया और न ही उनकी राय पर विचार ही किया।

सन् 1926 में सातारा जिले के कोरेगांव तहसील स्थित रहिमतपुर ग्राम में सातारा जिला महार परिषद का मई मास में अधिवेशन हुआ। बाबासाहब मुंबई से वहां आये और रहिमतपुर के महारवाड़े में डेरा डालकर डट गये।[1]

मध्याह्न में अधिवेशन प्रारंभ हुआ। अपने भाषण में बाबासाहब ने कहा, "जैसे जैसे अस्पृश्य जनों के हाथ में अधिकार आते जायेंगे, उनकी आर्थिक स्थिति सुधरेगी, वैसे वैसे उनकी प्रगति भी अधिक होने लगेगी। जे पी या सरकारी अफसर बन जाना प्रगति संभव कर सकने के लिए केवल निमित्त तथा साधन बन सकते हैं। जो लोग यह कहते हैं कि सरकारी अफसरी मंजूर मत करो, वे आपके दिमाग में फितूर पैदा कर रहे हैं।" इसके बाद अस्पृश्यों और अब्राह्मणों की प्रगति के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा, "यदि ये दोनों समाज मिलकर अपनी प्रगति के लिए आंदोलन चलाते हैं तो वे उच्च वर्ग की गुलामी से जल्द छुटकारा पा सकते हैं। मैं स्वयं मन और बुद्धि से इन ब्राह्मणों की दासता से मुक्त हो चुका हूं। मैं अपनी अज्ञानी अंधी जनता के हाथ की छड़ी हूं। यदि मेरे आधार से चलने वाली मेरी जनता प्रगतिपथ पर अग्रसर हो सकी तो, फिर हमें फोड़ने या गुमराह करने वाली ताकतों द्वारा खोदी हुई खाइयों में वह नहीं गिरेगी।"[2]

सन् 1926 में अपने पुत्र राजरत्न की दुखद मृत्यु के कारण उनके हृदय को गहरा सदमा पहुंचा। पुत्र शोक को सहन करना उनके लिए बहुत दूभर हो गया था। उन्होंने 16 अगस्त, 1929 को दत्तोबा पवार को जो पत्र लिखा उसमें उन्होंने अपने तीन बेटों और एक कन्या के निधन के कारण अपने जीवन के नीरस हो जाने का उल्लेख किया है। जीवन जैसे निस्वाद हो गया था। उनके दुख भरे उद्‌गार लेखनी से फूट पड़े थे। उन्होंने लिखा था, "इस व्यथा ने मुझे जीवन की निस्सारता की सचाई मनवा दी है।"[3]

सन् 1926 के अक्तूबर महीने में तीन अब्राह्मण नेताओं पर पुणे के निवासी ब्राह्मण व्यक्तियों ने मानहानि का मुकदमा दायर किया था। ये तीन नेतागण थे—बागड़े, जेधे, जवलकर। कारण यह था कि बागड़े और जेधे ने मिलकर एक किताब लिखी थी—'देश

---

1. खैरमोडे : खंड 2, पृ. 145
2. वही : खंड 2, पृ. 146
3. मोटे, हा. वि. : विश्रब्ध शारदा खंड 1, पत्र क्र. 217, पृ. 430

के दुश्मन'। उस पुस्तक में उन्होंने प्रतिपादित किया था कि ब्राह्मण समाज ने भारत का सत्यानाश किया है। वादी की ओर से सुप्रसिद्ध वकील एल. एन. भोपटकर पैरवी कर रहे थे। डा. आंबेडकर ने इस अब्राह्मण नेताओं की ओर से पैरवी करने का वकील पत्र स्वीकार किया और अपनी लाजवाब दलीलों से अपील कोर्ट में उन्हें जिता दिया।

'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' द्वारा समाज सेवा के लिए किए गए कार्यों की जानकारी सब तरफ फैलती जा रही थी। मुंबई प्रदेश के गवर्नर मा. लेस्ली विलसन के कानों तक भी इस संस्था के कार्यों की प्रशंसा पहुंची तो उन्होंने इनके कार्यों का हार्दिक समर्थन किया और सहायता के रूप में गवर्नर साहब ने अपनी ओर से 250 रु. का चैक भी भिजवाया।[1] इस भेंट के लिए डा. आंबेडकर ने 'बहिष्कृत भारत' में टिप्पणी लिखी थी। डा. आंबेडकर का लक्ष्य केवल इतना ही नहीं था कि बहिष्कृत हितकारिणी के लिए सरकारी लोगों तथा शासन के लोगों तथा अस्पृश्यों के अलावा दूसरे समाज की पूरी आत्मीयता प्राप्त की जाये, बल्कि वे चाहते थे कि उन लोगों को इसके कार्यों के साथ सम्मिलित किया जाये तो वह अधिक हितकर हो सकेगा।

---

1. बहिष्कृत भारत : दि. 12-8-1927

9

सन् 1927 के प्रारंभ काल में ही डा. आंबेडकर को विधान मंडल का सदस्य नियुक्त किया गया। 18 फरवरी, 1927 के दिन उन्होंने शपथ ग्रहण की। उनके साथ ही मेघवाल समाज के डा. सोलंकी भी अस्पृश्यों के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त हुए थे। 24 फरवरी, 1927 के दिन डा. साहब ने मुंबई विधान मंडल में अपना पहला भाषण दिया और वह भी बजट पर। आय-व्यय पर आलोचना करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि यह बजट करदाता की दृष्टि से कितना अन्यायकारक और असमर्थनीय है। उन्होंने कहा कि खेती पर पुरोगामी तरीके से कर लगाया जाये। अंत में उन्होंने आशा व्यक्त की कि सरकार अनिवार्य शिक्षा, चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने, जनता की आवश्यक मांगों को पूरा कराने, और व्यसनों से मुक्त कराने के लिए जरूरी कदम उठाने का प्रयास करेगी जिनसे स्थिति में सुधार हो सके। उनका पहला भाषण ही इतना प्रभावशाली था कि सदस्यों को उनकी विद्वत्ता, उनके वक्तव्य और उनकी वकालत की निपुणता का अनुभव हुआ। डा. साहब का पहला भाषण सुनकर देहलवी साहब इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने पत्र लिखकर उनका अभिनंदन किया और उन्हें चायपान के लिए निमंत्रित कर उनका सम्मान भी किया।[1]

सरकार की नशाबंदी नीति पर आलोचना करते हुए उन्होंने 10 मार्च, 1927 के दिन कहा था कि देश में देसी शराब निकालने की हाथ भट्टियां अधिक बढ़ रही हैं और कारखाने पनप रहे हैं, इसका प्रमुख कारण सरकार का शराब पर लगाया गया अत्यधिक कर है। देश की अर्थव्यवस्था पर विचार करते समय शराबबंदी के कारण जो नुकसान होगा उसकी पूर्ति कैसे की जा सकेगी और यह नशाबंदी की नीति किस तरह सफल हो सकेगी, यह पहलू भी उन्होंने सामने रखा था।

अपने बजट भाषण में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा का अवसर हर व्यक्ति को मिलना चाहिए। यह समझाते हुए उन्होंने एक मार्मिक तत्व प्रस्तुत किया। यदि समाज की सभी जातियों को समान स्तर पर लाने का संकल्प हो तो फिर समानता

---

1. विविधवृत्त : 23-2-1936

के तत्व को निरंतर प्रतिपादित करने के बजाय जो पिछड़ा वर्ग है उसे अधिक सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए और जो उन्नत वर्ग है उसकी सुविधाओं में कटौती करनी चाहिए। उन्होंने इस विषमता के तत्व को अपनाने की राय दी। उनका यह विचार था कि पूर्वाग्रही जातीयवादी शिक्षकों को शिक्षा जैसे पवित्र राष्ट्रीय कार्य का भार नहीं सौंपना चाहिए।

इन्हीं दिनों महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी महाराज की तृतीय जन्मशती अर्थात् 300वां जन्म दिवस मनाया गया था। बदलापुर में डा. आंबेडकर को इस उत्सव में भाग लेने के लिए निमंत्रित किया गया। वहां सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान पालये शास्त्री ने उनका स्वागत किया और उनसे भाषण देने का आग्रह किया। अपने भाषण में डा. आंबेडकर ने शिवाजी महाराज का यथोचित गौरव कर इस बात पर जोर दिया, "अपनी वीरता के बल पर प्राप्त किए गए स्वराज्य को महाराष्ट्र क्यों गंवा बैठा? जातीय विषमता और पेशवाई के प्रति द्वेष ही इसके मूल कारण रहे थे।"

11 मई, 1927 के दिन पुणे में श्री थोरात की अध्यक्षता में अस्पृश्य समाज की एक सभा में हुई थी। इस परिषद में डा. आंबेडकर, श्रीधर पंत तिलक के प्रभावशाली भाषण हुए। लोकमान्य तिलक के सुपुत्र श्रीधर पंत ने महाराष्ट्र प्रदेश परिषद में अस्पृश्यता का सवाल न उठाने के लिए न. चि. केलकर और भोपटकर को जिम्मेदार ठहराया। इसी रात लोकमान्य तिलक की गायकवाड़ हवेली में 'समाज समता संघ' की ओर से सहभोज का आयोजन किया गया था।

मुंबई के ठाकुरद्वार इलाके में नवनिर्मित मंदिर अस्पृश्यों के लिए खुला रहेगा—इसकी घोषणा जून, 1929 में की गयी। डा. आंबेडकर ने मंदिर की व्यवस्थापक समिति के सचिव से फोन पर बातचीत की और उनसे मुलाकात करने का समय लिया। फिर वे शिवतरकर को साथ लेकर मंदिर पहुंचे। मगर जब वहां पास रहने वाले लोगों ने डा. आंबेडकर को पहचान लिया तब उन सबने आंबडेकर पर धावा बोल दिया। अवसर को समझकर अपनी व्यवहार कुशलता से आंबेडकर ने उन्हें समझाया कि वे मंदिर के सचिव के बुलावे पर ही वहां आये हैं। बड़ी देर तक विवाद, कहासुनी होती रही। इस भिड़ंत के बाद आंबेडकर और शिवतरकर वापिस लौट आये। डा. साहब की समझ बूझ और व्यवहार कुशलता से ही जान पर आयी मुसीबत टल गयी।

जुलाई, 1927 के तीसरे सप्ताह में आंबेडकर ने पुणे की मांगवाडी में बहुत महत्वपूर्ण भाषण दिया। इस सभा में 'दीनबंधु' अखबार के संपादक श्री नवले, पां. ना. राजभोज, सूबेदार घाडगे, सत्य शोधक समाज के बरार विभाग के नेता आनंदस्वामी इत्यादि जाने माने लोग उपस्थिति थे। उन्होंने अपने भाषण में कहा, "कुछ लोगों का मुझ पर आक्षेप है कि मैं केवल महार जाति के लोगों के काम करता हूं। तो मेरा उनको यही जवाब

है कि मुंबई कारपोरेशन में मैने पी. बाजु नामक चमार जाति के खिलाड़ी को स्थान दिलाने के लिए स्वयं जाकर प्रयास किया है। मैंने अपने घर में एक मांग जाति के बालक का पालन पोषण किया है। हमारे नासिक और जलगांव के छात्रावास में सभी अस्पृश्य जाति के छात्र रहते हैं। इस पर भी अगर चमार जाति का कोई भी योग्य नेता सामने आता है तो मैं स्वयं उसके लिए अपना नेता पद छोड़ने को तैयार हूं।" इस तरह उन्होंने उन पर दोषारोपण करने वालों पर तीव्र प्रहार किया है। फिर उन्होंने ललकारा कि सारा अस्पृश्य समाज एकता के साथ अपनी वाणी, अपने विचार और अपने कार्यों द्वारा अन्याय का प्रतिकार करने, उसका सामना करने, उसके विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सामने आये। डा. आंबेडकर ने जुलाई मास के अंत में मुंबई विद्यापीठ कानून में सुधार करने के लिए प्रस्तुत बिल पर चर्चा में भाग लेकर यह प्रतिपादित किया कि विद्यार्थी और महाविश्वविद्यालय दोनों को एक दूसरे का सहयोगी होना आवश्यक है। स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास के लिए दोनों को ही पूरी लगन से प्रयत्नशील होना चाहिए। उन्होंने अपने भाषण में इस भांति के आंतरिक सहयोग पर अधिक जोर दिया था। उन्होंने अपनी यह मांग भी पेश की कि विद्यापीठ की सीनेट में अस्पृश्यों के प्रतिनिधि भी होने चाहिए।

विधान मंडल के कामकाज में जिस तरह छोटी मोटी बातों पर उनकी पूरी नजर रहती थी उसी तरह दलित समाज के सभी सवालों पर भी उनका पूरा ध्यान रहता था। वे सदैव सतर्क रहते थे। एक समय उन्होंने गृहमंत्री से प्रश्न किया, "क्या पुलिस विभाग में अस्पृश्यों को भर्ती करने की मनाही है ?" होटसन नामक गृहमंत्री ने इंकार किया। इस पर तुरंत डा. आंबेडकर ने उनके सामने मुंबई पुलिस कमिश्नर द्वारा अस्पृश्यों को पुलिस में भर्ती करते समय दी गयी नामंजूरी का सबूत पेश कर उन्हें असमंजस में डाल दिया।

10

अभी तक डा. आंबेडकर अस्पृश्य समाज में वैयक्तिकता का स्वाभिमान जगाने का प्रयास कर रहे थे, निज गौरव की पहचान पैदा कर रहे थे। वे यह अंदाज लगा रहे थे कि इनके मन की तैयारी कहां तक पहुंची है। उन्हें यह पता चल गया था कि अस्पृश्यों के हृदय में स्वाभिमान के बीज बोए जा चुके हैं, लेकिन जब तक पहलवान अखाड़े में नहीं उतरता तब तक उसे अपनी ताकत का भरोसा नहीं होता, अथवा लड़ाई के मैदान में कूदकर लोहा लिये बगैर अपने दुश्मन की या अपनी सैनिक शक्ति का तुलनात्मक अंदाज नहीं लिया जा सकता। उसी प्रकार अस्पृश्य समाज की शक्ति का परीक्षण तब तक नहीं किया जा सकता जब तक वह प्रत्यक्ष रूप से संघर्षरत नहीं होता। बाबासाहब इसे महसूस करने लगे थे।

बाबासाहब ने सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक स्तर पर तीन दिशाओं से घेरने वाले संघर्ष का मुहूर्त स्तंभ महाड़ सत्याग्रह द्वारा स्थापित करने का निश्चय किया। श्री एस. के. बोले ने मुंबई असेंबली में 4 अगस्त, 1923 को एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखा था। इस प्रस्ताव के अनुसार यह तय हुआ कि नदी, तालाब कुएं, हौज, आदि सारे सार्वजनिक जल उपलब्ध कराने वाले स्थानों, साथ ही स्कूलों, दवाखानों, शिक्षा केंद्रों, न्यायालयों तथा सार्वजनिक स्थानों पर अस्पृश्यों के प्रवेश पर कोई प्रतिबंध न हो। बंबई सरकार ने अपने सभी विभागों को इस प्रस्ताव का पालन करने का आदेश दिया। लेकिन सही मायने में इस कानून का पालन नहीं हो रहा था। सामाजिक व्यवहार में अस्पृश्यों को सार्वजनिक स्थानों में नहीं आने दिया जाता था। इसलिए डा. आंबेडकर ने यह साबित करने के लिए कि पानी पीने का अधिकार मानवीय मूल्य है और अब उसे कानून का पृष्ठाधान है तो उन्होंने महाड़ के सार्वजनिक 'चवदार' तालाब पर अपना मानवीय अधिकार हासिल करने का निश्चय किया जिससे लोगों को इसका सही बोध हो सके।

महाड़ का चप्पा चप्पा बाबासाहब का जाना पहचाना था। फौजी नौकरी से पेंशन पाये हुए महार जाति के लोगों ने यहीं पर अपना आवास बनाया था। यहां बसे हुए अनेक लोगों को सामाजिक कार्य की समझ थी, उनमें चेतना थी, लगन थी। यहां पर उनके पिता के साथ समाज सेवा में लगे कार्यकर्ताओं से भी उनका अच्छा परिचय था।

फौज में भरती बंद होने के बाद महार जाति के कई लोगों ने सरकारी सहायता के लिए अपनी अर्जियां दे रखी थीं। इसलिए बाबासाहब को यह विश्वास था कि ये सब लोग समय पड़ने पर अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिए भी तत्पर रहेंगे। साथ ही, बाबासाहब ने इस पर भी ध्यान दिया कि फौज से रिटायर होकर वापिस आने के कारण फौजी अनुशासन इनके दिमागों में घर कर चुका है और इसलिए वे अपने नेता तथा वरिष्ठों की आज्ञा का पालन बिना हुज्जत और बहस के करेंगे। यह बात अधिक महत्वपूर्ण है।

महाड़ के तालाब के बारे में एक और अहम बात थी। महाड़ की नगर पालिका एक प्रस्ताव पास कर चुकी थी, "यह तालाब सार्वजनिक है और इसका पानी अस्पृश्यों समेत सभी जन उपयोग में लाने के लिए मुक्त हैं।" इसलिए बाबासाहब को यह मोर्चा लेना संभव हो सका कि उनका यह आंदोलन कानून तोड़ने के लिए नहीं बल्कि कानून का सही अमल करवाने के लिए है। यह जाहिर है कि निजी जलाशय पर उन्हें अस्पृश्यों का अधिकार जताना संभव नहीं था। लेकिन नगरपालिका की सीमा में स्थित सार्वजनिक तालाब पर नगरपालिका का प्रस्ताव मंजूर हो जाने के बाद एक नागरिक और इंसान के नाते हम यह अधिकार जता रहे हैं। बाबासाहब की भूमिका इस प्रकार ठोस थी।

महाड़ में इस परिषद का प्रारंभ 19 मार्च, 1927 को होना निर्धारित था। इसमें सम्मिलित होने के लिए गुजरात और महाराष्ट्र के खेडों ग्रामों से करीबन पांच हजार लोग वहां आ पहुंचे थे। ऐन वक्त पर पानी की कमी न हो, इसलिए पहले से ही स्पृश्य लोगों से 40 रुपयों का पानी खरीद लिया गया था। संध्या समय परिषद का कार्य प्रारंभ हुआ। अपने परिचायक भाषण में बाबासाहब ने त्रिसूत्र का अवलंबन करने के लिए कहा—(1) मरे जीव का मांसाहार करना बंद करो। (2) झूठे भोजन को स्वीकार मत करो। (3) ऊंच-नीच की कल्पना मन से निकालकर उच्चतर वर्ग का रहन सहन अपनाओ। इसके साथ ही उन्होंने सलाह दी कि अस्पृश्य वर्ग खेती का व्यवसाय करे। उनका भाषण स्वाभिमान जगाने वाला था। इसका लोगों के मन पर वांछित असर हुआ।

दूसरे दिन सुबह नौ बजे से अधिवेशन प्रारंभ हुआ। सबसे पहले यह प्रस्ताव पास किया गया कि महाड़ म्यूनिसिपल कमेटी द्वारा बहिष्कृत समाज को 'चवदार' तालाब से पानी भरने का जो निर्णय लिया गया है उस फैसले पर अमल किया जाये। इस मकसद से बाबासाहब के पीछे पीछे पांच हजार लोगों का हुजूम एक जुलूस बनाकर 'चवदार' तालाब के किनारे पहुंचा[1]। फिर बाबासाहब और उनके बाद सारे जनसमुदाय

1. जनता, विशेषांक : 1933, पृ. 10
टिपणीस, सु. गो. : 'महाड़ के स्वतंत्रता युद्ध की सफल मुहूर्त मेढ़।'

ने तालाब का मीठा पानी पीकर अपना अधिकार सिद्ध किया। इसके बाद सारे लोग सभा स्थान पर वापिस लौटे। उन सबके चेहरों पर एक निराला आनंद और उत्साह झलक रहा था।

इसके बाद सारा समुदाय चार पांच की टोली बनाकर गांव में घूमने लगा। दूसरी तरफ सनातनी लोगों ने अस्पृश्यों पर धावा बोलने की गुप्त तैयारी शुरू कर दी थी। चारों तरफ यह प्रचार किया गया कि धर्म का संकट टूट पड़ा है। अस्पृश्य जन इस बारे में जरा भी कल्पना नहीं कर सकते थे। यह दांव चुपचाप पक रहा था। अचानक सनातनी गुंडों ने भोजन के मंडप पर धावा बोल दिया। करीबन 50-60 व्यक्ति भोजन समाप्त कर अपने अपने गांव जाने को तैयार बैठे थे। पंगत चल रही थी। इतने में इन सनातनी गुंडों ने अचानक हमला कर उन पर लाठियों के वार शुरू कर दिये। मार खाकर वे लोग वहीं बेहोश हो गये। फिर गुंडों ने अपना रुख गांव की ओर मोड़ दिया। जो भी प्रतिनिधि इक्का दुक्का गांव में घूमता नजर आया उसे उन्होंने पीटना शुरू कर दिया।

इस मारपीट की खबर पाते ही अस्पृश्य प्रतिनिधियों का क्रोध भड़क उठा। वे जवावी हमले की तैयारी करने लगे। बाबासाहब का खून भी इस हमले से घायल और बेहोश हुए लोगों और असहनीय वेदनाओं से तिलमिलाते जख्मी प्रतिनिधियों को देखकर खौल उठा। परंतु उन्होंने विवेक की लगाम लगाकर अपने गुस्से को शांत किया और अपने अनुयायियों को गंभीरता से संबोधित करते हुए कहा, "इस समय आपे से बाहर मत होइए। अपने हाथ मत उठने दीजिए। अपने गुस्से को पी जाइये, मन शांत रखिये। हमें प्रतिघात नहीं करना है। हमें उनके वारों को सहन करना होगा। और इन सनातनियों को अहिंसा की शक्ति के दर्शन कराने होंगे।" उनकी यह आज्ञा सुनकर दस हजार अस्पृश्यों का समुदाय शांतिपर्वूक मुसीबत का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गया।

इस समुदाय में अफगान युद्ध और अनेक युद्धभूमियों में अपनी बहादुरी का डंका बजाकर लौटे हुए सैनिक सेनानियों का बहुत बड़ा समूह था। अगर उन्होंने प्रतिघात का प्रहार करने की ठानी होती और वे धावा कर देते तो इस बुरी तरह वे उन लोगों पर टूट पड़ते कि उन्हें जान बचाने लिए सर पर पैर रखकर भागने को विवश कर देते। मगर विरोधियों की पत्थरों की बौछार से आनन फानन घायल होते हुए भी, जमीन पर एक के बाद एक गिरते हुए भी उन्होंने जवाबी हमला नहीं किया। बहुत शांति के साथ अपने नेता का आदेश सर आंखों पर रखकर, उनके शब्दों का सम्मान रखने के लिए अपने प्राणों की परवाह नहीं की और सब सहनशीलता की कसौटी पर खरे उतरे।

विरोधियों पर हमला बोलकर जो कार्य संभव नहीं था उसे बाबासाहब ने अपनी व्यवहार कुशलता के बल पर बिना शांति भंग किए प्राप्त कर दिखाया।

वारदात खत्म हो जाने पर पुलिस और जिलाधीश घटनास्थल पर पहुंचे। बाबासाहब ने खुद सारे घायल व्यक्तियों को अस्पताल में दाखिल करवाया और इलाज शुरू करवाया। उसके बाद पुलिस ने बदमाशों पर मुकदमे दायर किये। डा. आंबेडकर ने पुलिस थाने में बैठकर दंगा फसाद की तहकीकात करवाई और 23 तारीख को मुंबई वापिस लौटे। तब तक यहां घर के सारे सदस्य चिंतातुर थे और रमाबाई ने तो दो दिनों से अन्न-जल भी ग्रहण नहीं किया था।

वहां ब्राह्मण समुदाय ने विष्णु मंदिर में सभा की। उस सभा में 'चवदार' तालाब को शुद्ध करने का निर्णय लिया गया। उसके अनुसार 'चवदार' तालाब से 108 गागर पानी निकाला गया। फिर घर घर से गोबर, गोमूत्र जमाकर दूध और दही की गागरों में उसे मिलाया गया और यह सामग्री फिर 'चवदार' तालाब में डाली गयी। हमारे देश के धार्मिक लोगों की शुद्धिकरण की कल्पना ही निराली है। इंसान के स्पर्श की तुलना में गोबर और गोमूत्र अधिक शुद्ध माने जाते हैं। चार दिनों तक तालाब सूना रहा और उसके बाद फिर गांव के लोग वहां पानी भरने आने लगे। उस भीड़ में मुसलमान नर नारी भी थे। मगर उनकी वजह से तालाब भ्रष्ट नहीं हुआ।

बदमाशों पर मुकदमे चले और 6 जून, 1927 को नौ अभियुक्तों में से पांच को सख्त कारावास की सजा दी गयी। डा. आंबेडकर ने उस समय कहा, "यदि इस दंगे के समय अहिंदू अधिकारी न होते तो पक्षपात रहित तहकीकात करना कठिन था।"

यह परिषद केवल सभा नहीं थी। वह दलितों की क्रांति का शुभारंभ था। इस परिषद ने भारतवर्ष के राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में एक नये अध्याय का प्रारंभ किया था। दलित समाज ने पहली बार अमली आंदोलन में भाग लिया था। यहां से प्रेरणा ग्रहण कर सब प्रतिनिधि और उपस्थित लोग अपने अपने गांव को लौटे, मगर एक कसम खाकर। उन्होंने मरे हुए जानवरों का मांस खाना छोड़ दिया, मरे जानवरों को ढोना बंद कर दिया और भीख मांगना भी। पहली बार मानसिक गुलामी की बेड़ियां टूटी थीं।

इसके बाद तो गांव गांव में देहातों के अस्पृश्यों को हिंदुओं द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों और बहिष्कारों का सामना करना पड़ा। सारे भारत में जगह जगह इस पर प्रतिक्रियाएं हुईं। सावरकर के समान समाज सुधारकों ने डा. आंबेडकर को हार्दिक समर्थन दिया। महाड़ गांव में भी धापूराव जोशी और टिपणीस परिवार आंदोलन में दलितों के पक्ष में लड़ता रहा।

11

देश में निकलने वाले तत्कालीन अखबारों का रुख हमेशा आंबेडकर विरोधी हुआ करता था। अपने ऊपर की जाने वाली टीका टिप्पणी का जवाब देने के लिए, समाज में अपने आंदोलन का प्रचार करने, उसके बारे में जानकारी देने, उनमें जागृति पैदा करने, प्रेरणा और मार्गदर्शन आदि बातों के लिए आंबेडकर जी को अपना अखबार चलाने की जरूरत विशेष रूप से महसूस होने लगी। साथ ही, यदि अंग्रेजी शासन का भारतीयों के हाथ में सत्तांतरण हो जाता है तो बहिष्कृत समाज को उनके राज में न्याय मिल ही पायेगा, इसका उन्हें विश्वास नहीं था। इसलिए उन्होंने 'बहिष्कृत भारत' नामक एक पाक्षिक पत्र का प्रारंभ किया। जैसे पंछियों को प्रवास के लिए पंख चाहिए उसी तरह अपने विचारों को जन मानस तक पहुंचाने के लिए अखबार जरूरी है, इसका उन्हें पूरा यकीन हो गया था। इसी कारण उन्होंने अखबारनवीसी के लिए अपनी कलम उठायी। वे इस अखबार के संपादक भी थे। इस पाक्षिक पत्र का पहला अंक 3 अप्रैल, 1927 को प्रकाशित हुआ। 15 नवंबर, 1929 तक 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन चलता रहा। कई बार अंक निकल नहीं पाये तो कुछ संयुक्त अंक भी प्रकाशित हुए। अपने काम का सारा भार संभालते हुए डा. आंबेडकर इस पत्र का बहुतायत भाग स्वयं लिखते थे। अकेले ही 24-24 कालम सामग्री स्वयं लिखने का चमत्कार भी बाबासाहब को ही करना पड़ता था।[1] बात यह थी कि अन्य समाचार पत्रों के संपादकों से 'बहिष्कृत भारत' का संपादन निराला था। यह पैसा कमाने का व्यवसाय न होकर जन जागृति के लिए अविरल निष्ठा से और पूरी कर्तव्य दक्षता के-साथ, सारी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बाबासाहब तीन साल तक अखबार का यह जंजाल चलाते रहे।

'चवदार' तालाब के शुद्धीकरण के समाचार जानकर बाबासाहब के सिर से पैर तक आग लग गयी। वह जान गये कि यह बीमारी साधारण उपचारों से दूर होनी संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने कठोर उपाय करने का निश्चय किया। और वे इसकी तैयारी करने लगे।

उन्हीं दिनों महाराष्ट्र के ब्राह्मणों से अतिरिक्त समाज के नेतागण जेधे और जबलकर

---

1. पानवावणे : पत्रकार डा. बाबासाहब आंबेडकर, पृ. 64

आंबेडकर जी से मिले और उन्होंने कहा, "अगर वे अपने इस आंदोलन में ब्राह्मणों को भाग न लेने दें तो ये सारे अब्राह्मण आपके आंदोलन में शामिल हो जायेंगे।" तब आंबेडकर जी ने उत्तर दिया, "मेरा यह आंदोलन ब्राह्मणों के विरुद्ध नहीं है बल्कि ब्राह्मणवाद के विरुद्ध है। सारे ब्राह्मण दलितों का विरोध करते हैं, यह बात नहीं है और अब्राह्मण समुदाय में भी ऊंच नीच का भेद पालने वाले लोग हैं, यह न भूलिए।" यह कहकर बाबासाहब ने उनकी सलाह ठुकरा दी।

'बहिष्कृत भारत' के 26 जून, 1927 के अंक में उन्होंने आह्वान किया, "हमारे समाज पर लगे अस्पृश्यता के कलंक को धोने की जिन्हें तीव्र लालसा हो वे सत्याग्रह में भाग लेने के लिए बहिष्कृत समाज के दफ्तर में अपने नाम दर्ज करवा लें।" अपने लेख में उन्होंने प्रश्न किया, "धर्म इंसान के लिए है या इंसान धर्म के लिए है ? हम हिंदू धर्म के एक अंग हैं या नहीं, इस बात का हमें अंतिम निर्णय कर ही लेना है।"

महाड़ नगरपालिका ने 4 अगस्त को पास किये गये नये प्रस्ताव द्वारा अपने पहले निर्णय "चवदार तालाब सार्वजनिक घोषित किया जाता है", को वापिस ले लिया। 11 सितंबर को डा. आंबेडकर ने मुंबई के दामोदर हाल में एक आम सभा की और उसमें अगला कार्यक्रम निश्चित करने के लिए एक नयी समिति का गठन किया। इस समिति ने यह तय किया कि 25 और 26 दिसंबर को सत्याग्रह किया जायेगा।

सन् 1927 के नवंबर महीने में ब्रिटिश संसद के मजदूर पार्टी के सदस्य गार्डी जोन्स मुंबई पधारे। भारतीय अस्पृश्यों के लिए "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" क्या कार्य कर रही है इसकी जानकारी देने के लिए डा. आंबेडकर ने मिस्टर जोन्स को 4 नवंबर, 1927 के दिन अपने दफ्तर में चाय पार्टी पर आमंत्रित किया। उसके बाद बहिष्कृत हितकारिणी सभा की ओर से दामोदर हाल में उनका सत्कार भी किया गया।

डा. आंबेडकर ने 25 नवंबर के 'बहिष्कृत भारत' के अंक में अपने सत्याग्रह का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए यह समझाया कि यह सत्याग्रह किस तरह न्यायसंगत है। "जिस कार्य से जन संगठित होते हैं वह सत्कार्य है और उसके लिए जो आग्रह किया जाता है वह सत्याग्रह है। इसलिए सत्याग्रह का अर्थ है सत्कार्य के लिए लोगों को एक साथ लाना। यदि अस्पृश्य इस अस्पृश्यता के गड्ढे से बाहर निकलेंगे तो उन्हें आत्म स्वतंत्रता का आंनद प्राप्त होगा। परिणााम यह होगा कि वे अपने पराक्रम से, बुद्धि के बल पर, और उद्योगों के सहारे देश के उत्कर्ष में सहयोग दे सकेंगे। प्रगति के लिए सहायक हो सकेंगे।" वे कहते अवश्य थे, "आत्मरक्षा के लिए हिंसा का उपयोग निषिद्ध नहीं है।" मगर उन्होंने अपने सत्याग्रह के लिए केवल अहिंसा का ही आग्रह रखा, यह बात ध्यान में रखना जरूरी है।

2 अक्तूबर, 1927 को डा. आंबेडकर ने पुणे के अस्पृश्य विद्यार्थियों की परिषद

में अध्यक्ष पद से बोलते हुए विद्यार्थियों को यह हितोपदेश दिया कि उन्हें समाज के भले के लिए पूरी लगन से काम करना चाहिए, क्योंकि उन पर ही समाज का भविष्य अवलंबित है।

इन्हीं दिनों लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के चिरंजीव श्रीधर पंत की बाबा साहब से मित्रता हुई। वे प्रगतिशील विचारों के थे। उन्होंने तिलकवाड़े में अस्पृश्य बालकों के गायन का कार्यक्रम 'केसरी' के ट्रस्टियों की इच्छा के विरुद्ध आयोजित किया था।

उसके बाद श्रीधर पंत की दी हुई चाय पार्टी में बाबासाहब ने भाग लिया। इस घटना के करीबन दो महीने बाद ही श्रीधर पंत ने आत्महत्या कर ली थी। इसके पूर्व श्रीधर पंत ने बाबासाहब के नाम पत्र लिख छोड़ा था।

पुणे के अहिल्याश्रम में शिवराम जानबा कांबले ने डा. हेराल्ड मन की सेवा निवृत्ति के कारण विदाई समारोह आयोजित किया। वे कृषि विभाग के संचालक थे और उन्होंने समाजशास्त्र पर काफी शोधकार्य कर अस्पृश्यों पर लेख लिखे थे। इस समारोह में भाषण करते हुए बाबासाहब ने कृतज्ञतापूर्वक कहा, "मन साहब ने मुझे बहुत तरह से मदद की है।"

वे श्री शि. जा. कांबले के साथ सातारा जिले के कोरेगांव में गये और वहां स्थापित 'जय स्तंभ' को उन्होंने भेंट दी और वहां वीरगति को प्राप्त हुए शूर महार सैनिकों को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की।

डा. पंजाबराव देशमुख और बाबासाहब गवई ने अमरावती शहर में मंदिर प्रवेश सत्याग्रह करने का निश्चय किया था। 13 नवंबर, 1927 को मंदिर प्रवेश कमेटी द्वारा इंद्रभुवन थियेटर में एक परिषद आयोजित की गयी थी। इस परिषद के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए बाबासाहब आंबेडकर ने कहा, "कोई भी देवता अस्पृश्यों के कारण भ्रष्ट नहीं होता इसलिए अस्पृश्य समुदाय के लिए अलग मंदिर बनाया जाये, इसका हम विरोध करते हैं। यदि यह माना जाता है कि हिंदुत्व हिंदुओं के लिए है तो फिर वह स्पृश्य और अस्पृश्य दोनों के लिये है। हिंदुत्व के विकास में ऋषि वाल्मीकि, रोहिदास, चोखामेला आदि संतों और सिदवाक जैसे महार भक्तों का भी बहुत बड़ा योगदान है।" परिषद के दूसरे दिन के अधिवेशन में बराबर के प्रसिद्ध नेता जी. एस. खापर्डे की सलाह पर सत्याग्रह करने की तारीख तीन महीनों के लिए आगे बढ़ा दी गयी। इसी सभा में बाबासाहब के बंधु बालाराम के स्वर्गवास का समाचार तार द्वारा प्राप्त हुआ। इसलिए उनकी याद में दो मिनिट का मौन धारण कर बालाराम की आत्मा को सभा ने श्रद्धांजलि अर्पित की। मुंबई लौटने से पहले 'महाराष्ट्र केसरी' के संपादक श्री चौहान ने बाबासाहब के सम्मान में एक चाय पार्टी दी।

12

महाड़ के सनातनी लोगों ने 17 नवंबर को वीरेश्वर मंदिर में सभा करके किस तरह सत्याग्रह का विरोध किया जाए, इस विषय पर चर्चा की। पुणे के सर्वश्री गोखले, करंदीकर आदि हिंदू नेताओं ने 30 नवंबर, 1927 को इन लोगों को इस कार्य से विमुख करने का प्रयास किया, लेकिन वह सफल न हो सका। 12 सितंबर, 1927 को महाड़ की दीवानी अदालत में सनातनियों ने आंबेडकर, शिवतरकर, आदि पर 'प्रतिबंध आदेश' प्राप्त करने के लिए प्रार्थना पत्र दिया। कोर्ट ने 14 दिसंबर को 'प्रतिबंध आदेश' जारी कर आंबेडकर आदि को नोटिस भेजा।

इधर परिषद आयोजित करने की जोरदार तैयारी चल रही थी। एक मुसलमान व्यक्ति के खेत परिषद के लिए मिल गये। चूंकि गांव वालों ने अस्पृश्यों को अनाज, किराना देने की मनाही कर दी थी इसलिए सत्याग्रह समिति को दस दिनों तक चल सकने लायक अनाज, किराना, सामान आदि दूसरे गांवों से लाना पड़ा। सारे अधिकारीगण 19 दिसंबर तक वहां उपस्थित हो गये। 'चवदार' तालाब के चारों ओर पुलिस का पहरा लगा दिया गया। परिषद के नेतागण और स्वयंसेवक तथा लोगों के झुंड 21 तारीख से वहां पहुंचने लगे।

मुंबई के कार्यकर्ताओं को साथ लेकर बाबासाहब 'आबा बोट' से रवाना हुए।[1] यह स्टीमर अलीबाग, रेवदंडा, हबसाण—इन बंदरगाहों पर रुकता हुआ शाम को हरेश्वर बंदरगाह पर लगा। डा. आंबेडकर ने खादी का कुरता और उस पर एक उपरना डाल लिया था। यात्रा के दौरान बहुत से स्पृश्य प्रवासी उनसे मिलते और उनसे तरह तरह के प्रश्न पूछते थे। हरेश्वर बंदरगाह पर पहुंचते ही जहाजघाट पर खड़े लोगों ने गगनभेदी जयघोष किया और वहां कोलमांडला गांव की ओर से बाबासाहब का सत्कार किया गया। जहाजघाट से करीबन एक मील की दूरी पर सत्याग्रहियों के भोजन, जलपान आदि की व्यवस्था की गयी।

25 दिसंबर को सुबह बाबासाहब का दिल को छू जाने वाला हृदयग्राही भाषण

---

1. ज्ञानप्रकाश : 22-1-1928

हुआ। वे बोले, "मुझे आप सब का मन चाहिए, मनपसंद भोजन की यह शानदार तैयारी, ये फूलों के हार सब निरर्थक हैं।"

सुबह आठ बजे फिर स्टीमर रवाना हुआ और बंदरी महाजून, वरटी बंदरगाहों पर ठहरता हुआ दोपहर 12.30 पर दासगांव पहुंचा।

जब डा. साहब स्टीमर से 12.30 पर उतर कर जहाजघाट पहुंचे तो वहां दोपहर की धूप में 3,000 लोग उनके स्वागत के लिए उपस्थित थे। उसी समय उन्हें जिला मजिस्ट्रेट का पत्र मिला। उसमें लिखा था, "आप तुरंत महाड़ में मुझसे मिलिये।" इसलिए डा. आंबेडकर अपने साथी सहस्रबुद्धे को साथ लेकर फौरन मजिस्ट्रेट से मिलने महाड़ के लिए रवाना हो गये। मजिस्ट्रेट ने बहुत नम्रता के साथ उन्हें समझाया कि वे अपने आंदोलन की तारीख जरा आगे बढ़ायें। उनके इस आग्रह पर डा. साहब ने उत्तर दिया, "मैं अपने सहयोगियों से चर्चा करने के बाद जो भी निर्णय होगा आपको सूचित करूंगा।।"

लोग दासगांव से एक जुलूस निकालकर शिवाजी महाराज के नाम का जयघोष करते हुए दोपहर करीबन 2.30 बजे महाड़ पहुंचे। फिर डा. आंबेडकर ने उनकी पंगत में साथ बैठकर भोजन किया। शाम 4.30 बजे परिषद का काम काज प्रारंभ हुआ। इतने मीलों की पैदल यात्रा कर महाड़ पहुंचे 5,000 गरीब बांधवों के जन समुदाय के सामने भाषण करते हुए बाबासाहब ने अपनी बुलंद आवाज में साफ कहा, "अगर हमने चवदार तालाब का पानी नहीं पिया तो हमारी जान के लाले पड़ जायेंगे, ऐसी कोई बात नहीं है। हम तो यह दिखा देना चाहते हैं कि औरों की तरह हम भी इंसान हैं। यह सभा समता का श्रीगणेश करने के लिए बुलायी गयी है। हम यहां उस आंदोलन का मुहूर्त खंभ गाड़ना चाहते हैं।" इस परिषद की तुलना 1789 को 5 मई के दिन फ्रांस की राष्ट्रीय सभा के वर्साय स्थान में हुई सभा से करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "उन्हें फ्रांसीसी क्रांति के लिए जिस प्रकार के संगठन की आवश्यकता थी हमें भी उसी तरह के संगठन का निर्माण करना है। उस सभा के द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही हिंदू समाज के संवर्धन के लिए आवश्यक है।" उन्होंने आगे कहा, "दो तत्वों पर हिंदू समाज की पुनर्रचना करनी चाहिए। वे हैं, समता और जातिविहीन समाज रचना।" यह उनके भाषण की समाप्ति का महत्वपूर्ण भाग था।

उनके पहले प्रस्ताव का आशय था, "इंसान जन्म से समान पैदा होते हैं और मरने तक उन्हें समान ही रहना चाहिए।" इस प्रस्ताव का अस्पृश्य महिला गंगूबाई सामंत ने समर्थन किया। दूसरा प्रस्ताव 'मनुस्मृति' को दहन करने का पास किया गया। यह 'मनुस्मृति' के निषेध का एक अंग था। सभी वक्ताओं के इस प्रस्ताव पर जोरदार भाषण

हुए। परिषद ने चार प्रस्ताव पास किये थे। इनके प्रति महार, मांग और स्त्री वक्ताओं ने समर्थन कर अपनी सम्मति प्रदर्शित की थी। रात में करीबन नौ बजे परिषद के स्थान पर पहले से ही तैयार की गयी वेदी पर 'मनुस्मृति' रखी गयी और अस्पृश्य समाज के कुछ साधुओं ने विधिपूर्वक उसका दाह संस्कार किया।[1] 'मनुस्मृति' का दाह संस्कार करने के बाद डा. आंबेडकर ने घोषणा की कि अब दुनिया समझ ले कि विषमता का कानून इस भारत में नहीं चलेगा। इस घटना ने जैसे शंकराचार्य को झकझोर दिया था वैसे ही गैर ब्राह्मणों के नेता भास्करराव जाधव को भी धक्का पहुंचा था। एक और प्रस्ताव द्वारा यह भी मांग तय हुई कि पुरोहित का काम सब जातियों के लिए खुला हुआ है।

दूसरे दिन परिषद का कार्य पुनः प्रारंभ हुआ। डा. आंबेडकर ने सब सत्याग्रहियों को चेतावनी दी कि सब शांति के साथ सत्याग्रह करेंगे और कितना भी कष्ट क्यों न सहन करना पड़े वे किसी भी हालत में क्षमा याचना कर वापिस नहीं लौटेंगे। दोपहर के बाद सत्याग्रहियों के नाम लिखने का कार्य प्रारंभ हुआ। लगभग 4,000 लोगों ने अपने नाम दर्ज करवाए। सबका अटल निश्चय था। सारा दिन चर्चा में बीता। इस बीच ही जिला मजिस्ट्रेट पधारे और उन्होंने कोर्ट में दायर किए गए दावे की लोगों को जानकारी दी। उन्हें यह भी समझा दिया गया कि यदि वे कानून भंग करेंगे तो उन्हें सजा भी हो सकती है।

27 दिसंबर को उत्सुकता अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। इस समय डा. साहब ने अपने अनुयायियों को समझाया कि उनका यह आंदोलन हिंदू समाज के साथ है। हमें सरकार की खिलाफत कर अपनी ताकत फिजूल गंवाना नहीं है। "हम अपना आंदोलन आगे स्थगित कर रहे हैं; इसका यह मतलब नहीं है कि हमने अपना आंदोलन खत्म कर दिया है। हमारा संघर्ष तो चलता ही रहेगा।" कुछ क्षणों के लिए चारों तरफ स्तब्धता छा गयी। उसके बाद सब खड़े हो गए और चार चार लोगों की कतारें बनाकर उन्होंने अपना जुलूस निकाला। वे तालाब का एक चक्कर लगाकर करीबन बारह बजे तक वापिस लौटे। इसके पूर्व उस जगह अस्पृश्य महिलाओं की एक सभा बैठी। उस सभा को संबोधित करते हुए डा. आंबेडकर ने महिलाओं से कहा, "वे सब साफ सुथरी रहें। पढ़ी लिखी उच्च वर्ग की औरतों के समान अपने परिधान करें। यदि पति या

---

1. मनुस्मृति की दहनभूमि तैयार करने के लिए छह मजदूर दो दिनों तक मेहनत करते रहे। उन्होंने वहां डेढ़ फुट का चौरस छह इंच गहरा कुंड तैयार किया और उसे चंदन की लकड़ी से भरा। कुंड के चारों कोनों पर चार फुट ऊंचाई के चार खंभे खड़े किए और उन पर फूलों की मालाएं और पताकाएं लगाकर सुशोभित किया।

पुत्र शराब पीकर घर आते हैं तो उनके लिए घर के दरवाजे बंद कर दें। उन्हें भीतर न आने दें। अपने बेटे बेटियों को उचित शिक्षा दें।" डा. साहब का भाषण इतना ज्यादा असरदार रहा कि दूसरे ही दिन कई महिलाओं ने उच्च वर्ग की नारियों के समान साफ सुथरी साड़ियां पहनीं और सभा स्थल पर आयीं। इन सब नारियों को टिपणीस, चिन्ने, सहस्रबुद्धे के परिवार की महिलाओं ने साड़ी पहनने, सजने संवरने का ढंग सिखाया।

संध्या समय वहां के चमारों की बस्ती में सभा आयोजित हुई। इसे डा. आंबेडकर ने संबोधित कर उपदेश दिया। रात्रि के लगभग दस बजे यह परिषद समाप्त हुई।

सत्याग्रह परिषद समाप्त होने के बाद डा. आंबेडकर ने रायगढ़ का किला देखने की इच्छा प्रदर्शित की। 28 दिसंबर को भोजन के बाद डा. आंबेडकर सहस्रबुद्धे, चिन्ने घाटगे आदि को साथ लेकर मोटर से नातेगांव तक पहुंचे और उसके बाद पाचाड़ गांव तक सब ने पैदल यात्रा की। वे सब रायगढ़ की तलहटी में पहुंचे। रात के 9.30 बज चुके थे। दूसरे दिन सुबह सात बजे सबने नाश्ता कर कूच किया और नौ बजे तक किले पर जा पहुंचे। वहां स्नान से निपट कर फिर सबने पाचाड़ गांव से मंगवाया हुआ भोजन किया। फिर किले के दर्शनीय स्थानों को देखकर वे सब वापिस आये और भोजन कर उन्होंने रात्रि विश्राम किया। सुबह जब डा. साहब नीचे उतरने के लिए रवाना हुए तो उन्होंने देखा कि सीढ़ियों के किनारे जगह जगह लाठी से लैस सौ सौ लोगों का जत्था खड़ा है। जब इस बारे में उन्होंने पूछताछ की तो पता चला कि रायगढ़ के निचले गांव में शाम को मराठा समाज के लोग हाथों में शस्त्र लेकर घरों से बाहर निकले थे, उसे देखकर महार समुदाय के मन में यह शंका पैदा हुई कि कहीं बाबासाहब की जान खतरे में ना हो। उन्होंने पास पड़ोस के गांवों में खबर भिजवाई और अपने नेता के प्राणों की रक्षा के लिए गांव गांव से टोलियां भक्ति भावना से प्रेरित हो यहां आ पहुंचीं। लेकिन वे मराठे लोग गढ़ पर पहुंचे ही नहीं थे। संभवतया किसी ने उन्हें यहां आने से मना कर दिया था। इस घटना से बाबासाहब का हृदय भर आया और उन्हें अपने अनुयायियों की यह निष्ठा देख विश्वास हो गया कि उनके प्राण निरर्थक नहीं हैं।

गढ़ से नीचे उतरने के बाद उन्होंने देखा कि उनके स्वागत के लिए रायगढ़ घाटी की महार मोची परिवारों की नारियां हाथों में पंचारती लिए खड़ी हैं। इन नारियों के रहन सहन में अंतर दिखाई दे रहा था। बाबासाहब की आरती उतार कर नारियां वापस अपने गांवों को लौटीं और डा. साहब पाचाड़ को वापिस आये।[1] वहां से वे नातेगांव होते हुए मोटर से मुंबई पहुंचे।

---

1. डा. आंबेडकर के साथ बीते कुछ स्मरणीय प्रसंग—सी. ना. शिवतरकर

अपनी इसी यात्रा में डा. साहब ने महाड़ के नजदीक एक टेकड़ी में स्थित बौद्ध गुफाओं को देखा। उन्होंने अपने साथियों को इन गुफाओं और अवशेषों के महत्व की जानकारी दी। वहां के पत्थरी धर्मासनों पर उन्होंने किसी को बैठने नहीं दिया, क्योंकि उस पर प्राचीन बौद्ध भिक्षु आसन ग्रहण करते थे। बौद्धकालीन भिक्षुओं के शुद्ध चरित्र, सादा जीवन और समाज सेवा के व्रत की प्रशंसा करते हुए वे उसमें इतने रम गए कि उनकी आंखों से आंसू छलक पड़े।[1]

1. संघरक्षित : पृ. 58; साथ ही, सहस्त्रबुद्धे, डा. गं.नी.–आमचे आंबडेकर, जनता, 1933

13

1 जनवरी, 1928 के दिन डा. आंबेडकर ने महाड़ की नगरपालिका के अध्यक्ष के साथ 'चवदार' (स्वादिष्ट जल वाले) तालाब का चक्कर लगाया। उस तालाब के आग्नेय कोने मे उन्हें एक पत्थर गड़ा दिखा जिस पर "महाड़ नगर पालिका 1899" खुदा हुआ था। तालाब के नैऋत्य भाग में भी पत्थर अवश्य गड़ा हुआ दिखा मगर उस पर अंकित अक्षरों को छेनी से हाल ही में खरोंचा गया था।[1] डा. आंबेडकर ने महाड़ के सबजज के सामने, लगाये गये प्रतिबंध के आदेश के विरोध में ऐसी दलीलें पेश कीं जिनका खंडन संभव न था। 23 फरवरी के दिन न्यायाधीश ने यह आदेश रद्द कर दिया। इस भांति महाड़ में जो क्रांति हुई थी उसके बारे में डा. आंबेडकर ने कहा, "उत्पीड़ित मूक जनता ने, बिना उल्लेखनीय अत्याचार के अल्प समय में समान अधिकार प्राप्त कर दिखाए यह दुनिया के इतिहास में आज तक अघटित अप्रत्याशित क्रांति है।"[2]

मुंबई राज्य की असेंबली में उन्होंने 21 फरवरी, 1928 को भाग लिया और सरकारी नीति की आलोचना की। कर्मचारी महिलाओं को, उनके प्रसव काल में छुट्टी दिलाने के बारे में जो बिल पेश किया था उसका उन्होंने जोरदार समर्थन किया। उन्होंने कहा, "देश की इन माताओं को मातृत्व काल की निश्चित अवधि में विश्राम मिलना ही चाहिए।" साथ ही उन्होंने कहा, "शासन अथवा मालिकों को इन महिलाओं का खर्च उठाना चाहिए।"

इंदौर नरेश तुकोजीराव होलकर 'धनगर' समाज के थे। उन्होंने मिस मिलर नामक ईसाई कुमारी से विवाह करने का निश्चय किया। धनगर (चरवाहा) समाज ने इस विवाह का विरोध करने के लिए 4 मार्च, 1928 को परिषद की बैठक बुलवाई थी। डा. आंबेडकर स्वयं इस सभा में उपस्थित रहे और उन्होंने अपने भाषण से परिषद के सदस्यों का मन मोड़कर उस विवाह के अनुकूल प्रस्ताव मंजूर करवा लिया था। रात्रि को वे वहां से बारामती गये और वहां अस्पृश्यों की परिषद के समक्ष भाषण दिया।

---

1. होम डिपार्टमेंट फाइल नं. 355(64), डी.एस.पी. कुलाबा की दैनंदिनी दि. 7.1.1928.
2. अनंतराव उर्फ भाई चित्रे : जनता विशेषांक, 1923

19 मार्च, 1928 को उन्होंने मुंबई विधानमंडल में महार अनुवांशिक कार्यभार कानून में सुधार सुझाने वाला बिल पेश किया था। इस पैतृक कारोबार के कारण महार समाज की हुई दयनीय दशा और गुलामी से छुटकारा दिलाने के लिए उन्होंने लोगों को पूरी भूमिका समझाने को साल भर गांव गांव जाकर सभा सम्मेलनों में भाषण दिए, पर्चे बंटवाए, पुस्तिकाएं लिखकर वितरित करवाईं, और 'बहिष्कृत भारत' अखबार में मराठी में लेख भी प्रकाशित किये। उन्होंने अपने एक लेख में मुनगे की फली के पेड़ (सहिजन) की दंत कथा सुनाई। "एक महार परिवार के आंगन में मुनगे का पेड़ था। इस पेड़ में जो फलियां लगतीं उनको बेचकर यह परिवार उस थोड़ी-सी कमाई में अपनी गृहस्थी चलाता था। वह अपनी झोपड़ी छोड़कर काम करने के लिए नहीं जाता था। बस आधा पेट भोजन पाकर भी जीवनयापन करता था। एक बार उसके घर एक मेहमान आया। उसने यह दशा देखकर उस मुनगे के पेड़ को ही काट फेंका। तब फिर उस परिवार के लोगों को दूसरे दिन ही काम की तलाश में बाहर जाना ही पड़ा।" इस कथा का आशय समझाते हुए उन्होंने बताया कि इसी तरह यह पैतृक धंधा एक फंदा है जो महार समाज को बुरी तरह से जकड़े हुए है। इसी वजह से महारों की प्रगति संभव नहीं हो पाती। इसलिए यह खानदानी पेशा छोड़कर उन्हें नौकरियां करनी चाहिए जिससे माहवारी तनखा मिल सके। इस तरह उन्हें पैतृक धंधे से मुक्त कर नौकरी पर रखा जाये और उनको इस काम के लिए दी गयी जमीन पर भी मालिकाना अधिकार कायम किया जाये—यह मांग उन्होंने बुलंद की।

3 अगस्त, 1928 को उन्होंने मुंबई विधान मंडल में इस बिल पर दो घंटों तक मराठी भाषा में धाराप्रवाह भाषण किया। प्राथमिक चर्चा के बाद यह बिल प्रवर समिति (सिलेक्ट कमेटी) को भेजा गया। जब बिल वहां से वापिस आया तो उसमें अनेक संशोधन सुझाए गये थे। उस पर फिर बहुत जोरदार बहस हुई। इस वजह से डा. आंबेडकर ने 24 जुलाई, 1929 को अपना विधेयक मजबूरन वापिस ले लिया।

ब्रिटिश सरकार ने सन् 1919 में यह कानून बनाया था कि जो भी राजनैतिक सुधार किये गये हैं उनका पहले निरीक्षण किया जाये और उसके अनुसार ही नये सुधार किये जायें। इस कार्य के लिए इंग्लैंड से इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन भारत के लिए रवाना हुआ। ब्रिटिश लोकसभा के चतुर संसद सदस्य सर जान सायमन इस मंडल के अध्यक्ष थे। इस छह सदस्यों वाले मंडल में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। इस कारण भारतीय कांग्रेस सहित अन्य बहुतेरे राजनैतिक पक्षों ने भी इस कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय किया।

3 फरवरी, 1928 को यह सायमन कमीशन भारत पधारा। सब तरफ काले झंडे

दिखाकर और "सायमन कमीशन वापिस जाओ" के नारे बुलंद कर उसका स्वागत हुआ। ऐसे ही एक विरोध प्रदर्शन में लाहौर में पुलिस के लाठी हमले की वजह से पंजाब केसरी देशभक्त लाला लाजपत राय जख्मी हुए और कुछ दिनों की बीमारी के बाद उन्होंने शहादत पायी। डा. आंबेडकर के हृदय में लाला लाजपतराय के लिए नितांत आदर था। उन्होंने तुरंत मुंबई में शोक सभा का आयोजन कर उस महान् आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

इन्हीं दिनों के आसपास फरवरी के महीने में एक सर्वदलीय परिषद की गयी जिसमें मुसलमान, ईसाई, पारसी एवं गैर-ब्राह्मणों को भी आमंत्रित किया गया था। मगर डा. आंबेडकर या किसी भी दलित वर्गीय दल को इसका न्यौता नहीं दिया गया। इस परिषद ने पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति की स्थापना की जो संविधान की रूपरेखा तैयार करे। इस समिति की स्थापना पर डा. आंबेडकर ने 'बहिष्कृत भारत' समाचार पत्र में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा, "इसमें दलित समाज के लिए किसी भी तरह की व्यवस्था नहीं की गयी है। इसके विपरीत मुसलमानों को जरूरत से ज्यादा सहूलियतें दी गयी हैं।" उन्होंने नेहरू रिपोर्ट पर अपने प्रखर लेख में स्पष्ट रूप से लिखा, "हम जानते हैं कि हमारी स्पष्टवादिता से मुसलमान समाज का रोष हम पर अधिक बढ़ने वाला है, फिर भी देश का जहां अकल्याण होगा उसी में हमारे समाज का भी अकल्याण है, इस भावना से ही हम यह खतरा अपने सिर ले रहे हैं।"[1]

उस समय किसी ने डा. आंबेडकर की दूरदर्शिता की इस आवाज पर ध्यान नहीं दिया, मगर उनका कहना आखिर सच निकला और यह साफ हो गया कि इसी वजह से मुस्लिम लीग को मुंबई प्रदेश से सिंध प्रांत अलग करवाने में सफलता मिली।

19 मई, 1928 को दापोली गांव में अस्पृश्यों की एक विशाल सभा हुई। उसमें लगभग 1,500 अस्पृश्य सदस्य उपस्थित थे।

20 मई, 1928 को दापोली में अस्पृश्यों का उपनयन संस्कार किया गया। लगभग छह सौ महारों को यज्ञोपवीत पहनाये गये। उसके बाद लगभग 200 कुनबी समाज के लोग बालाजी गुणाजी बेंडके के नेतृत्व में, आंबेडकर जी से मिले। डा. साहब ने उन्हें बताया कि वे खोटों के खिलाफ उठाये गये उनके सवालों की ओर सरकार का ध्यान दिलायेंगे और इस बारे में एक विधेयक भी पेश करेंगे। डा. आंबेडकर के नेतृत्व में एक शिष्ट मंडल गवर्नर महोदय से मिलने भेजा जाय, यह भी इस बैठक में तय हुआ।

जून 1928 से डा. आंबेडकर सरकारी विधि महाविद्यालय में बदली की जगह पर नियुक्त हुए। प्रत्येक प्रादेशिक विधान सभा ने, सायमन के साथ काम करने के लिए

1. बहिष्कृत भारत : 18-2-1929, पृ. 2

अपनी-अपनी समितियां बनायी थीं। मुंबई सरकार की समिति पर, 3 अगस्त, 1928 को डा. आंबेडकर का चुनाव हुआ।

सारे देश में सायमन कमीशन का विरोध हो रहा था। उसका प्रतिबिंब महाविद्यालय में भी होना लाजिमी था। सुबह की कक्षा में प्रवेश करते ही डा. साहब ने देखा कि क्लास के सभी विद्यार्थियों ने कक्षा का बहिष्कार किया है। मगर आंबेडकर की यह धारणा थी कि कक्षा का बहिष्कार कर देश के प्रश्न हल होने वाले नहीं हैं।

सायमन कमीशन के सामने दलित समाज की कुल मिलाकर 18 संस्थाओं ने अपनी गवाही दी। उनमें से 16 संस्थाओं ने दलित समाज के लिए स्वतंत्र मतदार संघ की वकालत की थी। डा. आंबेडकर ने संयुक्त मतदार संघ और आरक्षित स्थानों की मांग रखी थी।

'बहिष्कृत हितकारिणी' सभा की ओर से डा. आंबेडकर ने 29 मई, 1928 को कमीशन के सामने दो प्रतिवेदन पेश किए थे। एक प्रतिवेदन में उन्होंने मुंबई प्रदेश में अस्पृश्यों की शिक्षा के लिए तत्कालीन शासन ने जो कार्य किया है उसकी प्रगति की समीक्षा करते हुए शिक्षा क्षेत्र में सुधार के लिए अपने सुझाव दिए थे।

दूसरे प्रतिवेदन में उन्होंने विधान मंडल की 140 जगहों में से 22 सीटें अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित रखने की मांग की थी।

साथ ही उन्होंने मंत्रिमंडल में दलितों का प्रतिनिधितत्व, प्रदेश की आमदनी में दलित वर्ग की शिक्षा पर खर्च का अधिकार, फौज, नौसेना, जंगी जहाजों पर दलितों को नौकरियां देने आदि अन्य मांगों का समावेश था।

डा. आंबेडकर ने सायमन कमीशन को सहयोग देकर अपने सहकार्य द्वारा अन्य राजनैतिक नेताओं का रोष स्वीकार किया। उनके गुस्से की परवाह न करते हुए उन्होंने अपना राष्ट्रहित का कार्य चलने ही दिया। जब सायमन रिपोर्ट तैयार हो गयी तो डा. आंबेडकर ने उस पर केवल अपने हस्ताक्षर ही नहीं किए वरन् उन्होंने (करीबन 60 छपे पन्नों की) अलग से मत पत्रिका 17 मई, 1929 को संलग्न की।[1] इस पत्रिका को तैयार करने में बी.बी. प्रधान ने सहयोग दिया था। इस विषय में डा. प्रधान लिखते हैं, "डाक्टर साहब ने तीन महीने कड़ी मेहनत की, उन्होंने अपने आराम, खाने पीने या व्यवसाय की परवाह नहीं की। वे उन दिनों रोज 14-15 घंटे नियमित कार्य करते रहे। कभी कभी तो रात में एक मिनट का भी आराम किए बगैर वे सारी रात काम करते रहते थे।"[2]

---

1. डा. बाबासाहब आंबेडकर : रायटिंग्स एंड स्पीचेस, खंड 2, पृ. 313-416
2. भा. वि. प्रधान : डा. आंबेडकर के यश का रहस्य : जनता विशेषांक, 1933

इस मिनिट आफ डिसेंट का जब टीकाकारों ने परिशीलन किया तब सभी समीक्षक उस पर बेहद खुश हुए। उसमें प्रदर्शित किए गए विचारों और सुझावों में राष्ट्रीयता और विद्वत्ता के प्रमाण स्पष्टता से प्रतिपादित होते हैं। हार्निमन जैसे कट्टर और अत्यंत उग्र टीकाकार ने भी डा. साहब की मुक्त कंठ से प्रशंसा की और इतनी प्रभावशाली अध्ययनपूर्ण विचार पत्रिका लिखने के लिए उन्हें हार्दिक बधाई दी तथा धन्यवाद दिये।[1] उस समय के पूरे संपादक मंडल ने भी लिखा, "डा. आंबेडकर ने जो विचार प्रदर्शित किए हैं वे किसी भी राष्ट्रीय नेता की गरिमा को चार चांद लगाने वाले हैं।" इस भांति डा. आंबेडकर की इस पत्रिका के कारण एक निपुण राजनीतिज्ञ और देशभक्त के रूप में गणना होने लगी। 'विविधवृत्त' नामक अखबार ने उन्हें अपने लेख में गुदड़ी के लाल के रूप में, चक़मक पत्थरों में एक हीरा संबोधित किया।

1. भा. वि. प्रधान : डा. आंबेडकर के यश का रहस्य : जनता विशेषांक, 1933

14

अब 'बहिष्कृत भारत' अखबार निकालने में आर्थिक अड़चन बहुत बढ़ गयी थी। डा. साहब ने जनता से निधि की याचना की। लेकिन मदद देने के लिए कोई अग्रसर नहीं हुआ। 29 जून, 1928 से आंबेडकर के नेतृत्व तथा मार्गदर्शन में 'समता' नामक पाक्षिक प्रारंभ हुआ। 'बहिष्कृत भारत' के दूसरे वर्ष का पहला अंक 19 नवंबर, 1928 को निकला। फिर आगे चलकर एक शुक्रवार को 'समता' का अंक प्रकाशित होता तो दूसरे शुक्रवार को 'बहिष्कृत भारत'।[1] यह प्रयोग कुछ महीनों तक चला, मगर 15 नवंबर, 1929 को 'बहिष्कृत भारत' का अंतिम अंक प्रकाशित कर फिर इस अखबार को बंद कर देना पड़ा। 14 जुलाई, 1928 को 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई और इस संस्था को विसर्जित कर उसके बदले 'भारतीय बहिष्कृत समाज शिक्षा प्रसारक मंडल' प्रारंभ करने का निश्चय किया गया। इस संस्था द्वारा अस्पृश्य समाज के विद्यार्थियों के लिए छात्रावास कायम करने की योजना निश्चित की गयी। इसके लिए सरकार से सहायता मांगी गयी। इस संस्था के प्रमुख संचालक डा. आंबेडकर स्वयं थे। वैसे ही 'भारतीय बहिष्कृत समाज सेवा समिति' के प्रधान भी डा. आंबेडकर ही थे। इस समिति के सेक्रेटरी चमार समाज के शिवतरकर थे। यह संस्था अस्पृश्य समाज पर होने वाले धार्मिक तथा सामाजिक अन्याय के निवारण के लिए कार्यरत रहती थी। इस संस्था ने यह कार्य वर्षों तक किया।

सन् 1928 में मुंबई शहर के दादर क्षेत्र में सार्वजनिक गणेशोत्सव में देवदर्शन तथा गणेशपूजन अधिकार स्पृश्यों के समान ही अस्पृश्यों को भी होना चाहिए, इस मांग को उठाया गया। किंतु संचालकों ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस कारण, उस समारोह में अस्पृश्यों को न आने देने के लिए गुंडों की व्यवस्था की गयी। पुलिस ने भी इसमें अस्पृश्यों को सहायता देने से इंकार कर दिया। तब गुरुवर्य केलूसकर और डा. आंबेडकर ने भी वहां पहुंचकर उस समारोह के मंडप में ही सभा की और सनातनी लोगों के इस रुख का विरोध किया। अंत में शाम को 4 बजे आपसी सुलह हुई। तब डा. आंबेडकर ने केलूसकर को उनके घर पहुंचाया।[2]

---

1. बहिष्कृत भारत, दि. 12-7-1929
2. जनता विशेषांक : 1933; सी.के.बोले–डा. आंबेडकर के विशेष कार्य

सन् 1929 में मंडल के सचिव ने फिर सूचित किया कि, पिछले साल का फैसला रद्द कर दिया गया है। तब आंबेडकर, बोले, प्रबोधनकार ठाकरे वहां पहुंचे। बातचीत का दौर फिर शुरू हुआ और दोपहर तीन बजे के बाद अस्पृश्यों को मंदिर में प्रवेश मिला। उन दिनों हिंदू की हैसियत से अस्पृश्यों को मान्यता प्राप्त हो, इसलिए ये प्रयत्न किए जाते थे।

फरवरी, 1929 के पहले हफ्ते में मुंबई के वालापारखाड़ी क्षेत्र में एक बहुत बड़ी सभा की अध्यक्षता डा. आंबेडकर ने की। जून मास तक डा. साहब ने कई परिषदों में उपस्थित रहकर उनका मार्गदर्शन किया। 13-14 अप्रैल, 1929 को चिपलून शहर में रत्नागिरी जिले के बहिष्कृत समाज की परिषद डा. आंबेडकर की अध्यक्षता में संपन्न हुई। इसमें करीब 9,000 लोग सम्मिलित थे। बाबासाहब ने अपने स्फूर्तिदायक भाषण में कहा, "न धमकियों की परवाह करो और न जुल्मों की। संवैधानिक तरीकों से धार्मिक क्रांतिपथ पर अग्रसर हो।" दूसरे दिन सुबह सब अस्पृश्यों के लिए यज्ञोपवीत धारण संस्कार करना निश्चित हुआ। इस अवसर पर डा. आंबेडकर ने लोगों को यज्ञोपवीत धारण करने का आधिभौतिक और आध्यात्मिक महत्व समझाया। फिर उन्होंने अस्पृश्य समाज का अभिनंदन किया कि अब वेदोक्तता के अधिकार उन्होंने फिर प्राप्त कर लिये हैं। इसके बाद वहां उपस्थित 6,471 लोगों के उपनयन संस्कार के बाद देवराव नाईक ने गायत्री मंत्र की दीक्षा दी।[1] दोपहर के बाद वहां किसानों की सभा हुई। डा. आंबेडकर ने उन्हें समझाया कि 'खोती' पद्धति के खेतों के विशेषाधिकार कितने अन्यायपूर्ण और अत्याचारी हैं। इसका विवेचन करते हुए उन्होंने बताया कि इस पद्धति को बंद करने के लिए वे काउंसिल में एक बिल लाने वाले हैं। उन्होंने किसानों का आह्वान किया कि वे सब संगठित हो जायें।

तीसरे दिन 15 अप्रैल, 1929 को सुबह धर्वे वकील ने सारे स्पृश्य और अस्पृश्य समाज को, जो वहां उपस्थित थे, बहुत ही शानदार दावत दी। उसके बाद डा. साहब वापस मुंबई लौटे।

सन् 1928-29 में मुंबई की कपड़ा मिलों में मिल मजदूर महामंडल ने एक जबर्दस्त हड़ताल करवा दी। करीब डेढ़ लाख मिल मजदूर छह महीनों तक हड़ताल पर रहे। दलित समाज के मिल मजदूरों की हालत बहुत खस्ता हो गयी थी। बाबासाहब श्री बोले के साथ स्वयं मजदूरों की बस्ती में, अपनी जान का खतरा मोल लेकर चक्कर लगाते और अस्पृश्य मजदूरों को काम पर जाने की सलाह देते थे। जब मिल मजदूर संघ ने दुबारा 26 अप्रैल, 1929 से हड़ताल करने का आदेश दिया तो आंबेडकर बहुत दुखी हुए। उन्होंने कहा, "रोगी की हालत और अधिक खराब न होने देनी चाहिए।

1. ज्ञानप्रकाश : 28-4-1929

बल्कि उसकी बीमारी से उसे छुटकारा दिलाना जरूरी है।" उन्होंने दो मजदूर नेताओं, कामरेड परूलेकर और बाखले को साथ लेकर एक सभा का आयोजन किया और उस मजदूर सभा में उन लोगों को इस हड़ताल से परावृत्त होने की राय दी।

इन्हीं दिनों के करीब उन्होंने नासिक जिले के तिगाव स्थान में अस्पृश्यों की एक विशाल सभा को संबोधित करते हुए उन्हें उपदेश दिया कि वे इंसानियत के लिए लड़ें। उसके बाद जलगांव पहुंचने पर उन्होंने अस्पृश्यों से कहा, "धर्मांतर करने में कोई हरकत नहीं है।" आगे वे 29 मई, 1929 को अकोला पहुंचे और वहां भी भाषण देकर वापस मुंबई आये।

उन्होंने कई बार यह सिद्ध करने का भी प्रयास किया कि हम हिंदू धर्म के अविभाज्य अंग हैं। 29 जून, 1929 को उन्होंने अपने सहयोगी कार्यकर्ता आडरेकर के बेटे का वैदिक पद्धति से विवाह संपन्न करवाया था। इस मंगल कार्य का पौरोहित्य श्री सुंदरराव वैद्य नामक ब्राह्मण ने किया था। इस विवाह समारोह में परंपरागत विधि को बिल्कुल त्याग दिया गया था।

प्रसिद्ध नाटककार आचार्य पी. के. अत्रे ने जब गोदूताई मुंगी से मिश्र विवाह किया तो डा. आंबेडकर ने अपने 'बहिष्कृत भारत' समाचारपत्र में उनका अभिनंदन किया था। इस तरह वे हमेशा आगे बढ़ने वाली विचारधारा का समर्थन किया करते थे। वे प्रगतिशील घटनाओं का स्वागत करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

सन् 1929 के अगस्त मास में डाक्टर साहब को डिस्ट्रिक्ट सेशंस कोर्ट में मुकदमे की पैरवी करने के लिए रत्नागिरी शहर जाना पड़ा। उस समय वहां के धोबी ने उनका सूट धोने से इस कारण मना कर दिया कि वे अस्पृश्य हैं। मगर वहां श्री वि. गो. शेट्ये के यहां उनके स्वागत का आयोजन हुआ जिसमें भाग लेकर वे मुंबई लौटे।

फिर डा. आंबेडकर 'स्टार्ट कमेटी' के साथ बेलगांव, खानदेश और नासिक जिले के दौरे पर निकले। एक पाठशाला में अपने बेटे को कक्षा के बाहर बैठाया जाता है, ऐसी एक अस्पृश्य पालक की शिकायत सुनकर उसकी पूछताछ करने के लिए जब डा. आंबेडकर उस स्कूल में पहुंचे तो वहां के प्रधानाध्यापक ने उन्हें पाठशाला में प्रवेश ही नहीं करने दिया। ऐसे कटु अनुभवों के कारण ही डा. आंबेडकर का हृदय हिंदू धर्म के प्रति कठोर होता गया।

चालीसगांव पहुंचने पर वहां के अस्पृश्यों ने डा. साहब का हार्दिक स्वागत किया। उन्हें अपनी बस्ती में ले जाने के लिए उन्होंने तांगा मंगवाया। मगर कोई भी तांगेवाला उन्हें ले जाने को तैयार नहीं था। आखिर एक अस्पृश्य व्यक्ति ने तांगा हांकने की तत्परता दिखाई और आंबेडकर तांगे में बैठे। लेकिन घोड़ा बेकाबू हो गया और डाक्टर साहब पत्थर पर जा गिरे। वे ऐसे जोर से गिरे कि उनका दाहिना पैर टूट गया और उन्हें गंभीर चोट आने के कारण वे दो महीनों तक बिस्तर पर पड़े रहे। यह हादसा

23 अक्तूबर, 1929 को हुआ था और दिसंबर, 1929 तक उन्हें रुग्णावस्था में पड़े रहना पड़ा।[1]

'बांबे क्रानिकल' में पारसी पुरोहितों पर एक कटाक्ष भरा लेख छपा था। डा. आंबेडकर ने दिनांक 8 दिसंबर, 1929 के 'बांबे क्रानिकल' में "वांटेड एन एंटीप्रीस्ट क्राफ्ट एसोसिएशन" शीर्षक से एक लेख लिखकर हिंदू समाज में भी किस तरह पुरोहित वर्ग का वर्चस्व है और वह किस तरह जन्म से मृत्यु तक उसकी गर्दन पर सवार रहता है, इस बारे में मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया और यह प्रतिपादित किया कि सभी वर्गों को पुरोहित संस्था की किस प्रकार आवश्यकता रहती है।

मंदिर प्रवेश का सत्याग्रह किस तरह बड़े पैमाने पर सब तरफ शुरू किया जा सकता है जिससे अस्पृश्य व्यक्ति को हिंदुओं के समाज से समरस किया जा सके, इस हेतु से प्रेरित हो डा. आंबेडकर ने अभियान शुरू किया। उनका यह अंदाजा था कि इस अभियान में लगभग एक लाख लोग भाग लेंगे। उन्होंने यह आशा व्यक्त की।[2] अपनी मुलाकात में उन्होंने बताया कि कुछ चुनिंदा स्थानों में यह सत्याग्रह किया जाये। "अगर स्पृश्य समाज अत्याचार का रास्ता नहीं अपनाता है तो हम भी वैसा ही व्यवहार करेंगे। नहीं तो हम सामंजस्य छोड़ जैसे के साथ तैसा व्यवहार–इस तत्व का अनुसरण करेंगे।" इस सत्याग्रह के लिए स्पृश्य और अस्पृश्य, ऐसे भिन्न भिन्न समूह बनाने का निश्चय लिया गया।

इन्हीं दिनों बाई शहर के सुप्रसिद्ध विद्वान महादेव शास्त्री दिवेकर ने मुंबई में डा. आंबेडकर से भेंट की। दिवेकर शास्त्री के प्रश्नों का उत्तर देते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "सच्चे हिंदू तो हम हैं क्योंकि धर्म का सच्चा रहस्य हमें ही अधिक स्पष्ट समझ में आता है। हम स्वतंत्र राष्ट्र हैं।"[3] "आप जो यह कह रहे हैं, इसका अर्थ क्या है?" दिवेकर शास्त्री ने प्रश्न किया। डा. आंबेडकर ने तुरंत जवाब दिया, "मैंने राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र मतदार संघ, स्वतंत्र सुविधाएं, सहूलियतें, इस लिहाज से स्वतंत्र शब्द का उपयोग किया है। हिंदू समाज में सह भोजन, आपसी विवाह अर्थात् आपस में रोटी बेटी का व्यवहार होना चाहिए। मंदिर प्रवेश तो अस्पृश्यता निवारण की पहली सीढ़ी है। सत्याग्रह विचारों में परिवर्तन लाने की ओर हमारा पहला कदम है। हमें सब तरफ समता स्थापित करनी है। मैं प्रजातंत्रवादी हूं, मगर एक समाज दूसरे समाज पर जुल्म ढाये, इसका मैं कट्टर विरोधी हूं।"

---

1. कीर : 143
2. ज्ञानप्रकाश : 27-11-1929
3. वही : 1-1-1929

15

धारवाड़ जिले के बहिष्कृत समाज की पहली परिषद धारवाड़ में दिनांक 28 दिसंबर, 1929 को संपन्न हुई।[1] इस परिषद में महार, चमार, मांग, चांडाल, भंगी, ढोर और अन्य अस्पृश्य जातियों के हजारों लोग सम्मिलित हुए थे। साथ ही वहां स्पृश्य समाज के लोग भी काफी संख्या में उपस्थित थे।

इस सभा में भाषण करते हुए डा. आंबेडकर ने विद्वान कहे जाने वाले व्यक्ति का वर्णन करते हुए कहा था, "एक विद्वान व्यक्ति भी झूठा, कपटी, दखलांदाजी करने वाला, लुड़बुड़िया और अनेक दुर्गुणों की खान हो सकता है।" उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता निवारण का महत्वपूर्ण मार्ग राजनैतिक शासन शक्ति को अपने हाथ में लेना है। फिर उन्होंने कहा, "रहने सहने का स्तर सुधारने जैसी कई बातें अपने हाथ में राजनैतिक हुकूमत आने पर अवलंबित हैं। केवल परिधान का ढंग या वेशभूषा में तरक्की हो जाने से सुधार नहीं होता। सच्ची प्रगति तो राजनैतिक ताकत हाथ में आने पर ही संभव हो पाती है। अंग्रेजी हुकूमत में सामाजिक बहिष्कारों को मिटा सकने वाला कोई कानून है ही नहीं, न बनाया जा सकता है। इसलिए हम सबको स्वराज्यवादी होना चाहिए। मैं अंग्रेजी सरकार पर विश्वास नहीं रखता। हमें स्वयं ही अपना उद्धार करना होगा। अंग्रेजी सरकार पक्की व्यावहारिक है। पहले हमें स्वराज्य के योग्य बनना चाहिए। इसके लिए हमें आवश्यक ज्ञान प्राप्त करना होगा।" चेतावनी के साथ यह बातें समझाकर डा. आंबेडकर ने 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की ओर से चलाए जाने वाले छात्रावास को सामूहिक रूप में सहायता प्रदान करने का आह्वान किया।

मुंबई में लोअरपरेल क्षेत्र में बहिष्कृत समाज की 30 जनवरी, 1930 को जंगी सभा हुई। इस सभा में नौ-दस हजार लोग उपस्थित थे। अस्पृश्यों की भिन्न भिन्न जातियों को संबोधित करते हुए डा. साहब ने कहा, "जिस तरह गांव गांव में महारों की बस्ती, मांगों की बस्ती, चंडालों की बस्ती जैसी जाति विशेष की आबादी बसी है उसी तरह मुंबई शहर में भी अलग अलग बस्तियां हैं। इस अलगाववाद को तोड़ना चाहिए।"

---

1. ज्ञानप्रकाश : 1-1-1930

उन्होंने यह जानकर संतोष व्यक्त किया कि बहिष्कृत समाज के नौजवान इस ओर प्रयत्नशील हैं।

23 फरवरी, 1930 को मुंबई में कोल्हापुर नरेश के बंगले में अखिल भारतीय ब्राह्मणेतर पक्ष की सभा आयोजित की गयी थी।[1] गोलमेज परिषद में इस पक्ष के 15 प्रतिनिधि भिजवाने का इस सभा में प्रस्ताव पास किया गया। डा. आंबेडकर इस बैठक में उपस्थित थे।

इस सभा के तुरंत बाद ही डा. आंबेडकर उसी दिन नासिक जिले के सिन्नर गांव में अस्पृश्यों की एक विशाल सभा में पहुंच गए थे।

पुणे की 'डिप्रेस्ड क्लास मिशन सोसायटी' के सदस्य श्री पाताडे तथा उनके कुछ अस्पृश्य साथियों ने 'इंडियन नेशनल एंटीरेवोल्यूशनरी पक्ष' की स्थापना की।[2] इन कार्यकर्ताओं ने महात्मा गांधी के सत्याग्रह के विरोध में पुणे में प्रति सत्याग्रह करने की घोषणा की और प्रचार द्वारा यह खबर फैला दी कि डा. आंबेडकर भी इस आंदोलन के साथ हैं। इस गलतफहमी के खिलाफ डा. आंबेडकर ने तुरंत 8 अप्रैल, 1930 को 'ज्ञानप्रकाश' समाचारपत्र के संवाददाता को महाड़ में मुलाकात देते हुए कहा, "इस प्रति सत्याग्रह से मेरा या मेरे साथियों का रत्ती भर भी संबंध नहीं है। साथ ही मैं इस प्रति सत्याग्रह का सख्त विरोध करता हूं जिससे यह गलतफहमी दूर हो जाये।"[3] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि डा. आंबेडकर ने बार बार यह ऐलान किया है कि उनका आंदोलन अस्पृश्यों को दास्ता के बंधन में जकड़े रखने के विरोध में है। साथ ही, महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के विरोध में उन्होंने कोई काम नहीं किया। बल्कि उन्होंने इस विषय में हमेशा अपना मतभेद बड़ी ईमानदारी के साथ जनता के सामने पेश किया।

डा. आंबेडकर ने मुंबई में मंदिर प्रवेश का सत्याग्रह भले ही प्रारंभ न किया हो, मगर नासिक में उन्होंने 2 मार्च, 1930 से मंदिर प्रवेश सत्याग्रह की रणभेरी फूंकी थी। परिषद की बैठक सुबह दस बजे से शुरू हुई। इसमें सत्याग्रह की कार्यप्रणाली पर विचार विनिमय हुआ। निश्चय के अनुसार तीन बजे लगभग 15,000 सत्याग्रहियों का एक मील लंबा जुलूस बहुत ही अनुशासन और शांति के साथ राममंदिर की ओर बढ़ा। आगे आगे फौजी ढंग का बैंड बज रहा था। राममंदिर के सभी दरवाजे बंद कर दिए गए थे। यह विशाल जुलूस गोदावरी नदी के किनारे जंगी सभा में बदल गया।

---

1. ज्ञानप्रकाश : 25.2.1930
2. वही : 29.2.1930
3. वही : 8 अप्रैल, 1930

रात ग्यारह बजे कार्यकर्ताओं की बैठक हुई और तीन मार्च से सत्याग्रह प्रारंभ करना तय हुआ। पहले दिन 125 पुरुष और 25 स्त्रियों ने सत्याग्रह किया। शिविर में 8,000 सत्याग्रही जमा थे और अपनी बारी की उत्सुकता से बाट देख रहे थे और लगभग 8,000 दलित समाज यह दृश्य देख रहा था। जिलाधीश गार्डन स्वयं शांति बनाए रखने के लिए वहां उपस्थित थे। लेकिन राममंदिर बंद कर दिया गया था।

रात में कुर्तकोटि के शंकराचार्य ने आम सभा को संबोधित किया, परंतु सनातनी लोगों ने पत्थरों की बरसात कर सभा भंग करवा दी। 9 अप्रैल को रामनवमी का उत्सव था। उस दिन श्री रामचंद्र की रथ यात्रा निकलने वाली थी। स्पृश्य और अस्पृश्य नेताओं की बैठक हुई और यह समझौता किया गया कि दोनों दलों के हट्टे कट्टे जवान इस रथ को खींचेंगे। लेकिन सनातनियों के दिल में अलग ही इरादा छिपा था। मंदिर से रथ दूर जाते ही वे डा. आंबेडकर और सत्याग्रहियों पर टूट पड़ने वाले थे। यह खबर मिलते ही सत्याग्रहियों के नेता दादासाहब गायकवाड़, रणखांबे इत्यादि लोगों ने बाबासाहब से प्रार्थना की कि वे महारवाड़ी में सुरक्षित स्थान पर चले जायें। मगर फौजी बाने के बाबासाहब ने साफ साफ कह दिया, "यहां रहकर मर जाना अधिक श्रेयस्कर है। यहां आए हुए हर सत्याग्रही की जान मेरी जान से कम कीमती नहीं है। मैं यहां से हरगिज नहीं हिलूंगा।" डा. आंबेडकर स्वयं जुलूस में शामिल हुए। जैसे ही रथ कुछ दूर पहुंचा सनातनी लोगों ने रथ खींचने वाले अस्पृश्यों पर धावा बोल दिया। उन्हें मारने का दौर चल पड़ा। रास्ता संकरा था और उसके दोनों तरफ कंटीले तार खिंचे हुए थे। डा. आंबेडकर और उनके साथी मानो एक चक्रव्यूह में फंस गए थे। पास के खेतों से उन पर पत्थर बरसाए जा रहे थे। डा. आंबेडकर के साथी उनकी रक्षा करने के लिए उन्हें चारों तरफ से घेरे हुए थे। कुछ लोग उनके सिर पर छाता खोल कर खड़े थे। एक छाता टूटता तो दूसरा खुल जाता। इन पत्थरों की मार को कई साथी अपने बदन पर झेल रहे थे जिससे बाबासाहब को चोट न आए, मगर बाबासाहब को कई जगह चोट लगी और उनके साथी भास्करराव कंद्रेकर को सिर पर गंभीर चोटें आयीं। कई सत्याग्रही बुरी तरह से घायल हुए।

पुलिस ने शांति स्थापित की। तब सबको अस्पताल पहुंचाने का काम शुरू हुआं। बाबासाहब खुद इस तरफ ध्यान दे रहे थे। बाद में वे घायल सत्याग्रहियों को देखने अस्पताल में भी पहुंचे।

इस मंदिर प्रवेश आंदोलन के कारण अस्पृश्यों को गांव गांव में बहिष्कार, अत्याचार इत्यादि का सामना करना पड़ा था। फिर भी नासिक का यह सत्याग्रह चलता ही रहा। डा. मुंजे और कुर्तकोटी के शंकराचार्य मुंबई में डा. आंबेडकर से मिले और उन्होंने उनसे

यह कहा, "हम सनातनी समाज का मन बदलने का प्रयास करेंगे।" नासिक के 'कालाराम मंदिर का सत्याग्रह' दादासाहब गायकवाड़ और अमृतराव रणखांबे ने 13 अक्तूबर, 1935 तक चालू रखा था।

महाड़ तालाब वाले सत्याग्रह के मुकदमों को चलाना, उसके लिए गवाहों तथा सारे सबूतों की जांच करना, साथ ही नासिक सत्याग्रह का प्रत्यक्ष तथा पत्रों द्वारा मार्गदर्शन करना—इन सब कामों में व्यस्त रहने के कारण डा. बाबासाहब आंबेडकर विधान मंडल के पहले तीन-माही अधिवेशन में अधिकतर उपस्थित नहीं रह सके थे।

पेट्रो समिति की मई मास में मुंबई शहर में बैठक हुई। उसमें वे उपस्थित रहे। उसके बाद जुलाई-अगस्त में विधान मंडल के अधिवेशन में भी वे शामिल हुए थे।

16

8 अगस्त, 1930 के दिन 'अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद' का नागपुर में अधिवेशन हुआ। सारे भारत के दलित समाज के विभिन्न संगठनों को इस अधिवेशन के लिए आमंत्रित किया गया था। डा. आंबेडकर की यह राय थी कि बरतानवी हुकूमत भारत को आजादी देने के लिए उत्सुक है और इस स्वाधीनता का मसौदा तैयार करने के लिए उन्होंने यह गोलमेज परिषद आयोजित की है। इसलिए उन्होंने भी यह परिषद इसी हेतु से आमंत्रित की थी कि भारतीय स्वराज्य की रूपरेखा में अस्पृश्यों का स्थान क्या होगा, इस बारे में नीति निर्धारण हो सके। डा. आंबेडकर ने करीब डेढ़ घंटे तक इस परिषद में अपना भाषण दिया था।[1]

इस परिषद में नासिक, पुणे, सातारा इत्यादि कई जिलों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इसी तरह मद्रास, उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा इत्यादि दूरस्थ प्रदेशों के अस्पृश्य नेतागण भी उपस्थित थे। मद्रास के राव साहब पिल्लै, नासिक के दादासाहब गायकवाड़, पुणे के सूबेदार घाटगे और पां. ना. राजभोज, मुंबई के शिवतरकर इत्यादि कार्यकर्तागण, बिहार के बाबू रामचरित प्रसाद, उत्तरप्रदेश के एडवोकेट चौरसिया स्वामी बौद्धानंद, बंगाल के श्री विश्वास, मध्यप्रदेश के सर्वश्री लक्ष्मणराव ओगले, कालीचरण, बंदागवली, दशरथ पाटील इत्यादि बहुत से व्यक्ति परिषद में उपस्थित थे। बहुत से स्पृश्य नेतागण भी आए हुए थे।

डा. आंबेडकर ने अपना भाषण अंग्रेजी में तैयार किया था। लेकिन सर्वसाधारण श्रोताओं के लिए उन्होंने मराठी में भाषण दिया। अपने लंबे भाषण में डा. आंबेडकर ने अठारह बहिष्कृत जातियों की यूरोप की भिन्न वंश और भिन्न भाषा के समान ही परिस्थिति बताई और यह प्रतिपादित किया कि भारत को आजादी मिलनी ही चाहिए, उसे टाला नहीं जा सकता। उन्होंने समझाया कि विभिन्न समाजों के समान हित की दृष्टि से ही मध्यवर्ती सरकार स्थापित करना आवश्यक है। यह नहीं भूलना चाहिए कि अंग्रेजों के एकतंत्री शासन के कारण ही हिंदुस्तान एकतंत्री राष्ट्र बन सका। उन्होंने

---

1. ज्ञानप्रकाश : 9 अगस्त, 1930

स्पष्ट कहा, "भिन्न भिन्न जातियां और आचार विचारों की भिन्नता, ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टि से स्वराज्य के रास्ते में बाधक नहीं होनी चाहिए।" उन्होंने कहा, "भांति भांति के सामाजिक वर्गों की भलाई और उनमें भाईचारा बनाए रखने के लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही स्वराज्य का संविधान बनाना होगा। यदि किसी भी एक वर्ग के हाथ में शासन का बेलगाम अधिकार दे दिया गया तो वह जल्लाद के हाथों में ही छुरा दे देने के समान हो जायेगा।

"अल्पसंख्यकों के प्रश्न का हल समाधानकारक होना चाहिए। देश के संविधान में ही उनके अधिकारों को सुरक्षित रखने की व्यवस्था अंकित होनी चाहिए। इस अधिकार की रक्षा के लिए विधानसभा में अस्पृश्यों को पूरा प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए, इतना कि वह उनकी तादाद के हिसाब से भी ज्यादा हो। यदि उनके लिए सुरक्षित स्थानों की उचित व्यवस्था हो तो फिर संयुक्त मतदार संघ को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होगी। सरकारी नौकरियों में भी उचित परिमाण निर्धारित करना चाहिए।

"हमने सायमन कमीशन को पूरा सहयोग दिया, लेकिन उन्होंने हमारे साथ उचित न्याय नहीं किया है। हमारी जनसंख्या 20 प्रतिशत होते हुए भी उन्होंने हमें केवल आठ फीसदी प्रतिनिधित्व देने की ही सिफारिश की है। इसलिए अब हमें अंग्रेजों के भरोसे नहीं रहना चाहिए। औपनिवेशिक राज्य, अस्पृश्य समाज के लिए पूर्ण स्वराज्य से अधिक अहितकर होगा।"

महात्मा गांधी के "कानून तोड़ो" आंदोलन का विरोध करते हुए उन्होंने कहा था, "इस तरह से जो क्रांति होगी वह दिशाहीन रहेगी। इसमें किसी एक वर्ग के हाथों में प्रभुत्व जाने का डर रहता है। इस अवज्ञा आंदोलन द्वारा प्राप्त स्वाधीनता में अस्पृश्यों को उचित परिमाण में अधिकार मिल सकेंगे, इसका भरोसा नहीं है।" उन्होंने अपने भाषण में यह भी संकेत किया कि कांग्रेस को इस 'गोलमेज परिषद' को मान लेना चाहिए और अपना अवज्ञा आंदोलन समाप्त कर देना चाहिए।

इस परिषद में बारह प्रस्ताव मंजूर किये गये। इनमें डा. आंबेडकर के भाषण में सुझाई हुई मांगों को दुहाराया गया था।

'ज्ञानप्रकाश' जैसी पत्रिकाओं ने डा. आंबेडकर के भाषण पर अपने विचार प्रदर्शित करते हुए लिखा था, "हमारे हिंदू नेताओं को डा. आंबेडकर का अनुसरण करना चाहिए।"[1]

पहली गोलमेज परिषद के लिए डा. आंबेडकर को अस्पृश्यों के प्रतिनिधि के रूप में मनोनीत किया गया। 26 सितंबर, 1930 को उन्होंने मुंबई शहर के टाउनहाल में

1. ज्ञानप्रकाश : 16-8-1930

गोलमेज परिषद के महत्व पर प्रकाश डालते हुए भाषण दिया। चूंकि कांग्रेस ने इस गोलमेज परिषद का बहिष्कार किया था इसलिए देश के पत्रकारों ने डा. आंबेडकर को अपनी टीका का लक्ष्य बनाया। उस समय देश की यह हालत थी कि जो कांग्रेस कहे वही नीति होती थी और जो वह कहे वही सही रीति मानी जाती थी।

अस्पृश्य समाज की ओर से डा. आंबेडकर को सम्मान पत्र देने और उन्हें विदा करने के लिए गुरुवार 2 अक्तूबर, 1930 को परेल में आयोजन किया गया। लगभग 10,000 से अधिक लोग[1] इस समारोह में उपस्थित थे। डा. आंबेडकर ने अपने भाषण में कहा, "स्वराज्य तो अस्पृश्यों को भी चाहिए। लेकिन भावी संविधान में अस्पृश्यों को स्वाधीनता दिलाने की व्यवस्था पहले ही कर रखना आवश्यक है। हिंदुस्तान में पुलिस तथा फौज में अस्पृश्यों को पूरा प्रतिनिधित्व दिया जाए, इसके लिए मैं प्रयत्नशील रहूंगा।" इस अवसर पर उन्हें 5,000 रुपयों की थैली भेंट की गयी। इसमें से कुछ रकम उन्होंने दलित कांग्रेस के कार्यों के लिए तथा कुछ रकम नये प्रकाशित होने वाले 'जनता' अखबार के लिए देने की घोषणा की।

1. ज्ञानप्रकाश : 4-10-1930

17

4 अक्तूबर, 1930 को डा. आंबेडकर गोलमेल परिषद में भाग लेने के लिए 'वाइसराय आफ इंडिया' नामक जहाज से मुंबई से रवाना हुए। हिंदू सभा के डा. मुंजे, मुसलमानों के मौलाना अहमद अली, बैरिस्टर जिन्ना, बैरिस्टर जयकर आदि अन्य कई विद्वान और प्रसिद्ध नेतागण भी इसमें भाग लेने जा रहे थे।

वैसे लंदन पहुंचने के लिए 15-20 दिन लगेंगे, इसलिए फुरसत के दिनों में ग्रंथों का पठन संभव हो सकेगा, इस हेतु डा. आंबेडकर ने अपने साथ किताबों से भरी चार पेटियां रख ली थीं। मगर पेटियों की चाबियां मुंबई में ही छूट जाने के कारण उन्हें विवश होकर आराम करना पड़ा। 11 अक्तूबर, 1930 को लगभग तीन बजे वे मिश्र देश के काहिरा बंदरगाह में पहुंचे। अपना समय बिताने के लिए उन्होंने पिरामिड देखने की ठानी। पहले वे ऊंट की सवारी करने निकले, मगर वह सवारी रास न आने के कारण उन्होंने पैदल ही चक्कर लगाया।

गोलमेज परिषद के लिए यात्रा[1] कर रहे विभिन्न दलों के सभासद अपने राजनैतिक दृष्टिकोण से हिंदुस्तान को कौन से राजकीय अधिकार मिलने चाहिए, इस विषय पर चर्चा किया करते थे। इस आपसी चर्चा में डा. आंबेडकर भी भाग लिया करते थे। उस समय ये सारे प्रतिनिधि उनकी विद्वता और विवेचन की पद्धति को देखकर दंग रहे जाते थे। उन सब की बातें सुनकर ऐसा लगता था कि अस्पृश्यों के सवाल पर उन लोगों का रवैया सहानुभूति भरा होगा।

18 अक्तूबर को डा. आंबेडकर लंदन पहुंचे। वहां पहुंचने पर 8-10 दिनों में ही उन्होंने सर फिलिप चेटवुड से मुलाकात की। हिंदुस्तानी सेना के प्रमुख सेनापति के पद पर उनकी हाल ही में नियुक्ति हुई थी। हिंदुस्तानी फौज में किस तरह अस्पृश्यों को भरती करना संभव हो सकेगा, इस बारे में उनसे विशद चर्चा हुई। इसके अलावा वे भारतीय मामलों के मंत्री, उपमंत्री मजदूर नेता मि. लांसबेरी से भी मिले। उन सब से चर्चा करते समय उन्होंने अपनी पहली मुलाकात में ही अस्पृश्यों के प्रति उनकी सहानुभूति

---

1. गणवीक रत्नाकर : विलायत से डा. बाबासाहब के खत, पृ. 30-31

जीतने में सफलता पायी। मजदूर नेता मि. लांसबेरी ने उन्हें भोजन पर आमंत्रित किया। अस्पृश्यों के राजकीय अधिकारों की तरफ सबका ध्यान आकर्षित करने में उन्हें जो यश मिला उसका उन्हें स्वयं बहुत संतोष था।

लंदन पहुंचने पर प्रमुख व्यक्तियों से भेंट करते करते डा. आंबेडकर ने एक विज्ञप्ति लिखना जारी रखा जो अस्पृश्यों के राजनैतिक अधिकारों से संबंधित थी। साथ ही उन्होंने फौज में होने वाली भरती के बारे में भी एक विवरण तैयार किया। इस दूसरे खरीते को तैयार करने के लिए उन्हें इंग्लैंड में बसे हुए अवकाश प्राप्त फौजी अधिकारियों से आवश्यक जानकारी मिली। अपना यह लेख तैयार करते हुए उन्होंने एक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना की जिसका नाम था 'दि प्राब्लम्स आफ इंडियाज डिफेंस'। लेकिन यह ग्रंथ कभी प्रकाशित न हो सका।[1] इस ग्रंथ का आखिर क्या हुआ अब इसका भी पता नहीं चलता।[2] अस्पृश्यों के राजनैतिक अधिकारों की विज्ञप्ति उन्होंने दिसंबर, 1930 में छपवायी और उसकी प्रतियां गोलमेज परिषद के सदस्यों में वितरित की गयीं। इस समय में उन्होंने मजदूर दल के संसद सदस्यों के सामने ही अपनी कैफियत पेश की।

राजकीय अधिकारों के अपने खरीते में डा. आंबेडकर ने अस्पृश्य समाज को समान अधिकार, नागरिकता के मानवीय अधिकार, जातिवादी पक्षपात भरे व्यवहार से उनकी रक्षा, विधानसभा और सरकारी नौकरियों में उनका प्रतिनिधित्व, रूढ़िवादी धारणाओं के कारण अस्पृश्यों के साथ जो व्यवहार किया जा रहा है उससे उनकी सुरक्षा, केंद्रीय सरकार में अस्पृश्यों की भलाई की ओर देखने वाला विभाग और गवर्नर जनरल द्वारा स्थापित मंत्रिमंडल में प्रतिनिधित्व—ये सारी मांगें प्रस्तुत की गयी थीं।

परिषद की सामान्य सभा में 17 से 21 नवंबर तक सप्रू, जयकर, डा. मुंजे, बै. जिन्ना, बीकानेर नरेश तथा डा. आंबेडकर के भाषण प्रभावशाली हुए। डा. आंबेडकर ने अपने ओजस्वी भाषण में अस्पृश्यों की दृष्टि से स्वराज्य किस भांति आवश्यक है, इस पर जोर दिया। उन्होंने समझाया कि किस तरह अंग्रेजों ने अस्पृश्यों के साथ विश्वासघात किया है। अन्य विचारणीय विषयों पर भी इतने प्रभावशाली ढंग से प्रकाश डाला कि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री पर उसका गहरा असर हुआ। वहां के 'इंडियन मेल' अखबार ने डा. आंबेडकर के भाषण के बारे में लिखा था, "यह भाषण, परिषद में दिये गए सारे भाषणों में सर्वोत्तम भाषण का एक उदाहरण है।" 'स्पेक्टेटर' अखबार ने डा. आंबेडकर को भारत के राष्ट्रीय नेता के रूप में पहचाना। कई बरतानवी लीडरों ने

---

1. खैरमोडे : खंड 4, पृ. 97
2. प्रोसीडिंग्स आफ मायनारिटीज सब कमेटी, वाल्यूम III (मायनारिटीज), अपेंडिक्स दो, पृ. 168-76

मि. लठ्ठे से यह जानना चाहा कि डा. आंबेडकर कहीं क्रांतिकारी दल के नेता तो नहीं हैं ?[1]

डा. आंबेडकर ने 31 दिसंबर, 1930 को अल्पसंख्यकों की समिति के सामने दिये गये अपने भाषणों में बरतानवी सरकार पर धुआंधार हमला किया। उन्होंने कहा, "बरतानवी हुकूमत कायम करने में जिन अस्पृश्यों का उपयोग किया गया उनकी हालत सुधारने की तरफ अंग्रेजों ने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। हिंदू समाज की ओर से अस्पृश्यों पर अत्याचार हो रहे हैं यह बात भले ही सच हो, फिर भी स्वतंत्रता मिलने के बाद ही उन्हें देश में अपना उद्धार करना संभव हो सकेगा।" उन्होंने आगे कहा, "अस्पृश्यों को स्वतंत्र मतदार संघ और नामिनेशन पद्धति स्वीकार नहीं है परंतु वयस्क मताधिकार यदि मिलता हो तो हमें संयुक्त मतदार संघ मान्य है। यदि यह हक हमें न मिल रहा हो तो फिर हमें आरक्षित स्थान मिलने चाहिए।"[2] सैनिक उपसमिति के सामने बोलते हुए उन्होंने यह मांग की कि फौज में भर्ती होने के लिए अस्पृश्यों को मनाही नहीं होनी चाहिए।[3] डा. मुंजे और सप्रू ने भी इस मांग का समर्थन किया। उपसंहारीय अधिवेशन में बालिग मताधिकार के विषय में पुनः अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने चेतावनी दी कि बिना वयस्क मताधिकार के स्वराज्य देना बहुजन समाज पर धनवानों का शासन स्थापित करने के समान होगा।

पार्लियामेंट के मजदूर, उदार, अनुदार सभी दलों के सदस्यों के सामने डा. आंबेडकर ने भाषण देकर अपनी मांगों के प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त की। लंदन के कुछ प्रेस फोटोग्राफरों ने उनके बढ़िया फोटो लिये जिन्हें उन्होंने अपने सहयोगी भाऊराव गायकवाड़ को भिजवाया।[4] डा. आंबेडकर की इच्छा थी कि अमेरिका में भाषणों द्वारा वहां की जनता को भी अपना पहलू मनवाया जाये। इसलिए उन्होंने अमेरिका की 'अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा संस्था' के अधिकारियों के नाम, रेनी स्मिथ नामक एक महिला अधिकारी से पत्र भी लिखवाया जिसमें यह अनुरोध था कि वहां डा. साहब के व्याख्यान आयोजित किये जायें। लेकिन दूसरी गोलमेज परिषद प्रारंभ होने का समय पास आ जाने के कारण डा. साहब ने अमेरिका प्रवास का अपना विचार रद्द कर दिया।[5] उन्होंने कुछ रूसी नेताओं से भी मिलना तय किया था।

1. खैरमोडे : खंड 4, पृ. 97
2. ज्ञानप्रकाश : 3-1-1931
3. सन् 1892 से अस्पृश्यों पर सेना में भरती होने पर प्रतिबंध लगा हुआ था।
4. खैरमोडे : खंड 4, पृ. 120
5. वही, पृ. 122

पहली गोलमेज परिषद में डा. आंबेडकर के पांडित्यपूर्ण भाषणों को सुनकर बड़ौदा नरेश सर सयाजीराव गायकवाड़, जो परिषद में उपस्थित थे, इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने बाबासाहब को चायपार्टी पर निमंत्रित किया।[1] इस चायपान के अवसर पर कई हिंदुस्तानी रियासतों के शासक उपस्थित थे। बड़ौदा नरेश ने बाबासाहब की प्रशंसा में गौरवोद्गार प्रकट किए। इन्हें सुनकर अनेकों राजा महाराजाओं के मन में डा. आंबेडकर के प्रति आदर पैदा हुआ। इस अवसर का लाभ उठाकर बाबासाहब ने सभी रियासत के शासकों को एक छपा हुआ परिपत्र भिजवाकर अपने कार्य के लिए आर्थिक सहायता की अपील की।

सर सयाजीराव गायकवाड़ के प्रति बाबासाहब के दिल में हमेशा ही बहुत आदर रहा। जब 6 फरवरी, 1939 को सयाजीराव का स्वर्गवास हुआ तो बाबासाहब ने कहा था, "महाराज के स्वर्गवास से मेरी अपार निजी हानि हुई है। उनके मुझ पर किये गये उपकारों को मैं भूल नहीं सकूंगा। वे राष्ट्रीय बाने के महान देशभक्त थे। उनके निधन से अस्पृश्यों का अनन्य आश्रयदाता परलोक सिधारा है। रियासतों के अधिपतियों में से एक दिव्यदृष्टा लुप्त हो गया है।"

जब वे लंदन में ही थे तब उन्हें महाड़ ग्राम के 'चवदार' तालाब वाले मामले में कट्टर सनातनियों पर प्राप्त विजय के फैसले का पता चला। वहीं उन्हें मुंबई विधानसभा के लिए की गयी उनकी नियुक्ति का समाचार भी मिला। तीसरा सुखद समाचार था कि नाईक और कद्रेकर ने 'जनता' अखबार निकालना शुरू कर दिया है।

डा. आंबेडकर ने किसी तरह समय निकालकर वहां कबाड़ी बाजार में जाकर किताबें खरीदीं और उनकी तीन पेटियां वी. एम. पवार के साथ मुंबई रवाना कीं। एक पेटी भर किताबें रा. ब. श्रीनिवासन के साथ भिजवाई।

पहली बार अस्पृश्यों की शिकायतें इस परिषद के माध्यम से सारे संसार में व्यक्त हो पायीं। 22 फरवरी, 1931 को डा. आंबेडकर लंदन से मुंबई पहुंचे।

लंदन से लौटने पर मुंबई के बेलार्डपियर में उनका भव्य स्वागत हुआ। पत्रकारों से बात करते हुए उन्होंने कहा, "यह गोलमेज परिषद बढ़िया राजनीति की विजय है। लेकिन मुझे मतदान का मर्यादित अधिकार पसंद नहीं है। हर वयस्क व्यक्ति को मताधिकार होना चाहिए। जब तक अस्पृश्यों का प्रश्न हल नहीं होता तब तक राजकीय शासन का हस्तांतरण नहीं होगा। आगामी संविधान में अस्पृश्यों के अधिकार सुरक्षित रहेंगे।"

---

1. खैरमोडे : खंड 4, पृ. 123

भारत में राजकीय गतिविधियां बहुत वेग से चल रही थीं। 26 जनवरी, 1931 के दिन सारे कांग्रेस नेता रिहा कर दिये गये। 5 मार्च, 1931 को महात्मा गांधी ने वाइसराय लार्ड इर्विन के साथ एक समझौता किया। सविनय अवज्ञा आंदोलन वापिस ले लिया गया और महात्मा गांधी ने दूसरी गोलमेज परिषद में भाग लेने को अपनी स्वीकृति दे दी। डा. आंबेडकर ने तीन चार दिन तक मुलाकातों और मिलने जुलने में बिताये। फिर मुंबई के परेल इलाके में एक विशाल सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने यह समझाया कि अस्पृश्यों ने क्या क्या हासिल कर लिया है। फिर वे मार्च, 1931 तक विधान सभा के कामकाज में व्यस्त रहे।

18

इन्हीं दिनों भाउराव गायकवाड़ और साथियों ने डा. मुंजे के आश्वासन पर सत्याग्रह स्थगित कर दिया था। उसे दुबारा शुरू करने का निर्णय लिया गया। डा. आंबेडकर 14 मार्च को नासिक पहुंचे। उन्होंने नासिक की महार बस्ती के प्रांगण में 14 मार्च की शाम को विशाल सभा में भाषण देते हुए कहा कि, वे लोग अपने आंदोलन में अनुशासन का पालन करें और किसी तरह की हिंसा न होने देने की सावधानी रखें। वहां से वे वापिस मुंबई लौटे और फिर 16 मार्च को चिरनेर में मुकदमे की पैरवी के लिए ठाणे पहुंचे।

ठाणे जिले में जो जंगल सत्याग्रह चला उसमें 25 सितंबर, 1930 के दिन चिरनेर गांव में आंदोलनकारी जमाव पर पुलिस को गोलियां चलानी पड़ी थीं। इस विद्रोह में वहां के तहसीलदार और कुछ लोग मारे गये थे। सरकार ने 47 लोगों पर मुकदमा दायर किया था। डा. आंबेडकर ने उनमें से चार अभियुक्तों की तरफ से पैरवी करने का वकालतनामा मंजूर किया था। सरकार द्वारा गोलमेज परिषद में भाग लेने के लिए नियुक्त किए जाने पर भी डा. आंबेडकर जनहित के लिए अंग्रेज सरकार के विरुद्ध अदालत में खड़े रहे थे। उन्होंने 20 जून, 1931 को अपनी पैरवी शुरू की। वे लगातार दो दिन बहस करते रहे। करीब दस घंटों तक की गयी अपनी दलीलों से उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि अभियुक्त किस तरह निर्दोष हैं।[1] पैरवी करते हुए उन्होंने कहा, "यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि स्वतंत्रता और जनता के अधिकार सरकार के टिकाऊपन से अधिक मूल्यवान हैं।" इस मुकदमे का फैसला 2 जुलाई, 1931 को हुआ। उसमें 21 अभियुक्तों को जेल की सजा सुनायी गयी और बाकी अभियुक्त निर्दोष करार दिए जाने पर रिहा कर दिये गये।

2 अप्रैल, 1931 के दिन सेवा दल की बैठक दादर के दामोदर हाल में हुई। इसके अध्यक्ष डा. आंबेडकर ही थे। इस संस्था का नाम बदल कर 'समता समाज दल'[2] रखा गया। यह दल महाड़ के सत्याग्रह के समय स्थापित किया गया था।

---

1. ज्ञानप्रकाश : 26-6-1931
2. वही : 15-4-1931

19 अप्रैल, 1931 को डा. आंबेडकर ने मुंबई के परेल भाग में दलित नेताओं की परिषद आयोजित की। बंगाल, मध्य प्रदेश, मद्रास और महाराष्ट्र के सारे प्रमुख नेतागण इस परिषद में शामिल हुए थे। अध्यक्ष पद एन. शिवराज सुशोभित कर रहे थे। डा. आंबेडकर ने गोलमेज परिषद के अपने कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया जिसे प्रतिनिधियों ने अपनी स्वीकृति दे दी। इस परिषद में एक प्रस्ताव भी रखा गया। जिसमें सरकार से यह प्रार्थना की गयी थी कि 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' में अस्पृश्यों के प्रतिनिधि का भी समावेश किया जाये। वैसे ही दूसरी गोलमेज परिषद के लिए भी अस्पृश्यों के प्रतिनिधि नियुक्त किये जायें। एक और प्रस्ताव भी पारित किया गया जिसके अनुसार यह सुझाया गया था कि प्रदेशों में जो मंत्रिमंडल बनेंगे उनमें अस्पृश्य सदस्य को भी शामिल किया जाये। साथ ही, अन्य प्रस्ताव में दलित समाज के समर्थन में भाषण देने और उनका पक्ष लेने वाले लार्ड रीडिंग, तेजबहादुर सप्रू, लार्ड पिल और आयोजक फुट का आभार माना गया था।[1] इन्हीं दिनों डा. एम. एन. राय, छद्मवेश में डा. महमूद नाम से भारतीय नेताओं से मुलाकातें किया करते थे। उन्होंने डी. वी. प्रधान के साथ आकर डा. आंबेडकर से मुलाकात की। उनके साथ बातचीत करते समय डा. आंबेडकर समझ गये कि इस व्यक्ति ने अस्पृश्यों के सवाल पर गहराई से सोच विचार नहीं किया है। उनके चले जाने पर डा. आंबेडकर ने प्रधान से बातें करते हुए यह संकेत दिया, "मुझे नहीं लगता कि यह व्यक्ति सच ही उत्तर प्रदेश के मुसलमानों का नेता हो सकता है, जैसा वह अपने आपको बता रहा था। मुझे लगता है वह कोई बंगाली लीडर है।" इस मुलाकात के 15 दिनों बाद ही राय को गिरफ्तार किया गया था।

अहमदाबाद में नया छात्रावास खोलने के लिए डा. आंबेडकर वहां पधारे। उस समय कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने उन्हें स्टेशन पर काले झंडे दिखाये। जुलाई मास के तीसरे सप्ताह में गोलमेज परिषद के सदस्यों के नामों की घोषणा की गयी। महात्मा गांधी, जिन्ना साहब, बैरिस्टर सप्रू इत्यादि सदस्यों के साथ ही डा. आंबेडकर को भी निमंत्रित किया गया था। इस बार उन्हें 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' के सदस्य के रूप में समाविष्ट किया गया था। भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करने का काम इस कमेटी को सौंपा गया था।

जैसे ही डा. आंबेडकर की नियुक्ति के समाचार चारों तरफ फैले तो देश विदेश से उनके अभिनंदनों का तांता लग गया। डा. आंबेडकर विरोधी अखबार 'कुलाबा समाचार' ने भी उनकी चिरनेर के मुकदमे, सायमन कमीशन और गोलमेज परिषद में

---

1. ज्ञानप्रकाश : 19-6-1931

प्रकट की गयी राष्ट्रीय भावना की प्रशंसा की। 'इंडियन डेली मेल', 'संडे क्रानिकल' और 'केसरी' समाचारपत्रों ने भी उनकी इस नियुक्ति का स्वागत किया।

दूसरी गोलमेज परिषद में महात्मा गांधी का भाग लेना अनिश्चित था। डा. आंबेडकर की जो मांगें हैं उनकी पार्श्वभूमि समझने के लिए महात्मा गांधी ने स्वयं आंबेडकर से मिलने की इच्छा व्यक्त करते हुए उनसे 6 अगस्त, 1931 को मिलने का निश्चय किया। डा. आंबेडकर को इस पत्र की अपेक्षा ही नहीं थी। वे उसी दिन सांगली से लौटे थे और सारा बदन बुखार से तप रहा था। तिस पर भी उन्होंने, "रात्रि के 8 बजे मैं स्वयं ही आपसे मिलने आ रहा हूं" यह उत्तर भेजा। शाम तक तो बुखार 106° तक चढ़ गया था तब उन्हें विवश होकर यह संदेश भेजना पड़ा, "बुखार उतरने के बाद आपसे मिलने आऊंगा।" 14 अगस्त, 1931 के दिन डा. आंबेडकर दोपहर के समय महात्मा गांधी से मिलने मुंबई में मणि भवन पहुंचे।

यह मुलाकात दोपहर दो बजे शुरू हुई। इस भेंट में महात्मा गांधी ने डा. आंबेडकर से कहा कि अस्पृश्यों का प्रश्न उन्हें हिंदू मुसलमानों के सवाल से भी अधिक महत्व का है। उन्हें यही अचरज है कि अस्पृश्यों के प्रति उनकी इतनी आत्मीयता होते हुए भी डा. आंबेडकर उन्हें अस्पृश्यों का नेतृत्व देने के लिए तैयार क्यों नहीं हैं। उन्होंने अस्पृश्यता निवारण के लिए 20 लाख रुपये खर्च कर दिए हैं। गांधीजी की बातें सुनते ही डा. आंबेडकर ने कहा, "मुझे आज तक इस बात का पता नहीं है।" अपने इस विचार को बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, "कांग्रेस के ये सारे प्रयत्न ठीक इसी तरह हैं जैसे पर्व त्यौहार में नये कपड़े सिलाये जाते हैं। नासिक सत्याग्रह का विरोध करने वालों का नेतृत्व नासिक जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष कर रहे हैं।" इस ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हुए डा. आंबेडकर ने गांधीजी से कहा, "आपने भी इस सत्याग्रह के प्रति अपना विरोध प्रकट किया था।" जब पहली गोलमेज परिषद में किए गए डा. आंबेडकर के कामों की प्रशंसा कर उनको शांत करने का प्रयत्न किया जा रहा था तो डा. आंबेडकर अपनी भावनाओं के वश में आकर बहुत चिढ़ गये और उन्होंने गांधीजी से कहा, "आप कहते हैं यह मेरी मातृभूमि है, लेकिन मैं फिर कहता हूं कि मेरी मातृभूमि नहीं है। जिस किसी अस्पृश्य व्यक्ति को तनिक भी स्वाभिमान है, जिसमें इंसानियत जाग उठी है, वह उस देश को कभी यह नहीं कहेगा कि 'यह मेरा देश है', जिस देश में उसे कुत्ते, बिल्ली जैसी जिदंगी जीना भी नसीब नहीं होता, या जिसके हिस्से में उतनी भी सहानुभूति नहीं आती जो जानवरों को मिल पाती है।" उन्होंने गांधीजी से यह भी कहा, "आप बरदोली के जिन किसानों के लिए आकाश पाताल एक कर रहे हैं वे किसान अस्पृश्यों पर कितना जुल्म ढा रहे हैं, इस पर क्या आपने कभी गौर किया है ? हमारी

चीख पुकार सुनकर आपके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। आपके राष्ट्रवादी कहलाने वाले समाचारपत्रों में हमारी खबरें छापने के लिए जरूरी टाइप ही नहीं है।"[1]

गांधीजी के कुछ विचित्र से विचारों को सुनकर डा. आंबेडकर बेचैन हो गए और उनसे विदा ली। यह विदा मानो गांधीजी के साथ छिड़ने वाली लड़ाई का बिगुल था। लंदन के लिए रवाना होने तक गांधीजी यह समझ रहे थे कि डा. आंबेडकर, अस्पृश्यों की भलाई के लिए जी जान लड़ाने वाले कोई ब्राह्मण सज्जन हैं।

उसी 14 अगस्त की शाम को मुंबई के कावसजी जहांगीर हाल में दलित महिलाओं द्वारा आयोजित विदाई समारोह में अपने कलेजे की कसक को वाणी देते हुए उन्होंने कहा, "अपनी गुलामी का अंत करने के लिए अगर आप सब पक्का इरादा कर लें और डटकर मुकाबला करने के लिए खड़ी हो जायें तो फिर हमारी सारी मेहनत का श्रेय आपको ही मिलेगा।" वहीं पुरुषों की सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "आप सबका प्रेम हमेशा प्रेरणा देता रहा है। इस गोलमेज परिषद में 125 सदस्यों में हम केवल दो ही हैं। मगर आपके अधिकारों के लिए हम जमीन आसमान एक कर देंगे। बिना संघर्ष किए न सत्ता प्राप्त हो सकती है, न प्रतिष्ठा ही।"

दूसरे दिन 15 अगस्त को 'समता दल' के 2,000 स्वयं सेवकों ने डा. आंबेडकर को बेलार्ड पियर के बंदरगाह पर विदाई की सलामी दी। 'आंबेडकर जिंदाबाद' के जयघोष से आकाश गूंज उठा। डा. आंबेडकर के साथ ही अनेकों सदस्य भी 'एस.एस. मुलतान' जहाज से रवाना हुए। उस समय समुद्र में जोरदार तूफान उमड़ा हुआ था। इसीलिए कई प्रवासियों को जहाजी सफर की शिकायत शुरू हो गयी थी। लेकिन डा. आंबेडकर, एन. एम. जोशी और मौलाना शौकत अली इस बीमारी से अछूते रहे।

इस समय डा. आंबेडकर मन से इतने खुश थे कि पिछले दिन का संताप इस उल्लास की लहर में अपने आप लोप हो गया था और वे अपने बीते जीवन का सिंहावलोकन कर रहे थे। उन्होंने अपने अखबार 'जनता' को लिखे गए पत्र में इस समय का इस भांति उल्लेख किया है, "मेरी अपनी जनता के उद्धार के लिए मुझे अपना एक निमित्त और साधन बनाकर भगवान ने यह अवसर दिया है, मुझे अपना माध्यम बनाया है। यह मेरी दृढ़ अनुभूति है। इसलिए इन कार्यों से प्राप्त होने वाला समाधान इतना दुर्लभ है कि बहुत कम भाग्यवान ही उसके अधिकारी बन पाते हैं।"

इस जहाज पर डा. आंबेडकर की मुलाकात मुंबई के पुलिस कमिश्नर मिस्टर विल्सन से हुई। उन्होंने समता दैनिक दल के नौजवानों के अनुशासन की बहुत प्रशंसा की। इसे सुनकर डा. आंबेडकर ने कहा, "फिर आपका यह पुलिस विभाग इन तरुणों का

1. संजाना : पृ. 240-41

तिरस्कार क्यों करता है?" विल्सन ने जवाब दिया, "इसे नासमझी ही समझो। मैं तो इसे सनक कहूंगा। इनमें से कुछ नौजवानों को मैं खुद पुलिस में भर्ती करवाने की बात सोच रहा हूं।" पुलिस कमिश्नर का यह आश्वासन उत्साहवर्धक था। समता सैनिक दल के अनुशासन के बारे में डा. मुंजे और डा. जयकर जैसे हिंदुत्वनिष्ठ नेताओं ने भी बहुत प्रशंसा की थी।[1]

इस बार डा. साहब को सहयात्रियों के व्यवहार में बहुत अंतर दिखाई पड़ा। पिछली बार पहली परिषद के लिए यात्रा करते समय सारे प्रतिनिधियों में यह भावनाएं प्रकट हो रही थीं कि हम सबको मिलकर एक ही ध्येय रखकर अंग्रेजों का मुकाबला करना चाहिए। इस बार यह रुझान नहीं था। इस समय राजा महाराजाओं का दल अलग था। उसमें भी मुस्लिम रियासतों का निराला गुट था। अमीर और खानदानी मुसलमानों का वर्ग अलग और साधारण वर्ग का अलग। जमींदार अलग, रियासतदार अलग। डा. आंबेडकर को सब प्रतिनिधि अलग अलग गिरोह में बंटे नजर आ रहे थे।

पहली गोलमेज परिषद के समय डा. आंबेडकर को 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' में नहीं लिया गया था। लेकिन कायदे कानून के बारे में उनकी गहरी जानकारी और पढ़ाई को ध्यान में रखकर इस बार उन्हें उस कमेटी में स्थान दिया गया था।

डा. आंबेडकर 20 अगस्त के दिन सुबह करीब छह बजे अदन पहुंचे। वहां के एक धनवान व्यापारी ऐडनवाला ने सारे प्रतिनिधियों को दावत पर बुलाया। इच्छा न होते हुए भी डा. आंबेडकर को यह न्यौता स्वीकार करना पड़ा।

दावत के बाद वे एक अंग्रेज महिला के अनुरोध पर अदन शहर और वहां का प्राचीन तालाब देखने गये। 'जनता' अखबार को लिखे गए अपने पत्र में डा. आंबेडकर ने इस सफर का बहुत ही मनोरंजक वर्णन किया है।[2]

उस जहाज पर जितने भी प्रतिनिधि सफर कर रहे थे उन सभी ने तार द्वारा वायसराय महोदय से यह अनुरोध किया था, "महात्मा गांधी इस गोलमेज परिषद में उपस्थित रहें, ऐसा प्रयत्न कीजिए!" डा. आंबेडकर ने भी इस अनुरोध पर अपने हस्ताक्षर किये थे। उन्हें भी यही लग रहा था कि महात्मा गांधी को इस परिषद से मुक्त रखने की अपेक्षा उन्हें इसमें सम्मिलित करना अधिक उचित होगा।

29 अगस्त को लंदन पहुंचते ही डा. आंबेडकर इंफ्ल्यूएंजा से पीड़ित हो गये। उनका पेट चलने लगा और उन्हें उलटियां होने लगीं। सात सितंबर तक वे कुछ अच्छे

---

1. जनता : 14.9.1931
1. जनता : 14.9.1931

हो पाये, लेकिन कमजोरी दूर नहीं हुई। उन्होंने श्री शिवतरकर को जो पत्र लिखा उसमें उन्होंने संकेत किया कि घरवालों को उनकी इस बीमारी का पता न चल पाये।

महात्मा गांधी इन्हीं दिनों 29 अगस्त, 1931 को जहाज से रवाना होकर 12 सितंबर को परिषद में भाग लेने के लिए लंदन पहुंचे। जब दूसरी गोलमेज परिषद प्रारंभ हुई तो महात्मा गांधी और उनके सहयोगी पंडित मदनमोहन मालवीय, सरोजिनी नायडू आदि कांग्रेस के प्रतिनिधि परिषद में उपस्थित थे। ब्रिटेन में लेबर पक्ष की सरकार की जगह अब वहां राष्ट्रीय मंत्रिमंडल स्थापित हुआ था। बरतानिया के प्रधानमंत्री मैक्डोनाल्ड को अस्पृश्यों के प्रति सहानुभूति थी, लेकिन चर्चिल को सत्तांतरण मान्य नहीं था।

महात्मा गांधी ने 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' में अपना पहला भाषण 16 सितंबर, 1931 को दिया। भाषण में उन्होंने यह कहा कि कांग्रेस देश के हिंदू, मुसलमान, अस्पृश्य तथा रियासतों की प्रजा आदि सबका प्रतिनिधित्व करती है। चूंकि वे कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में आए हैं इसलिए वे देश के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। डा. आंबेडकर गांधी के भाषण का रुख तुरंत ताड़ गये। उसी दिन दोपहर को भाषण देते हुए आंबेडकर ने चेतावनी दी, "इन रियासतवालों की मांगें हम मंजूर नहीं करेंगे। इन रियासतों के हुकमरानों को यह गारंटी देनी होगी कि वे सर्वसाधारण जनता को सभ्य और सुसंस्कृत जीवन जीने के लिए जरूरी जरूरतों को पूरा करेंगे। साथ ही, रियासतों में चुनावों द्वारा जनता के प्रतिनिधियों को स्थान देना चाहिए। नामजद करने का तरीका एक जिम्मेदार सरकार के उसूलों के खिलाफ है।" डा. आंबेडकर की इस स्पष्टवादी भूमिका ने राजा महाराजा और नवाबों को हक्का बक्का कर दिया। उनका चेहरा फक पड़ गया।

इस गोलमेज परिषद की 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' में डा. आंबेडकर ने रियासतों की रियाया की तरफ से बहुत ही साफ रवैया अपनाया था। अपनी इस निर्णयात्मक नीति को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने कुछ प्रतिनिधि साथियों के हस्ताक्षर लेकर एक पत्र इंग्लैंड के प्रधानमंत्री को प्रेषित किया था और इस बात की ओर दृढ़ता से संकेत किया था कि रियासतों और संस्थाओं के प्रतिनिधि प्रजा द्वारा चुने हुए व्यक्ति ही होने चाहिए। कई भारतीय और अंग्रेज दिग्गज नेताओं ने बहुत आग्रह किया कि डा. आंबेडकर अपने इस पत्र को वापिस ले लें, लेकिन डा. आंबेडकर ने साफ इंकार कर दिया। ब्रिटिश शासन के अधीन भारत के कुछ नेताओं की मनसूबाबाजी की वजह से उनकी सारी कोशिशों का कोई उपयोग नहीं हो पाया।[1]

1. माझया विलायतच्या आठवणी : अण्णा साहब लठ्ठे। प्रकाशक : जी. आर. तेंदुलकर, तरुणभारत प्रेस, बेलगांव, 1936

दूसरे दिन महात्मा गांधी ने अपने भाषण में कहा कि रियासतों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह बतलाने का हमें अधिकार नहीं है। उन्हें यह कल्पना नहीं थी कि उनके ये उद्गार रियासतों की रियाया की भलाई के खिलाफ जा रहे हैं। फिर विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधित्व के बारे में बोलते हुए महात्मा गांधी ने कहा, "कांग्रेस अछूतों की भलाई के लिए सब कुछ कर रही है, इसलिए अछूतों को विशेष प्रतिनिधित्व देने की योजना के प्रति कट्टर विरोध रहेगा।" 18 सितंबर को डा. आंबेडकर ने गांधी जी से सवाल किया कि 16 सितंबर को कहे गए विचार उनके निजी विचार हैं या कांग्रेस के? इस बात पर सदस्यों में सनसनी फैल गई। कमेटी की हर बैठक में डा. आंबेडकर की विद्वता, संविधान पांडित्य तथा वाक्पटुता की प्रतिभा की अनुभूति होती थी।

बालिग मताधिकार की प्राप्ति के लिए गोलमेज परिषद में डा. आंबेडकर को संघर्ष करना पड़ा। कांग्रेस भी बालिग मताधिकार की मांग कर रही थी मगर गोलमेज परिषद में जनसाधारण के अधिकारों के लिए डा. आंबेडकर ने जो तकरीरों की मुहिम छेड़ी वह देखने सुनने लायक थी। उन्होंने कहा था, "कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को ही मताधिकार दे देने से जो सरकार बनेगी वह अल्पसंख्यकों की सरकार होगी। नतीजा यह होगा कि बहुसंख्यकों के हितों की बागडोर अल्पसंख्यकों के हाथ में रहेगी।"

मताधिकार उपसमिति के सामने भाषण देते हुए उन्होंने कहा, "मेरी राय में बस दो ही प्रश्नों पर इस गोलमेज परिषद में मंत्रणा आवश्यक है। क्या भारत को उत्तरदायी शासन प्रणाली दी जाये ? यदि दी ही जाये तो शासन किस के प्रति उत्तरदायी रहेगा? जवाबदेही की सरकार का अधिकार मांगने वाले कुछ लोग समस्त भारतीयों को मताधिकार देने के लिए तैयार नहीं हैं। यह सुनकर मैं बहुत हैरान हूं।"[1] उनका यह स्पष्ट मत था कि धन दौलत या लिखाई पढ़ाई के अभाव के कारण किसी भारतवासी को सरकार का चुनाव करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। यदि बालिग मताधिकार नहीं मिल रहा हो तो भारतीय प्रतिनिधियों का उन्होंने आह्वान किया कि वे औपनिवेशिक स्वराज्य की भी मांग न करें और परिषद की बैठक से बहिर्गमन कर दें।

वे कहा करते थे कि अपनी खुद की जिदंगी, जायदाद और आजादी की रक्षा करने का अधिकार ही मताधिकार का सही मतलब है। दूसरी गोलमेज परिषद में महात्मा गांधी और कांग्रेस के अन्य प्रतिनिधियों ने भी बालिग मताधिकार की मांग की थी।

संपत्ति, शिक्षा या अन्य किसी कारण के वश, किसी भी वयस्क भारतवासी को

---

1. डा. आंबेडकर, पायोनियर आफ ह्यूमन राइट्स, पृ. 141

मताधिकार से वंचित करना चाहिए। "इंसान भले ही अनपढ़ हो फिर भी वह समझदार होता है। वह अपना हित अच्छी तरह समझता है। केवल गरीबी की वजह से कोई अपने राज्य का प्रतिनिधि न चुन सके तो यह उसके साथ बड़ी बेइंसाफी होगी।"[1]

रियासतों के सार्वभौम शासन के बारे में डा. आंबेडकर की भूमिका प्रजा के अधिकारों के प्रति सजग रहने की थी। यदि औपनिवेशिक स्वराज्य मिलता है तो रियासतें ब्रिटिश सम्राट के अधीन रहेंगी और यदि भारत को पूर्ण स्वतंत्रता मिलती है तो रियासतें भारत सरकार के अधीन रहेंगी। उन्हें किसी भी विदेशी सरकार के साथ समझौता करने का कोई अधिकार नहीं होगा। यह उनकी स्पष्ट राय थी।[2] इसीलिए "स्टेट्स एंड मायनारिटीज" विषय पर संविधान समिति को दिए गए अपने निवेदन में उन्होंने स्वतंत्र भारत में भारतीय रियासतों का क्या स्थान होगा, इस बारे में विस्तृत रूपरेखा दी थी।

28 सितंबर को अल्पसंख्यक समिति की बैठक निर्धारित थी। उससे पहले देवदास गांधी के माध्यम से डा. आंबेडकर को महात्मा गांधी से मिलने के लिए आमंत्रित किया गया। सरोजिनी नायडू के निवास स्थान पर यह मुलाकात रात में 9 बजे से 12 बजे तक चलती रही। मगर गांधीजी ने अपना कोई मत प्रकट नहीं किया। 28 सितंबर को अल्पसंख्यक समिति की बैठक में आगा खान ने यह सूचना पेश की, "महात्मा गांधी की मुसलमान प्रतिनिधियों के साथ मुलाकत होने वाली है, लिहाजा यह बैठक मुल्तवी रखी जाये।" डा. आंबेडकर को इस बात का पता चल चुका था कि गांधीजी और मुसलमानों के प्रतिनिधियों के बीच में कुछ गुप्त मंत्रणाएं हो रही हैं। उन्हें यह भी पता था कि अस्पृश्यों के अधिकारों पर गांधीजी के क्या विचार हैं। इसलिए उन्होंने तुरंत खड़े होकर यह घोषणा की, "गांधीजी कांग्रेस या किसी का भी प्रतिनिधित्व क्यों न करते हों, उनके द्वारा किया गया कोई भी समझौता हमें अर्थात् अस्पृश्यों को स्वीकार नहीं होगा। हमारे हिस्से का कोई भी भाग किसी को नहीं दिया जा सकता। हम किसी समझौते के बंधन में नहीं आयेंगे।" डा. आंबेडकर के इस स्पष्टीकरण के बाद प्रधानमंत्री द्वारा बैठक स्थगित कर दी गयी।

गांधीजी ने 1 अक्तूबर को फिर समय मांगा। तब डा. आंबेडकर ने खड़े होकर प्रश्न किया, "इस समझौते की बातचीत में अस्पृश्यों के लिए कोई स्थान है, या नहीं?" गांधीजी के इस प्रश्न पर सम्मति प्रकट करते ही आंबेडकर ने साफ साफ कहा, "अभी तक गांधीजी के साथ जो मुलाकात हुई है और उन्होंने जो भी मंतव्य प्रकट किए हैं

---

1. इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन, वाल्यूम 3, पृ. 113
2. इंडियन कांस्टिट्यूशनल डाक्यूमेंट्स, वाल्यूम चार, ए मुकर्जी एंड कं. प्रा. लि. 1963, पृ. 347-48

उनसे यह स्पष्ट है कि अस्पृश्यों, एंग्लो इंडियनों और इंडियन क्रिश्चियनों को वे अल्पसंख्यक मानने के लिए तैयार नहीं हैं। अगर भावी भारतीय संविधान में अस्पृश्यों को स्थान नहीं मिलेगा तो हम किसी भी कमेटी या किसी भी चर्चा में भाग लेने के लिए कदापि इच्छुक नहीं हैं।"

इसके विपरीत गांधीजी ने लगभग एक सप्ताह तक मुसलमानों के प्रतिनिधियों से चर्चा जारी रखी। उन्होंने उन लोगों की चौदह शर्तें भी मान लीं। फिर भी सिखों और मुसलमानों के सवाल पर बातचीत असफल रही। अपने 8 अक्तूबर के भाषण में गांधीजी ने इन वार्ताओं के असफल होने की जवाबदेही भारत के अन्य प्रतिनिधियों के सिर मढ़ी और यह आरोप लगाया कि वे 'जन प्रतिनिधि' नहीं हैं। गांधीजी के इस आरोप की कटु आलोचना करते हुए डा. आंबेडकर ने प्रतिक्रिया स्वरूप यह व्यक्त किया कि किस तरह वे अस्पृश्यों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उन्होंने प्रमाण देते हुए यह भी साबित किया कि अस्पृश्यों का कांग्रेस पर कतई भरोसा नहीं है। डा. आंबेडकर इतना कहकर ही शांत नहीं हुए। उन्होंने 12 अक्तूबर को 'टाइम्स आफ इंडिया' को एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने इस बारे में पूरा ब्यौरा दिया कि किस तरह गांधीजी ने मुसलमानों की मांगों का अस्पृश्यों के साथ सौदा किया है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि गांधीजी असल में अस्पृश्यों के दुश्मन भी नहीं हैं।

लंदन की गोलमेज परिषद के समाचार सारे भारत में फैल गये। अस्पृश्यों ने जगह जगह हजारों सभाएं कर यह प्रस्ताव पास किया कि डा. आंबेडकर ही उनके सच्चे प्रतिनिधि हैं। ये प्रस्ताव तार द्वारा सरकार को भेजे गये। नासिक के सत्याग्रह ने भी डा. आंबेडकर की भूमिका को शक्ति प्रदान करने में योगदान दिया।

अपनी लंदन यात्रा के समय डा. आंबेडकर ने वहां रहते हुए भांति भांति के निवेदन और वक्तव्य प्रस्तुत किए थे। 'इंस्टिट्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स' नामक संस्था की सभा में दिये गये भाषण में उन्होंने स्पष्ट किया कि गांधीजी के विचार कितने बनावटी और दिखाऊ हैं। गांधीजी लंदन में न्यूरियल लेस्टर के घर ठहरे थे। उस महिला ने भी आंबेडकर का पक्ष समझने का प्रयास किया। गांधीजी पर की गयी तीखी टीका टिप्पणी और आलोचना के कारण भारतीय समाचारपत्रों ने डा. आंबेडकर पर तीखे वार किये। यहां तक कि उन्हें देशद्रोही घोषित किया।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मैक्डोनाल्ड ने जब यह देखा कि अल्पसंख्यकों की समस्या पर सर्वसम्मत हल नहीं निकल पा रहा है तो उन्होंने यह सूचना दी कि सारे प्रतिनिधि यह लिखित आश्वासन दें कि प्रधानमंत्री की मध्यस्थता से सरकार जो निर्णय

देगी वह सबको मान्य होगा। उनकी यह सूचना सभी प्रतिनिधियों ने स्वीकार की। यहां तक कि महात्मा गांधी ने भी इस निवेदन पर हस्ताक्षर किये। इस निवेदन पर हस्ताक्षर करने से पहले गांधी और आंबेडकर की मुलाकात सर मिर्जा इस्माइल के निवास स्थान पर हुई। लेकिन गांधीजी के सुझाव डा. आंबेडकर को कुछ अजीब, असंभव, अनुपयुक्त और अमल में लाने लायक नहीं लगे, इसलिए वे वहां से चले आये। "डा. आंबेडकर भारत के एकमात्र ऐसे नेता थे जिन्हें गांधीजी भी अपने महात्मापन की आभा से चकाचौंध नहीं कर सके।"[1] पहली दिसंबर को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने परिषद समाप्त की। जब इंग्लैंड के सम्राट ने गोलमेज परिषद के प्रतिनिधियों को भोज पर आमंत्रित किया, उस 5 नवंबर, 1931 की दावत में डा. आंबेडकर की जुबानी भारतीय दलितों की कहानी सुनकर बादशाह सलामत का दिल पसीज गया था।

जिन दिनों डा. आंबेडकर विदेश में ही थे, बंबई सरकार ने उन्हें 'जस्टिस आफ पीस' नियुक्त किया था। परिषद समाप्त होने पर उन्होंने किताबों से भरी लगभग 32 पेटियां श्री श्रीनिवासन के साथ भारत रवाना कीं और वे एक माह के विश्राम के लिए अमेरिका रवाना हो गए। अमेरिका से वे 4 जनवरी, 1932 को वापिस लंदन पहुंचे और फिर भारत के लिए रवाना हुए। 29 जनवरी को सुबह आठ बजे उनका जहाज मुंबई के बंदरगाह पर लगा। उनके स्वागत के लिए वहां दलित समुदाय हजारों की संख्या में उपस्थित था। उसी समय मुसलमानों के नेता मौलाना शौकत अली की अगवानी करने मुसलमानों का हुजूम भी बंदरगाह पर मौजूद था। इसलिए दोनों समाज के लोगों ने एक साथ ही दोनों नेताओं का जुलूस निकाला जो भायखला होता हुआ परेल तक पहुंचा।

उसी दिन 114 संस्थाओं की ओर से डा. आंबेडकर को सम्मानपत्र अर्पित किया गया। इस अवसर पर डा. आंबेडकर का हृदय गद्‌गद हो गया। उन्होंने अपनी सारी सफलताओं का श्रेय अपनी जनता को दिया और कहा, "हिंदू समाज की भावी पीढ़ी यही फैसला देगी कि मैंने अपने देश के लिए सही और नेक काम किया है।" उन्होंने यह भी कहा, "आप लोग मुझे देवता न बनायें।"

मताधिकार और निर्वाचन की सीटों का निर्णय करने के लिए जो कमेटी बनी उस 'लोथियन कमेटी' के कामकाज में भाग लेने के लिए डा. आंबेडकर दिल्ली के लिए रवाना हुए। उस यात्रा में हर बड़े स्टेशन पर उनका सम्मान किया गया। फरवरी 1932 में डा. आंबेडकर इस कमेटी के साथ बिहार गये। इस अवसर पर वहां के अस्पृश्यों ने बड़े उत्साह के साथ उनका स्वागत किया।

---

1. सत्याग्राही, ग्रह आणितारे, देशमुखआणि कंपनी, 191 शनिवार पेठ, पुणे-2

रायबहादुर एम. सी. राजा केंद्रीय विधानमंडल के एकमेव अस्पृश्य सदस्य थे। उन्होंने 'डिप्रेस्ड क्लासेस परिषद्' का आयोजन कर अछूतों के लिए स्वतंत्र मतदार संघ की मांग की थी। उसके अनुसार डा. आंबेडकर ने भी स्वतंत्र मतदार संघ और आरक्षित स्थानों के लिए अपनी मांगें पेश कीं। लेकिन फरवरी, 1932 के तीसरे हफ्ते में श्री राजा ने अपना मत उलट कर डा. मुंजे के साथ समझौता कर लिया और प्रधानमंत्री को तार द्वारा सूचना दी कि अस्पृश्यों के लिए संयुक्त सरकार संघ और आरक्षित स्थान होने चाहिए।

28 फरवरी, 1932 के दिन डा. आंबेडकर का मद्रास में विशाल स्वागत किया गया। उस सभा में दस हजार से अधिक अस्पृश्य लोग, आदि द्रविड़, आदि आंध्र, केरल निवासी अस्पृश्य मुसलमान, ईसाई तथा अब्राह्मण आदि सब समाजों की ओर से उन्हें सम्मानपत्र अर्पित किये गये। उन्होंने अपने भाषण में यह समझाया कि श्री राजा ने किस तरह अस्पृश्यों के साथ विश्वासघात किया है।

राजा मुंजे समझौते का समाचार पाकर बंगाल और असम के अस्पृश्य नेताओं ने पत्रिका प्रकाशित कर डा. आंबेडकर का समर्थन किया। बंगाल की 'नामशूद्र एसोसिएशन' ने कलकत्ता के अलबर्ट हाल में परिषद आमंत्रित कर डा. आंबेडकर को सहयोग देने का आश्वासन दिया। 'लोथियन कमेटी' का कामकाज 1 मई, 1932 को समाप्त हुआ। डा. आंबेडकर कमेटी से चर्चा करने के लिए एक दो दिन और शिमला रुके। कमेटी ने आंबेडकर द्वारा इच्छित स्पष्टीकरण, कि डिप्रेस्ड क्लास का अर्थ अस्पृश्य वर्ग ही लिया जाय, को मान्य किया। यह डा. आंबेडकर की विजय थी। कमेटी को दिए गए निवेदन में आंबेडकर ने अपनी भिन्न विचार पत्रिका संलग्न की।

19

गोलमेज परिषद से होने वाले लाभ का मूल्यांकन करने के लिए नागपुर के पास कामठी शहर में अखिल भारतीय डिप्रेस्ड क्लास की एक परिषद आयोजित की गयी। इस परिषद की अध्क्षता करने के लिए डा. आंबेडकर 6 मई, 1932 को मुंबई से कामठी के लिए रवाना हुए। मार्ग में हर स्टेशन पर दलित जनता ने उनका स्वागत किया। दूसरे दिन जब वे नागपुर पहुंचे तो हजारों लोग उनका स्वागत करने के लिए स्टेशन पर मौजूद थे। उस स्वागत समारोह में सैकड़ों महिलाओं ने हर आरती में पांच पांच बत्तियां जलाकर उनकी आरती उतारी। इस स्वागत के बाद डा. आंबेडकर और श्रीनिवासन को विशाल जलूस में नागपुर से कामठी ले जाया गया।[1]

7 मई, 1932 को संध्या समय पांच बजे दलित कांग्रेस का अधिवेशन कामठी में प्रारंभ हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री एल. एन. हरदास ने सर्वप्रथम भाषण दिया।

अधिवेशन के नियोजित अध्यक्ष मुनि स्वामी पिल्लै ने अपने दो घंटों के भाषण में स्वतंत्र मतदार संघ का समर्थन किया। राजा मुंजे समझौते के विरुद्ध सभी क्षुब्ध होकर आग उगल रहे थे।

दूसरे दिन दोपहर के अधिवेशन में बारह प्रस्ताव पास किये गये। यह साफ साफ ऐलान किया गया कि राजा मुंजे समझौता अस्पृश्यों के हित के विपरीत है। साथ ही गोलमेज परिषद में डा. आंबेडकर और श्रीनिवासन द्वारा किये गये कामों की प्रशंसा की गयी। इस अधिवेशन में भारत के सभी राज्यों से सैकड़ों प्रतिनिधि पधारे थे। सभा मंडप में 15,000 से अधिक लोग मौजूद थे। अनेकों लोग बाहर खड़े होकर भाषण सुन रहे थे।

इस परिषद में इस बात पर मुहर लग गयी कि डा. आंबेडकर ही अस्पृश्यों के एकमेव नेता हैं।

कामठी कांग्रेस के बाद डा. आंबेडकर ने सोलापुर और निपाणी की सभाओं में भी स्वतंत्र मतदार संघ की भूमिका स्पष्ट की।

---

1. एच. एल. कोसारे : विदर्भातील दलित चलवलीचा इतिहास, पृ. 187

21 मई को पुणे में उनका विशाल जुलूस निकाला गया। फिर अहिल्याश्रम में विधान सभा सदस्य माननीय लठ्ठे की अध्यक्षता में आयोजित सभा को संबोधित करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "जब भावी इतिहासकार बिना भावावेश के गोलमेज परिषद की समूची कार्यवाही का विश्लेषण करेंगे तो वे मेरी राष्ट्रसेवा पर गौरव ही करेंगे। मैं इस बात को विशेष महत्व देता हूं कि मेरे दलित बांधवों की मेरे उद्देश्यों पर सुदृढ़ श्रद्धा है। मुझे न निंदा की परवाह है, न तोहमत की।"

डा. आंबेडकर 26 मई को इंग्लैंड के लिए रवाना हुए और वे जून में लंदन पहुंचे। चूंकि एम. सी. राजा ने विरोधी भूमिका ली थी, इसलिए ब्रिटिश सरकार के सामने अपना पक्ष प्रस्तुत करना डा. आंबेडकर के लिए आवश्यक हो गया था। वहां उन्होंने 14 जून तक ब्रिटिश राजनयिकों और अधिकारियों से मुलाकातें करके उन्हें अपनी मांगों को समझाने का प्रयास किया।

एम. सी. राजा की उलटचक्री के कारण डा. आंबेडकर को बहुत मानसिक कष्ट झेलना पड़ा। मुंबई में राजा ने एक सभा करनी चाही। मगर डा. आंबेडकर के अनुयायियों ने उसे ध्वस्त कर दिया।

"डा. आंबेडकर ने अपने प्रतिवेदन में जो सुझाव दिए हैं और मांगें पेश की हैं, उन्हें यदि देश के संविधान में समाविष्ट नहीं किया गया तो अस्पृश्य समाज उस संविधान को स्वीकार नहीं करेगा।" इस आशय के 56 तार प्रधानमंत्री रेम्जे मैक्डोनाल्ड के नाम लंदन भेजे गये।[1]

डा. आंबेडकर 17 अगस्त को मुंबई लौटे। उनके आगमन से पहले ही ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने अपना निर्णय जाहिर कर दिया था। यही 'सांप्रदायिक निर्णय' नाम से जाना जाता है। इस फैसले के मुताबिक अस्पृश्यों को स्वतंत्र मतदार संघ और सुरक्षित स्थान दोनों अधिकार दिये गये थे। साथ ही वे हिंदू प्रतिनिधियों के चुनाव में भी मताधिकार का उपयोग कर सकते थे।

मुंबई पहुंचते ही उन्होंने सर सेम्युअल होअर को तुरंत पत्र भेजा।

इस पत्र में[2] उन्होंने इस सांप्रदायिक निर्णय की बहुत सी अस्पष्ट बातों पर स्पष्टीकरण मांगा था। उसमें महत्व का प्रश्न नवें परिच्छेद के बारे में था। इस बारे में डा. साहब ने स्पष्ट रूप से लिखा था, "अन्य पिछड़े वर्गों की तुलना में अस्पृश्यों के लिये की गयी व्यवस्था बहुत ही निकम्मी है। बीस साल बाद उन्हें दिये गये

---

1. टिपणीस, सु. गो. : महाड़ मासिक, 1962
2. सर सेम्युअल होअर को डा. आंबेडकर द्वारा दि. 21-8-1932 को लिखे गये पत्र से (इंडिया आफिस लायब्रेरी एंड रिकार्डस, टेंपलवुड कलेक्शन)

विशेषाधिकारों को हटाते समय उनसे कुछ भी जानने की जरूरत नहीं। यह तजवीज होने की वजह से अस्पृश्यों को कुछ करने की गुंजाइश ही नहीं रहेगी।" इस निर्णय के प्रति उन्होंने अपने पत्र के अंत में अपनी कटु आलोचना लिखते हुए यह भी इशारा किया कि इससे अस्पृश्य समाज में असंतोष की लहर फैल जायेगी।

इस सांप्रदायिक निर्णय के अनुसार मुसलमान, सिख, ईसाई–सबको स्वतंत्र मतदार संघ स्वीकृत हुआ था। इस कारण हिंदू समाज में असंतोष फैलना स्वाभाविक ही था।

20

ब्रिटिश हुकूमत ने गांधीजी को यरवदा जेल में बंदी कर रखा था। उन्होंने हुकूमत को धमकी दी कि अगर अस्पृश्यों को स्वतंत्र मतदार संघ दिया गया तो वे अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे। इतना ही नहीं, अगर यह फैसला रद्द न किया गया तो उन्होंने यह घोषणा की कि वे आमरण उपवास करेंगे।

गांधीजी के इस संकल्प से सारे देश में सनसनी की लहर दौड़ गयी। गांधीजी के प्राणों पर संकट छाने के कारण हिंदू समाज में हाहाकार मच गया। सब तरफ कोशिशों की दौड़ धूप शुरू हो गयी। पंडित मदनमोहन मालवीय ने इस समस्या का हल निकालने के लिए एक अपील निकालकर 19 सितंबर के दिन मुंबई में एक परिषद का आयोजन किया। इस बारे में उन्होंने डा. आंबेडकर को भी तार द्वारा निमंत्रित किया। यदि सांप्रदायिक निर्णय पर विचार कर उसमें कुछ परिवर्तन सुझाने हों तो डा. आंबेडकर की सम्मति आवश्यक थी। अस्पृश्यों के प्रतिनिधि के रूप में डा. आंबेडकर को मान्यता देने के अलावा समाचारपत्रों को और कोई चारा नहीं था। इस परिषद की मुंबई में बैठक होने से पहले डा. आंबेडकर ने एक निवेदन में कहा, "अस्पृश्य समाज के अधिकारों में कमी करने के लिए मैं अपनी रजामंदी हरगिज नहीं दूंगा।" अहमदाबाद में भी आंबेडकर ने यही भूमिका प्रस्तुत की। डा. आंबेडकर को 'अंग्रेजों का एजेंट', देशद्रोही –इस तरह के कटाक्ष भरे प्रचारों की सब तरफ से मानो बाढ़ सी आ गयी थी।

डा. आंबेडकर बहुत ही शांत मन से सारी घटनाओं का अवलोकन कर रहे थे। उन्होंने एक निवेदन प्रकाशित किया। इसमें प्रश्न किया गया था, "यदि मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों को स्वतंत्र मतदार संघ मिल जाने से देश विभक्त नहीं होता है तो अस्पृश्यों को मिल जाने से किस तरह विभक्त हो जायेगा ?" फिर उन्होंने यह भी सारगर्भित बात कही, "इस देश में अनेक महात्मा लोग कल्याण के लिए जन्मे और सिधार गए, मगर अस्पृश्य समाज फिर भी जैसा था वैसा ही है।"

मुंबई के इंडियन मर्चेंट चेंबर हाल में 19 सितंबर को यह सम्मेलन हुआ। मदनमोहन

मालवीय ने इसकी अध्यक्षता की। आंबेडकर भी पास ही बैठे थे और अधिकतर प्रमुख नेतागण भी वहां उपस्थित थे। इस सम्मेलन में डा. आंबेडकर ने अपनी गंभीर वाणी में कहा, "अस्पृश्यों की भलाई के विरोध में गांधीजी उपवास कर रहे हैं, यह अत्यंत खेदजनक है। गांधीजी सांप्रदायिक निर्णय के स्थान पर स्वयं ही नयी योजना सुझाएं। केवल गांधीजी की जान बचाने के लिए अगर अस्पृश्यों के हितों के विरुद्ध कोई योजना तैयार की जाती है तो मैं उसका सहभागी बनने के लिए तैयार नहीं हूं।"

दूसरे दिन गांधीजी से मिलकर लौटे हुए शिष्टमंडल के सदस्यों से बातचीत का ब्यौरा समझने के लिए सम्मेलन की दूसरी बैठक हुई। सर चुन्नीलाल मेहता ने कहा कि गांधीजी का सुरक्षित स्थानों के बारे में कोई विरोध नहीं है। परिषद के सामने अपने विचारों को रखते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "मैं अपने अस्पृश्य बांधवों के न्यायपूर्ण और नियमानुसार मिले हुए अधिकारों के, जो सनद के मुताबिक मिले हैं, साथ धोखा नहीं करूंगा। मैं उनका हनन नहीं होने दूंगा। आप मुझे भले ही नजदीक की बत्ती के खंभे पर फांसी दे दें मगर मैं अपने निश्चय से डिग नहीं सकता।" रात्रि की बैठक में डा. आंबेडकर ने अपनी योजना प्रस्तुत की। उसमें उन्होंने प्रारंभिक निर्वाचन को स्वीकार किया, मगर साथ ही अधिक सुरक्षित स्थान रखने की मांग की। परिषद के नेताओं ने आंबेडकर की मांगें मान्य कर लीं। जयकर, सप्रू, बिरला आदि नेतागण, दूसरे दिन गांधीजी से मिलने पुणे गये और वहां उन्होंने गांधीजी से चर्चा की। गांधीजी का संदेशा पाकर डा. आंबेडकर मध्य रात्रि में उनसे मिलने पुणे पहुंचे। दूसरे दिन फिर से काफी चर्चा होती रही। बातचीत के दौरान कभी कभी माहौल भड़क उठता था। शाम को फिर डा. आंबेडकर गांधीजी से मिलने गये। उन दिनों महात्मा गांधीजी के प्रभाव का एक घेरा बन चुका था कि जो कोई भी नेता उनके पास जाता वह उनके व्यक्तित्व के सामने दब सा जाता था। लेकिन सब तरफ से काफी दबाव पड़ने पर भी आंबेडकर शांत और गंभीर रहे। उनके विचारों में तनिक भी परिवर्तन नहीं आया। वे जरा भी विचलित नहीं हुए। फिर गांधी आंबेडकर में आपसी बातचीत हुई। आखिर गांधीजी ने कहा, "मैं आपके सुझाए हुए पैनल की व्यवस्था मान्य करता हूं।" गांधीजी ने बहुत ही भावुक होकर कहा, "आप जन्म से अस्पृश्य हैं, मैं मन से अछूत हूं। हम सब एक हैं, अविभाज्य हैं, अभंग हैं। हिंदू समाज का विघटन टालने के लिए मैं अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिए कृतसंकल्प हूं।" आंबेडकर ने गांधीजी की सूचना मान ली और मुलाकात समाप्त हुई।

शुक्रवार के दिन शाम तक समझौते के मसौदे पर काफी ले दे होती रही।

गांधीजी के पुत्र देवदास गांधी ने आकर डा. आंबेडकर को बताया, "गांधीजी की हालत चिंताजनक हो गयी है।" मगर डा. आंबेडकर कुछ शर्तों पर अडिग थे। उस रात भयावह शांति फैली रही।

रविवार को सुबह से ही बातचीत का दौर शुरू हुआ। दोपहर के करीब तीन बजे राजगोपालाचारी ने गांधीजी से डा. आंबेडकर की शर्तें मंजूर करवा लीं और फिर समझौता सर्वसम्मत हो गया। 24 सितंबर, 1932 के दिन बहुत आनंद के वातावरण में दोनों पक्षों के नेताओं ने समझौते पर हस्ताक्षर किये। यह समझौता 'पूना पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस इकरारनामे पर अस्पृश्यों की तरफ से डा. आंबेडकर ने हस्ताक्षर किये और हिंदुओं की तरफ से पंडित मदनमोहन मालवीय ने हस्ताक्षर किये। इस पर जयकर, सप्रू और अनेक नेताओं के हस्ताक्षर हुए। राजगोपालचारी तो इस अवसर पर इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने डा. आंबेडकर से फाउंटेनपेन की अदला बदला की।

सारे नेतागण 24 सितंबर को मुंबई लौटे। दोपहर में दो बजे इंडियन मर्चेंटस चेंबर में सब नेताओं के भाषण हुए। पुणे के समझौते का समर्थन करने वाला प्रस्ताव रखा गया। सप्रू ने आंबेडकर की भूरि भूरि प्रशंसा की और कहा, "भविष्य में डा. आंबेडकर राष्ट्र के एक तेजस्वी नेता के रूप में मशहूर होंगे।" वैसे सच पूछा जाये तो डा. आंबेडकर बहुत पहले ही अपना नेतृत्व स्थापित कर चुके थे। तालियों की गड़गड़ाहट में डा. आंबेडकर ने अपना भाषण प्रारंभ किया। उन्होंने अपने भाषण में बताया, "गांधीजी, सप्रू और राजगोपालाचारी के सहकार्य से ही यह समझौता संभव हो सका है। यदि गांधीजी ने गोलमेज परिषद में ही यह मनोवृत्ति दिखलाई होती तो यह विपत्ति इस तरह आती ही नहीं।"

26 सितंबर को ब्रिटिश मंत्रिमंडल ने इस समझौते को पार्लियामेंट में स्वीकृत करवा दिया। इस समझौते से डा. आंबेडकर के नेतृत्व को चार चांद लग गये। एक बार फिर वे नेतृत्व की कसौटी पर खरे उतरे। पुणे के इस समझौते के अनुसार अब अस्पृश्यों को 71 की बजाय 148 स्थान मिले और उन्हें अपनी जनसंख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। लेकिन उन्हें अपने प्रतिनिधि स्वयं चुनने जैसे ही हिंदुओं के प्रतिनिधियों को चुनने के अधिकारों से वंचित होना पड़ा।

पुणे समझौते पर टिप्पणी करते हुए सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था—"डा. आंबेडकर ने (सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों) के अलावा कुछ स्थान अस्पृश्यों के लिए आरक्षित करने की मांग गोलमेज परिषद में की थी। उस समय आंबेडकर के साथ समझौता करने के लिए महात्मा गांधी तैयार नहीं थे। उस समय यदि गांधीजी राजी हो जाते तो उन्हें

पुणे समझौते में जो शर्तें माननी पड़ीं, उनकी अपेक्षा गोलमेज परिषद की शर्तें (महात्मा गांधी की दृष्टि में) ज्यादा अच्छी रहतीं।[1]

पी. कोदंडराव ने कहा था कि महात्मा गांधीजी ने डा. आंबेडकर को भड़काया। उन्होंने यह भी कहा कि डा. आंबेडकर के बजाय गांधीजी स्वयं को अस्पृश्यों का प्रतिनिधि समझते थे।[2]

1. सुभाषचन्द्र बोस "दि इंडियन स्ट्रगल", 1920-42.
2. लोखंडे, पृ. 217.

21

'पुणे समझौते' के बाद सारे देश में मंदिर प्रवेश, सहभोजन, इत्यादि आंदोलनों ने जोर पकड़ा। अब डा. आंबेडकर ने अपना सारा ध्यान राजकीय अधिकार प्राप्त करने की ओर लगाया। 28 सितंबर, 1932 को मुंबई के वरली इलाके में भाषण देते हुए उन्होंने कहा, "यह नहीं है कि मंदिर में प्रवेश करने से आप लोगों का उद्धार हो जायेगा। मगर हमें अपने राजनैतिक अधिकारों का उपयोग अपने जीवन में सुख सुविधाएं पाने की दिशा में करना चाहिए।"

19 अक्तूबर को सावंतवाडी की अदालत में मुकदमे का काम शुरू हुआ और वह तीन दिन चला। अपने इस प्रवास में वे मराठा बोर्डिंग देखने गये और वहां महारों की बस्ती में भाषण दिया। 28 अक्तूबर, 1932 के दिन ऋषि समाज ने उन्हें मुंबई में सम्मानपत्र दिया। उस समय उन्होंने यह उपदेश दिया, "अस्पृश्यों को आपसी जाति भेद समाप्त कर देना चाहिए।" 4 नवंबर, 1932 को नासिक में गुजराती मेघवाल भंगी जाति के अस्पृश्य समाज की ओर से उन्हें मानपत्र भेंट किया गया। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि हमें अपने समाज की आर्थिक गुलामी खत्म करनी चाहिए। मेघवाल जाति ने जो दावत दी उसमें अन्य अस्पृश्य समाज को भी सम्मिलित करने का डा. आंबेडकर का प्रयास सफल हुआ।[1] उन्होंने उसी दिन वालपारवाडी में भी एक सभा को संबोधित किया। उन्होंने कहा, "गांधीजी को अब विश्वास हो गया है कि आंबेडकर को बहुत विशाल अस्पृश्य समाज का समर्थन प्राप्त है।" उन्होंने फिर यह उपदेश दिया कि हमें यह एकता बनाये रखनी होगी।

7 नवंबर, 1932 को आंबेडकर ने इंग्लैंड के लिए प्रस्थान किया। विदाई से पूर्व उन्होंने पत्रकारों को संबोधित किया। वे बोले, "गांधीजी के असहयोग आंदोलन से अधिकारी तंत्र नष्ट नहीं हुआ है, इसलिए इस आंदोलन को विप्लव नहीं कहा जा सकता।" इस यात्रा में उनका मन अत्यंत आनंदमय था। वे 'विक्टोरिया' जहाज से प्रवास कर रहे थे। उसके वेग और आकृष्ट रूप की सज्जा और व्यवस्था से वे बहुत प्रभावित

---

1. गायकवाड, भा. कृ. : जनता विशेषांक, 1932

हुए। उन्होंने 14 नवंबर, 1932 को पोर्ट सईद बंदरगाह से एक पत्र लिखा था।[1] उसमें उन्होंने अपनी भावनाओं को शब्दों में उतारते हुए लिखा, "दुख बीते सुख आये वाली बात मुझ पर चरितार्थ नहीं होती। मेरी जिंदगी में तो शोरगुल और भीड़ भड़क्का ही मुझे नसीब होना है। कर्तव्य की प्रबल अनुभूति ने मुझे इस व्यस्तता के आगे नतमस्तक होने को बाध्य किया है।" जहाज पर चढ़ते समय उनके नाम का गगन भेदी जयघोष उन्हें बेचैन कर देता था। स्टीमर पर चर्चा का विषय पुणे में किया गया समझौता था। एक प्रवासी ने डा. आंबेडकर की ओर संकेत करते हुए कहा, "यही है वह नौजवान नेता जो हिंदुस्तान के इतिहास के नये सफे लिख रहा है।" आंबेडकर तो सही मायने में इतिहास निर्माण कर रहे थे।

आंबेडकर को जहाज पर होने वाली चर्चाओं से ही यह अंदाज लग गया था कि कुछ ब्रिटिश अधिकारी और कूटनीतिज्ञों ने मिलकर यह षड्यंत्र रचा है कि केंद्रीय विधान मंडल में अस्पृश्यों को स्थान न मिल पाये। लेकिन पुणे के समझौते द्वारा उन्होंने इन लोगों की इस गुप्त योजना को ध्वस्त कर दिया है, इसका उन्हें संतोष था। वे अपने जहाज के प्रवास में गोलमेज परिषद की उपलब्ध रिपोर्टों, स्लोन्स द्वारा लिखे गए नेपोलियन चरित्र और गांधीजी द्वारा लिखे गए लेखों के प्रकाशन पढ़ने में व्यस्त रहते थे।

अस्पृश्यता निवारण के लिए स्थापित 'हरिजन सेवक संघ' के प्रमुख संचालक ठक्कर बाप्पा द्वारा प्रकाशित एक पत्र के मुंहतोड़ जवाब में[2] उन्होंने 14 नवंबर, 1932 को एक लंबी चिट्ठी लिखकर उन्हें अपने विचार सूचित किए। 'हरिजन सेवक संघ' को डा. आंबेडकर ने अस्पृश्योद्धार के लिए अनेक ठोस योजनाएं इस पत्र में प्रस्तुत की थीं। वे 18 नवंबर को लंदन पहुंचे। लंदन से उन्होंने 'जनता' अखबार के लिए 24 नवंबर, 1932 को एक पत्र लिखा। उसमें वैज्ञानिक प्रगति की भविष्यवाणी करते हुए उन्होंने लिखा था, "इंसान के दिमाग के लिए कोई बात नामुमकिन नहीं है। बहुत जल्द ऐसे जहाज भी बन जायेंगे जिनमें तूफान में भी स्थिर रहने की क्षमता होगी।" फिर अपने बारे में लिखा, "मुझे लोगों से ज्यादा किताबों से लगाव है।" इस प्रवास में उनकी जत रियासत के महाराज और उनके निजी सचिव श्री गोखले से मित्रता हो गयी थी।

17 नवंबर को लंदन में संयुक्त समिति की बैठक हुई। मुसलमानों की मांगें मंजूर हो जाने के बावजूद उन लोगों ने अपना एक अलग दल बनाए रखा। यह बात आंबेडकर

---

1. जनता : 10 दिसंबर, 1932
2. जनता : 3 दिसंबर, 1932

को पसंद नहीं आयी। मुसलमानों के नेता लोग पुराने ख्यालातों के और तंगदिल होने की वजह से उनके भरोसे रहना डा. आंबेडकर को खतरनाक लगा।

गोलमेज परिषद के तीसरे अधिवेशन का कार्यक्रम नियोजित रूप से संपन्न हुआ। डा. आंबेडकर ने 'व्यापार संरक्षण समिति' में कार्य किया था। 24 दिसंबर, 1932 के दिन परिषद का अधिवेशन समाप्त हुआ। उन्हें लगा कि मुसलमान नेताओं को भारतीय मसलों में दिलचस्पी नहीं है। डा. आंबेडकर जल्द ही वापिस रवाना हो गये। अपनी मुलाकात में उन्होंने यह सलाह दी कि ब्रिटिश सरकार रियासती हुक्मरानों की परवाह न करते हुए भारत को जवाबदेह शासन प्रणाली दे दे।

गांधीजी ने डा. आंबेडकर को यरवदा जेल आकर उनसे मिलने का आमंत्रण दिया। डा. आंबेडकर दिल्ली में वाइसराय के साथ की बैठक में भाग लेने के बाद 4 फरवरी को अपने साथियों के साथ यरवदा जेल में गांधीजी से मिले।

पुणे से लौटने पर आंबेडकर ने विधान सभा के अधिवेशन में भाग लिया और वे चर्चाओं में सम्मिलित हुए। ग्राम पंचायत बिल पर बोलते हुए उन्होंने कहा, "विधान सभा में मेरे अपने समाज के प्रतिनिधि भिजवाने का मुझे अधिकार होना चाहिए। जातीय प्रतिनिधित्व संविधान की शोभा बढ़ायेगा।"[1] उन्होंने अपने भाषण में यह आरोप भी लगाया, "कई बार अदालती निर्णयों में भी जातीय वृत्ति दिखाई देती है।"

सन् 1933 में रंगा अय्यर ने अस्पृश्यों के लिए मंदिर प्रवेश के मामले में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए मद्रास विधान सभा में एक बिल पेश किया। डा. आंबेडकर ने इस बिल का विरोध करते हुए कहा, "मंदिर प्रवेश जैसी छोटी सी बात पर अस्पृश्यों को अपनी शक्ति नहीं गंवानी चाहिए। उच्च शिक्षा, ऊंची नौकरियां और अपने विवाह के लिए सम्माननीय मार्ग अपनाने के लिए प्रयत्न करने से अस्पृश्यों की उन्नति होगी और साथ ही स्पृश्य लोगों का अस्पृश्य समाज की ओर देखने का दृष्टिकोण भी बदलेगा। मंदिर के दरवाजे खुलते हैं या नहीं खुलते, यह निजी सवाल आपके लिये है यदि इंसानियत की कीमत करना जानते हों तो मंदिर खोलकर मानवता दिखाओ।"

डा. आंबेडकर के पत्रक का उत्तर देते हुए महात्मा गांधी ने एक मुलाकात में कहा, "ऊंच और नीच की भावना का हिंदू धर्म में कोई स्थान नहीं है। फिर भी वर्णाश्रम हिंदू धर्म की जान होने की वजह से मैं उसका खात्मा नहीं करना चाहूंगा।"

डा. आंबेडकर के आंदोलन से सारे हिंदू समाज में हलचल मच गयी थी—वह चौंककर जागा था।

---

1. डा. आंबेडकर, रायटिंग्स एंड स्पीचेस : भाग 2, पृ. 113-115

मंदिर प्रवेश बिल के बारे में पत्रक प्रकाशित करने के बाद डा. आंबेडकर ने ठाणा जिले के कसारा शहर में एक सभा को संबोधित करते हुए कहा, "देव पूजा से ज्यादा जरूरी है पेट पूजा के लिए अन्न पाना। अन्य लोगों ने अपना स्वार्थ साधा, इसलिए हमारी यह दुर्दशा हुई है। भगवान भरोसे जीना मत सीखो, अपनी बाजुओं के बल पर अपना काम करना सीखो।" इसके बाद फरवरी, 1933 में मझगांव में भाषण करते हुए उन्होंने कहा, "तिलक की तरह हमें भी गैरों से गालियां और अपनों से गौरव मिलता है। मरे हुए जानवरों का मांस मत खाइए। इज्जत के साथ रहना सीखिए। जो संघर्ष करते हैं यश उनका ही वरण करता है।" कुछ दिनों बाद मुंबई में अपने सम्मान पत्र समारोह में उत्तर देते हुए उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा था, "दूसरे को अपना भगवान मानकर अपने उद्धार का भार उस पर डालना, यह ऐसी भावना है जो आप लोगों को कर्तव्य से विमुख करती है। पूजा अर्चना, जप तप की ओर से ध्यान हटाइये और राजनीति के दुधारू थनों को दुहिये। जो समाज चौकन्ना रहेगा, सतर्क, सुशिक्षित और स्वाभिमानी होगा उसी का सामर्थ्य भी बढ़ेगा।"[1]

अप्रैल माह के दूसरे सप्ताह में डा. आंबेडकर वसई तहसील के सोपारा ग्राम में आयोजित अस्पृश्यों की परिषद में उपस्थित थे। 12 अप्रैल को मुंबई के परेल इलाके में उनका सत्कार किया गया। उन्होंने अपने बारे में कहा, "मेरी इच्छा थी कि मैं जीवन भर विद्यार्थी बना रहूं, परंतु मुझे अस्पृश्यों के आंदोलन में भाग लेना पड़ा।"

विलायत जाने से पहले गांधीजी से मुलाकात करने के लिए डा. आंबेडकर पुणे गये। यरवदा जेल में दोनों की भेंट हुई। गांधीजी ने कहा, "सनातनी लोग मुझे राक्षस कहते हैं।" इस पर डा. आंबेडकर ने हंसते हुए पूछा, "आप उनसे इसके अलावा और क्या उम्मीद करते हैं ?" 23 अप्रैल को परेल में अस्पृश्यों की ओर से उन्हें सम्मानपत्र अर्पित किया गया। उस समय उन्होंने ताकीद की, "कोई भी गरीब अपनी मजदूरी या रोजी छोड़कर मुझे विदा करने न आये।" 24 अप्रैल को डा. आंबेडकर संयुक्त समिति का कार्य करने के लिए लंदन रवाना हुए। उस समय उनकी आंखें दुख रही थीं। वे 9 मई को लंदन पहुंचे।

लंदन में श्री ग. आ. गवई ने डा. आंबेडकर से तीन चार मुलाकातें कीं और धर्म परिवर्तन के विषय में उनके साथ बातचीत की। भारत लौटने पर गवई ने यह खबर फैलाई, "डा. आंबेडकर मुसलमान मजहब कबूल करने वाले है।" इस पर डा. आंबेडकर ने सफाई दी, "मैं हिंदू धर्म का अनुयायी नहीं रहूंगा, वैसे ही मैं इस्लाम मजहब

---

1. जनता : 11 मार्च, 1933

भी नहीं कबूल करूंगा। इन दिनों मेरा झुकाव बौद्ध धर्म की ओर है। मगर अपने समाज की योग्य व्यवस्था किए बिना मैं कुछ नहीं करूंगा।"[1]

लंदन में संयुक्त समिति के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें डा. मुंजे, हरीसिंग गौर, इत्यादि नेता उपस्थित थे। इस सम्मेलन में भाषण करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "स्पृश्य हिंदुओं के अमानवीय व्यवहार से निराश होकर मैंने स्वतंत्र मतदार संघ की मांग रखी थी। यदि हिंदू अपनी समाज व्यवस्था को बदल कर एक संघ बनाना चाहें तो इसमें हम अवश्य ही सहयोग देंगे।"

संयुक्त समिति का कार्यारंभ 3 अक्तूबर से हुआ। 23-24 अक्तूबर को सर विंस्टल चर्चिल के साथ हुई बहस में डा. आंबेडकर ने पार्लियामेंट में दिये गये उनके एक भाषण पर उनकी कड़ी आलोचना की। सेक्रेटरी आफ स्टेट के साथ हुई बहस में डा. आंबेडकर ने उनसे श्वेत पत्र पर संवैधानिक मामलों में, संवैधानिक बारीकियों के बारे में सवाल कर उस श्वेत पत्र में बहुत सी कमियों की ओर दिलाया। इस पर अचरज करते हुए सेक्रेटरी आफ स्टेट ने कहा, "डा. आंबेडकर की सूक्ष्म बुद्धि ही श्वेत पत्र की इन त्रुटियों को निकाल सकी।"[2] इसी अवसर पर डा. आंबेडकर ने अपराधशील जनजातियों को संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से कुछ उपाय भी सुझाए थे।

8 जनवरी को जब डा. आंबेडकर मुंबई लौटे तो उनके चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही थी। पत्रकारों को दी गयी मुलाकात में उन्होंने कहा, "प्राप्त सुधारों को स्वीकार कर हमें अधिक पाने के लिए संघर्ष करना चाहिए।" अपने भावी कार्यक्रम की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, "मैं इन दिनों 'आर्मी इन इंडिया' नामक ग्रंथ लिखने में संलग्न हूं। मुझे राजनीति में विशेष रुचि नहीं है।"[3]

---

1. मोटे, ह. चि. : विश्रब्ध शारदा, भाग 1, पृ. 431
2. डा. बाबासाहब आंबेडकर : रायटिंग्स एंड स्पीचेस, भाग 2, पृ. 787
3. डा. आंबेडकर का यह ग्रंथ कभी प्रकाशित नहीं हुआ। इसका भी पता नहीं चल पाया कि उसकी पांडुलिपि कहां है।

22

सारे समाज का रोष झेलते हुए र. रा. कर्वे ने यौन विषयों के स्वस्थ और निर्दोष प्रचार के लिए 'समाज स्वास्थ्य' नामक मासिक पत्र चलाया था। उसके गुजराती संस्करण 'समाज स्वास्थ्य प्रकाशन' के दिसंबर, 1933 के अंक में पत्र व्यवहार स्तंभ में दिये गये उत्तर 'ओरियेंटल ट्रांसलेटर' के पद पर काम करने वाले सरकारी अधिकारी को अश्लील लगे। इसलिए सरकार ने रघुनाथराव कर्वे पर मुकदमा दायर किया।

किसी भी पुरोगामी कार्य को सबल सहारा देने के लिए डा. आंबेडकर सदैव तत्पर रहते थे। उन्होंने रघुनाथराव कर्वे का वकालतनामा मंजूर किया। जिरह करते हुए उन्होंने कर्वे की तरफ से कई विचारणीय विषय अदालत के सामने रखे। उन्होंने सरकार बनाम कृष्ण पुराणिक के मुकदमे में न्यायमूर्ति बैचरल और राव द्वारा दिए गए अभिप्राय, ''अश्लीलता अर्थ पर अवलंबित न होकर भाषा पर अवलंबित होती है'', की ओर अदालत का ध्यान आकर्षित किया और यह प्रतिपादित किया कि इसलिए रघुनाथराव को दोष मुक्त किया जाये। लगातार बिना विश्राम किए डा. आंबेडकर काम में निरंतर लगे रहे। अब उन्हें आराम की निहायत जरूरत महसूस होने लगी। सन् 1934 में मार्च से मई मास तक उन्होंने बोर्डी, महाबलेश्वर, पन्हालगढ़ जैसे पहाड़ी स्थानों में जाकर आराम किया। साथ ही वे आयुर्वेदिक औषधोपचार भी करवाते रहे। इस विश्राम के बाद उन्होंने वकालत करना फिर शुरू किया। उन्होंने मुंबई विधि महाविद्यालय में कुछ समय पढ़ाने का कार्य भी किया।

डा. आंबेडकर के पास ग्रंथों का संग्रह इतना विशाल हो गया था कि उसे व्यवस्थित रखना आवश्यक हो गया। इन्हीं दिनों उन्होंने दादर में एक बहुत बड़ा मकान बनवाया। इस घर के निर्माण के समय उन्होंने वास्तुशास्त्र के अनेकों ग्रंथों का अध्ययन किया और बार बार घर के बने बनाए हुए कुछ हिस्सों को गिरवाकर दुबारा बदल कर निर्माण कार्य करवाया। आंबेडकर का घर एक बहुत बड़े ग्रंथालय के समान लगता था। उन्होंने अपने इस भवन का नाम 'राजगृह' रखा। भगवान बुद्ध के समय में राजा बिंबसार की राजधानी का नाम भी राजगृह था। भगवान बुद्ध इस नगर की सीमा में विचरण कर उपदेश देते थे और निवास करते थे।

सन् 1934 के मध्य में सरकार ने कांग्रेस पर लगा प्रतिबंध हटा लिया। गांधीजी ने पुणे में किये गये समझौते पर अपना पूरा विश्वास व्यक्त किया। श्री ग. आ. गवई ने यह राय दी कि कांग्रेस को आंबेडकर के विरोध में अपने उम्मीदवार खड़े करने चाहिए। मगर गांधी ने उसे अस्वीकार कर दिया। डा. आंबेडकर ने गांधीजी की इस नीति को अपना समर्थन दिया।

संयुक्त समिति का विवरण प्रकार्शित हुआ। बाबासाहब ने उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। उन्होंने कहा, "यह विवरण बहुत ही प्रतिगामी है। इससे भारत की प्रगति में बहुत बड़ी अड़चन पैदा होगी।" उन्होंने यह भी कहा, "विधान सभा के साथ विधान परिषद रखने की कोई आवश्यकता नहीं है।" इन दिनों बाबासाहब की पत्नी रमाबाई की तबियत ज्यादा खराब हो गई थी। उसकी ओर ध्यान देने की उन्हें पिछले दस बरसों से फुरसत ही नहीं मिली थी।

27 मई, 1935 के दिन दिल दहला देने वाली यह दुखद घटना घटी। उनकी पत्नी सौ. रमाबाई का दादर में निधन हो गया। रमाबाई ने बहुत छोटी उम्र से ही घर गृहस्थी चलाने की जिम्मेदारी निभाई थी। अपनी गृहस्थी को उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ, बड़ी सूझ और समझदारी से, बिना लड़खड़ाए चलाया। डा. आंबेडकर के कार्यों को सफलता मिले, इसके लिए वे हर तरह का त्याग करने के लिए सदैव तैयार रहतीं। आगंतुकों से आदरपूर्वक बातचीत कर, उनकी खुशखबरी ले, उनका यथोचित आतिथ्य कर, वे सबका सम्मान करतीं और सबके काम आतीं। दस बारह विद्यार्थियों को तो रमाबाई अपने घर नित्य भोजन कराती थीं। 'पुणे समझौते' के समय तो उनकी हिम्मत सराहनीय थी। डा. आंबेडकर तो पुणे में सवर्ण नेताओं के साथ चर्चा में व्यस्त थे, मगर यहां रमाबाई को अनेक गुंडों का उपद्रव सहना पड़ता था। कई लोगों ने तो यह तय कर रखा था कि जब कभी रमाबाई बाजार करने बाहर निकलें तो उन पर टूट पड़ें। फिर भी उन्होंने बड़ी हिम्मत के साथ अपने सब काम जारी रखे। वे स्वाभिमानी स्वभाव की थीं। उनकी घर गृहस्थी में हर चीज व्यवस्थित और हर बात अनुशासित होती थी।

रमाबाई की मृत्यु से डा. आंबेडकर को इतना भीषण आघात लगा कि उन्होंने कुछ दिनों के लिए राजनीति से संन्यास लेने की ठानी। इतना ही नहीं, वे संन्यासी की तरह सिर मुंडवा कर, गेरुए वस्त्र धारण कर विचरण करने लगे थे।

रमाबाई की अंतिम यात्रा में दस हजार से अधिक गरीब अमीर, नर नारी, आबाल वृद्ध हार्दिक संवेदनाएं प्रकट करने शामिल हुए थे। श्मशान भूमि से लौटने पर लगभग एक हफ्ते तक डा. आंबेडकर ने अपने आपको कमरे में बंद रखा और वे बार बार हुलक हुलक कर रोते, बिलख पड़ते थे। यह शोक सागर कुछ शांत होने के बाद ही डा. साहब सार्वजनिक कामों में भाग ले पाये।

लॉ कालेज में पढ़ाते समय उनके बारे में कहा जाता था कि अगर वे यहां शिक्षा देते रहे तो उनके विचारों से कालेज के विद्यार्थी विप्लवी हो जायेंगे और कालेज की दीवारें ढह जायेंगी। उन दिनों सर जान न्यूमान्ट बंबई हाइकोर्ट के प्रमुख न्यायाधीश थे। शुरू शुरू में उनकी राय डा. आंबेडकर के विरुद्ध थी। लेकिन क्रिमिनल अपील के मामलों में उनका बेहतरीन काम देखकर मुख्य न्यायाधीश उनसे बेहद खुश हो गये और उनकी बहुत इज्जत करने लगे। कभी कभी वे डा. आंबेडकर को चाय पर भी आमंत्रित करते थे। इतना ही नहीं, मुख्य न्यायाधीश पर डा. आंबेडकर का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हें लॉ कालेज के प्राचार्य पद पर आसीन करने में उन्हें गर्व का अनुभव हुआ।[1]

विधि महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में उनकी नियुक्ति सरकार ने 2 जून, 1935 को की। उन दिनों इस ओहदे को उच्च न्यायालय न्यायाधीश पद आसीन कराने वाली एक सीढ़ी माना जाता था। सन् 1935 के जुलाई मास में यह खबर फैली कि डा. आंबेडकर न्यायाधीश पद पर आसीन होंगे, अन्यथा नये विधानमंडल में मंत्री पद ग्रहण करेंगे। उन्हें यह आश्वासन भी दिया गया था कि यदि वे जिला न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति स्वीकार करते हैं तो उन्हें हाइकोर्ट में न्यायमूर्ति के पद पद पदोन्नति प्रदान की जायेगी। एक बार स्वयं उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि वे राजनीति से निवृत्त हो जायेंगे।

उन्हीं दिनों जब वे 'चवदार' तालाब के मुकदमे के सिलसिले में महाड जा रहे थे, तो अचानक नदी में बाढ़ आ जाने के कारण उन्हें मार्ग में ही रुक जाना पड़ा। आसपास अस्पृश्यों के मकान नहीं थे। इसलिए बाढ़ उतर जाने तक उन्हें वहां बिना अन्न जल के रहना पड़ा। किसी भी हिंदू परिवार ने उन्हें खाने पीने को कुछ नहीं दिया। अपमान की आग में झुलस कर वे मुंबई लौटे और अपने आपको कमरे में बंद कर खूब रोये। नासिक के पास एक गांव में अस्पृश्य लोग मुसलमान मजहब कबूल करने वाले थे, मगर उन्होंने उन्हें यही राय दी कि वे अभी जल्दबाजी न करें।

---

1. जोकिम अल्वा : मैन एंड सुपरमैन आफ हिंदुस्तान : ठक्कर एंड कंपनी, मुंबई, पृ. 1943

23

अक्तूबर के महीने में, अस्पृश्यों का एक सम्मेलन येवला शहर में आयोजित किया गया। इसका उद्देश्य वर्तमान राजनैतिक ओर सामाजिक परिस्थितियों का पुनरावलोकन करना था। नासिक पहुंचने पर वहां के मेघवाल गुजराती भंगी समाज ने उन्हें आदर से जलपान करवाया। वहां अस्पृश्य समाज की भिन्न भिन्न जातियों का सहभोज भी हुआ। येवला पहुंचने पर वहां की नगरपालिका की ओर से उनका सत्कार किया गया।

13 अक्तूबर, 1935 के निर्धारित दिन यह ऐतिहासिक सम्मेलन प्रारंभ हुआ। डा. आंबेडकर ने लगभग डेढ़ घंटे तक भाषण दिया। इस सम्मेलन में दस हजार लोग उपस्थित थे।

दस साल से चल रहे अपने आंदोलन का सिंहावलोकन करना, मांटेग्यु चेम्स फोर्ड सुधार के संबंध में अपनी नीति तय करना—इन दो उद्देश्यों को लेकर सम्मेलन का यह अधिवेशन हो रहा था। डा. आंबेडकर ने सम्मेलन में अत्यंत प्रभावशाली भाषण दिया। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्र में अस्पृश्यों को कैसे अत्याचार और अन्याय सहन करने पड़ रहे हैं, इसका उन्होंने बहुत ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया। उन्होंने यह भी समझाया कि कालाराम मंदिर में प्रवेश पाने के लिए सत्याग्रह कर हमने किस तरह अपनी शक्ति और समय व्यर्थ ही व्यय किया है। उन्होंने सत्याग्रह बंद करने की घोषणा की और प्रमाणों सहित यह समझाया कि हिंदू धर्मावलंबी होने के कारण ही हमारी यह दशा है। उन्होंने वहां प्रतिज्ञा ली, "मैं हिंदू धर्म में पैदा हुआ क्योंकि यह मेरे हाथ की बात नहीं थी, मगर मैं हिंदू धर्मावलंबी रहकर नहीं मरूंगा।" सर्वसम्मति से इसी आशय का प्रस्ताव पास किया गया कि अस्पृश्य समाज हिंदू धर्म का त्याग कर ऐसा धर्म अपनाए जिसमें सामाजिक और धार्मिक समता हो। संसार में अत्यंत बलवान माने जाने वाले हैदराबाद के निजाम ने अस्पृश्य समाज के लिए—यदि वह इस्लामी मजहब कबूल फरमाता है तो, पांच करोड़ रुपयों का इंतजाम कर रखा था।

ईसाई धर्म गुरुओं ने जरा अलग ही भूमिका अपनाई थी। मुंबई के मेथोडिस्ट एपिस्कोपल चर्च के बिशप ब्रैडले ने कहा कि बिना हृदय परिवर्तन के धर्म परिवर्तन

करना उचित नहीं है। फिर भी यदि दलित समाज उच्च स्तर का जीवन जीना चाहता हो तो ईसाई धर्म उनका स्वागत करेगा। बिशप जे. डब्ल्यू पिकेट और ईस्ट स्टेन्ले जोन्स, दोनों अनेक बार बाबासाहब से मिले और उनसे निवेदन किया कि ईसाई धर्म स्वीकार करने की बात अवश्य सोचें।

गाडफ्रे, ई. फिलिप्स ने जुलाई 1936 में 'दि अनटचेबल्स क्वेस्ट' नामक पुस्तक लिखी। इसमें इस विषय पर विशद चर्चा की गई है कि अस्पृश्य समाज के धर्म परिवर्तन के लिए ईसाई मिशनरियों को क्या करना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह भी लिखा कि डा. आंबेडकर ने प्रकट रूप में ईसाई धर्म को बढ़ावा नहीं दिया है।

डा. स्टेन्ले जोन्स के साथ हुई अपनी चर्चा का उल्लेख करते हुए डा. फिलिप्स लिखते हैं[1]—"डा. आंबेडकर ने जोन्स से कहा, 'यदि ईसाई धर्म के लोगों ने जाति भेद नष्ट किया होता तो हम ईसाई धर्म की ओर अवश्य मुड़ जाते। किंतु यह संभव नहीं है। डा. आंबेडकर के ये उद्गार डंक की तरह वेदनादायक हैं लेकिन बात सच है।" ईसाई धर्म में जातीयवाद कैसे घर कर गया, इसका सविस्तार इतिहास डा. आंबेडकर ने अपने अप्रसिद्ध निबंध "क्रिश्चनाइजिंग द अनटचेबल्स एंड कंडीशन आफ द कन्वर्ट" में विस्तार से लिखा है।[2]

सिख धर्मावलंबियों के स्वर्ण मंदिर के उपाध्यक्ष ने भी डा. आंबेडकर को तार द्वारा सूचित किया कि "सिख धर्म एक ही ईश्वरवाद को मानता है और इसमें सबके साथ एक जैसा सलूक है।"[3] तब डा. आंबेडकर ने उन्हें यह जवाब दिया था, "मैं सिख धर्म के बारे में विचार कर रहा हूं।"[4] वे सिख धर्म के एक गुरुवाणी भजन कार्यक्रम में भी 13 जनवरी, 1936 को उपस्थित थे। वे 1936 के अप्रैल मास के मध्य में सिख मिशन परिषद में भी सम्मिलित हुए थे। बौद्ध धर्मावलंबी लंका निवासी भिक्कू लोकनाथ ने 10 जून, 1936 के दिन बाबासाहब आंबेडकर से भेंट कर बौद्ध धर्म स्वीकार करने का अनुरोध किया था।

उनकी यह राय थी कि यदि डा. आंबेडकर और अस्पृश्य समाज ने 1934 में बौद्ध धर्म को स्वीकार किया होता तो ब्रह्मदेश भारत से विलग न होता।

---

1. डा. गाडफ्रे, ई. फिलिप्स : दि अनटचेबल्स क्वेस्ट, (दि लिविंग्स्टन प्रेस, 42 ब्रॉडवे वेस्ट मिनिस्ट, लंदन, एस. डब्ल्यू, 1-1936), पृ. 88
2. यह निबंध, महाराष्ट्र शासन की ओर से प्रकाशित होने वाली श्रृंखला 'डा. आंबेडकर : रायटिंग्स एंड स्पीचेस', भाग 5 में समाविष्ट किया गया है।
3. कीर : पृ. 254
4. वही : पृ. 258

येवला परिषद के बाद बौद्ध भिक्षुओं का एक सम्मेलन कलकत्ता में हुआ था। उसमें सम्मिलित बर्मा, स्याम, तिब्बत और चीन देशों के प्रतिनिधियों ने डा. आंबेडकर के निर्णय पर तार द्वारा बधाई संदेश भिजवाए थे।

डा. आंबेडकर की धर्म परिवर्तन करने की घोषणा ने हिंदू समाज में एक तहलका मचा दिया।

शंकराचार्य, डा. कुर्तकोटी और डा. मुंजे जैसे हिंदू धर्म के इन नेताओं ने यह रुख अपनाया कि यदि डा. आंबेडकर सिख धर्म को स्वीकार करते हैं तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। धर्म परिवर्तन के बारे में कांग्रेस के सारे नेतागणों और गांधीजी ने घोर विरोध किया। महात्मा गांधी ने लिखा, "अस्पृश्यता आखिरी सांसें गिन रही है। डा. आंबेडकर जैसे विद्वान, उच्च शिक्षाविद् युवक का कविठा और अन्य स्थानों में हुए अत्याचारों के कारण क्रोधित होना स्वाभाविक है। धर्म किसी घर या परिधान के समान नहीं है, जो जब चाहे बदला जा सके।" महात्मा गांधी का निवेदन पढ़कर डा. आंबेडकर ने कहा, "हमने अभी यह तय नहीं किया है कि हम किस धर्म को स्वीकार करेंगे। लेकिन सब तरफ से सोच विचार करने पर हमें यकीन हो गया है कि हिंदू धर्म हमारी तरक्की में किसी तरह बढ़ावा नहीं दे सकता। वह हमारी उन्नति का पोषक नहीं है। इस धर्म की नींव ही विषमता पर टिकी है। हम गांधीजी की इस राय से सहमत हैं कि हर एक व्यक्ति को धर्म की आवश्यकता है। लेकिन अपने पूर्वजों की तरह मैं यह बिल्कुल मानने के लिए तैयार नहीं हूं कि उस धर्म से हर हालत में संबद्ध रहा जाये जो न मन को जंचता है और न ही विकास में सहायक होता है।"

अस्पृश्यों के धर्मांतरण का जैसे सवर्ण हिंदू विरोध कर रहे थे, उसी तरह कई अस्पृश्य जातियां जैसे महार, मांग, मोची समाज के नेतागण भी अपना विरोध प्रकट कर रहे थे।

डा. आंबेडकर को धर्म परिवर्तन से परावृत्त करने के लिए मुंबई हिंदू महासभा की कार्यकारिणी समिति की तुरंत बैठक बुलाई गई। उस बैठक में इस विषय पर एक प्रस्ताव भी पारित किया गया। उसके बाद 24 अक्तूबर, 1935 के दिन मो. वा. वेलकर के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल[1] डा. आंबेडकर से मिलने भी गया। उस समय डा. आंबेडकर विश्वविद्यालय के पर्चों की जांच कर रहे थे। उन्होंने शिष्टमंडल से विचार विनिमय किया और दृढ़ता से कहा, "अस्पृश्यों के लिए धर्म परिवर्तन के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है।" उन्होंने कहा, "मैंने धर्म परितर्वन करने का उन्हें जो उपदेश दिया है वह केवल उनके कल्याण की दृष्टि से ही।"

---

1. निर्भीड : 3-11-1935

धर्म परिवर्तन से देश की कोई हानि नहीं होगी, इस बारे में भरोसा दिलाते हुए उन्होंने कहा, "मेरे कर्तव्य के तीन उद्देश्य हैं : पहला है देश, दूसरा अस्पृश्य समाज और उसके बाद आता है हिंदू समाज।" बातचीत का समापन करते हुए उन्होंने कहा, "वैयक्तिक धर्म परिवर्तन में न कोई लाभ है, न कल्याण ही। जब धर्म परिवर्तन करने का अवसर आयेगा, मै सारे हिंदू नेतागणों से विचार विमर्श करूंगा। हम जो भी करेंगे एक शूरवीर सैनिक की तरह सम्मान से करेंगे।" डा. आंबेडकर के इस आश्वासन से शिष्टमंडल के सभी सदस्य संतुष्ट होकर वहां से लौटे।

महाराष्ट्र में शुद्धि संगठन कार्य के अगुआ विनायक महाराज मसूरकर दूसरे धर्म में गए हुए हिंदू लोगों का शुद्धीकरण कर उन्हें दुबारा हिंदू धर्म की दीक्षा देते थे। नवंबर महीने के पहले सप्ताह में महाराज स्वयं बाबासाहब आंबेडकर से मिलने पधारे। उस समय वसई गांव में डा. आंबेडकर का सम्मान समारोह समाप्त हो चुका था। उसके बाद शाम सात बजे मालवणकर की हवेली में मसूरकर महाराज अपने 15-20 सहयोगियों के साथ डा. आंबेडकर से मिले। यह मुलाकात लगभग तीन घंटे चलती रही।[1]

महाराज ने कहा, "यदि हिंदुस्तान में हिंदू ही नहीं रहा तो इस देश का नाम हिंदुस्तान नहीं रह सकेगा।"

बाबासाहब ने उत्तर दिया, "आपकी तरह हमें भी खेद है। लेकिन इसके कारणों का निवारण करना तो आपके हाथ में है। इसके लिए आपको पंचवर्षीय योजना चलानी होगी।" अपनी यह राय देकर डा. आंबेडकर ने उसके लिए आवश्यक मार्ग की चर्चा करते हुए कहा, "मेरी राय में हिंदू समाज की चार वर्णों वाली व्यवस्था को समाप्त कर एक वर्णीय व्यवस्था कायम करनी होगी। हिंदू महासभा के पुणे में होने वाले अधिवेशन में आप यह प्रस्ताव पास करवा लें कि जन्म से जाति निर्धारित न हो।"

महाराज हिंदू समाज की वर्ण व्यवस्था समाप्त करने के लिए राजी नहीं हुए, तब डा. आंबेडकर ने उन्हें एक और सुझाव दिया। उन्होंने कहा, "तो आप एक बहुत ही सरल, सुंदर और सहज बात कर सकते हैं। जरा सी बात है, बस कर दिखाइए। हमारे श्री के. के. सकट[2] को बस एक साल के लिए शंकराचार्य की गद्दी पर बैठा दीजिए और यह व्यवस्था कीजिए कि पुणे के एक सौ चितपावन ब्राह्मण परिवारों के सदस्य उनके पांव पखारें। आप यदि इतनी छोटी सी बात करवा सकें तो हम उसे आपके मन में समानता के लिए उमड़ी हुई आस्था का प्रतीक मान लेंगे और धर्म परिवर्तन का अपना निर्णय स्थगित कर देंगे।"

---

1. वही : 10 नवंबर, 1935
2. तत्कालीन मातंग समाज के अपृस्श्य नेता

उन्होंने इसके लिए श्री सकट का नाम क्यों सुझाया, इस बारे में स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा, "वे माटे गुरुजी के प्रमुख शिष्य हैं। साथ ही 'केसरी दल' ने उन्हें अस्पृश्यों का एकमेव नेता घोषित किया है। मैं उनके इस दावे का विरोधी हूं, फिर भी मैं और मेरे सारे सहयोगी उनकी पांव पूजा करने के लिए तैयार हैं।" डा. साहब की ये सारी बातें सुनकर महाराज ने उनसे अनुरोध किया कि वे समस्त हिंदू जाति के कार्य का भार संभालें। साथ ही उन्होंने डा. आंबेडकर के सुझाव अपने लोगों तक पहुंचाने का भरोसा दिलाया। यह चर्चा बहुत ही मिलनसार माहौल में हुई और महाराज ने उनसे विदा ली। इसके बाद महाराज और उनके सहयोगियों तथा शिष्यों ने श्री सकट को शंकराचार्य का पद देने के लिए कौन से प्रयास किए, इसका कुछ अता पता नहीं चला।

अपने एक लेख में चमारों के नेता ढेवरुखकर ने स्पष्ट घोषणा की, "मेरे समाज के बंधुओं ने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने का निर्णय लिया है।"

नासिक में एक आम सभा में श्री रा. ग. प्रधान के नेतृत्व में हिंदुओं के एक शिष्टमंडल ने डा. आंबेडकर से भेंट की। वहां उन्होंने सरेआम कहा, "आज की पीढ़ी रानाडे, गोखले व तिलक के समान ध्येयनिष्ठ न होने से हम सब बहुत निराश हैं।"

इन्हीं दिनों पीर जमात अली डा. आंबेडकर से मिले। उस मुलाकात के बाद उन्होंने यह अफवाह फैली दी कि डा. आंबेडकर इस्लाम मजहब मंजूर करने वाले हैं। डा. आंबेडकर ने फौरन इस अफवाह का खंडन किया।

केवल भालाकार भोपटकर ने यह कहा, "अगर डा. आंबेडकर हिंदू धर्म छोड़ रहे हैं तो यह अच्छा ही है।"

8 दिसंबर, 1935 को मुंबई के फरासरोड इलाके में डा. आंबेडकर ने धर्म परिवर्तन के बारे में पहला महत्वपूर्ण भाषण दिया। उस स्थान पर दत्त जयंती का उत्सव हो रहा था। हजारों की संख्या में भक्तजन वहां उपस्थित थे। वहां भाषण देते हुए उन्होंने कहा, "थोड़ी थोड़ी संख्या में बिखर कर पराए धर्म का स्वीकार करने में आप लोगों का अहित होगा। धर्म बदलने का मेरा दृढ़ निश्चय है। अस्पृश्यता हिंदू धर्म में छूत की बीमारी की तरह लगी हुई है। इसलिए हमें ऐसे धर्म से अलिप्त रहना चाहिए।" डा. आंबेडकर ने अस्पृश्यों की दारुण परिस्थिति का हृदय विदारक वर्णन किया और श्रोताओं का मन जीत लिया। उन्होंने अपने श्रोताओं को लगभग दो घंटों तक स्तब्ध रखा। डा. आंबेडकर के इस भाषण से, लोकमान्य तिलक के भाषणों के तत्कालीन संवाददाता अनंत हरि गद्रे इतने प्रभावित हुए थे कि उनके उद्‌गार थे, "आंबेडकर को अपना इस तरह का

झकझोर देने वाला उत्तेजक भाषण, अस्पृश्यों से भी मरियल मन वाले स्पृश्यों को भी सुनाना चाहिए। जो कोई यह समझता हो कि उनके भाषण को कोई महत्व ही नहीं देना चाहिए, मैं समझता हूं, वह अपनी और हिंदू समाज की आंखों में धूल झोंक रहा है। उसके भुलावे में नहीं आना चाहिए। मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूं कि मुझे उनका यह भाषण सुनने का अवसर मिला।"[1]

1. निर्भीड : 15 दिसंबर, 1935

24

महाड़ के स्नेही समाज के आग्रह पर डा. आंबेडकर 25 दिसंबर, 1935 को मुंबई से महाड़ के लिए रवाना हुए।[1] सुबह जब धरमतर पर जहाज किनारे लगा तो पेण तहसील के अस्पृश्य समाज ने वहां उनका स्वागत किया। वे वहां से मोटर द्वारा महाड़ के लिए रवाना हुए। रास्ते में जगह जगह उनका स्वागत किया गया। महाड़ से तीन मील पहले सव नामक गांव में वहां के इनामदार माननीय बापूसाहब टिपणीस ने उन्हें पुष्पहार से सम्मानित किया। उनके अनुरोध पर डा. साहब उनके बंगले में कुछ समय के लिए रुके। समाचार पाकर अस्पृश्यों के झुंड के झुंड सव ग्राम के समुद्र किनारे जमा हो गये।

सुरेन्द्रनाथ टिपणीस के साथ बाबासाहब फिर महाड़ पधारे। उस समय टिपणीस के बंगले पर सैकड़ों अस्पृश्य जमा हो गये थे। वहां भोजन करने के बाद ठहरने के लिए बाबासाहब सव ग्राम आये। यह खबर पाते ही सव ग्राम में टिपणीस की हवेली के सामने अस्पृश्य समाज ने सुंदर मंच बनाया। इस मंडप में बाबासाहब के दर्शनों के लिए रात ग्यारह बजे तक लोगों की कतार लगी हुई थी।

माननीय टिपणीस के नारियलों के पेड़ों के रमणीय उपवन में गरम पानी के अनेक झरने थे। उन तीन झरनों के आसपास सुंदर कुंड हैं। झरनों के इन कुंडों में केवल स्पृश्य समाज के ही नहाने की परिपाटी थी। किंतु दूसरे दिन प्रातकाल इन कुंडों के स्वामी श्री टिपणीस महोदय ने बाबासाहब से इन कुंडों में नहाने का अनुरोध किया। बाबासाहब ने वहां स्नान कर केवल स्पृश्यों के उपयोग की इस प्रथा को समाप्त किया।[2]

27 दिसंबर से तीन दिनों तक बाबासाहब कुलाबा तथा रत्नागिरी जिले के जमींदारों के विरुद्ध उनके क्षेत्र में काम करने वाले किसानों की शिकायतें सुनते रहे। जमींदार की जमीन पर काश्तकारी करने वाले ये परिवार मराठा और महार जाति के थे। ये सब जमींदार के जुल्मों के एक जैसे शिकार होने की वजह से

---

1. निर्भीड : 12 जनवरी, 1936
2. वही : 12 जनवरी, 1936

जाति भेद को भूलकर एक जगह जमा होकर बाबासाहब को अपनी शिकायतें सुनाते रहे।

30 दिसंबर को सुबह सव ग्राम की महारों की बस्ती में बाबासाहब का शानदार स्वागत हुआ। वहां से वे महाड़ के सुरबा टिपणीस के यहां निवास करने गये। दोपहर के दो बजे उन्होंने महाड़ के छात्रावास को देखा। बाद में तीन बजे पांच हजार जनसमूह के सामने उनका भाषण हुआ।[1] महिलाओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "अगर आदमी गलती कर रहा हो तो औरतों को उसके विरुद्ध विद्रोह करना चाहिए। सारे समाज की प्रतिष्ठा, प्रगति और कीर्ति नारियों के हाथ में होती है। हर एक अलग अलग धर्म परिवर्तन न करे। हम सबका सामूहिक निर्णय होने तक कोई भी धर्मांतर न करे।"

उसी दिन शाम को रायगढ़ जिले के कोड़ोसे नामक गांव में दूसरी विशाल सभा हुई। वहां भाषण करते हुए उन्होंने कहा, "महत्वाकांक्षा और आशावाद को अंगीकार करने से ऊंची स्थिति को पहुंचा जा सकता है। जिसने अपने दिल में उम्मीद, उमंग और ख्वाहिश की लौ लगा ली है, वह हमेशा जिंदादिल रहता है। अपने चरित्र को बढ़ाना, उसका संवर्धन करना, जीवन का परम कर्तव्य है। उसका पूरी तरह विकास कीजिए। उसे उज्जवल बनाइए। पुरानी रूढ़ियों और रिवाजों को दफना दो। नयी कलम से नया सबक लिखो। हमेशा आशावान बने रहो। मेहनत और कुर्बानी से ही फर्ज पूरा होता है। इंसान की भली प्रथाओं से ही राष्ट्र और समाज बलवान और भाग्यशाली होते हैं।" इन हितोपदेशों के साथ उन्होंने लोगों को आश्वस्त किया, "उनके भाग्योदय का समय समीप आ गया है।"

अपना भाषण समाप्त कर डा. आंबेडकर सुरेन्द्रनाथ टिपणीस के साथ उनके घर पधारे। रात में टिपणीस के दीवानखाने में महाड़ के नगरसेठ श्री देवचंद गांधी ने उनसे मुलाकात की जिसमें धर्म परिवर्तन के बारे में डा. आंबेडकर से चर्चा की।

31 दिसंबर, 1935 के दिन डा. आंबेडकर, प्रतापगढ़ किले की तलहटी में बसे पोलादपुर गांव के लिए रवाना हुए। रास्ते में लोगों ने अपने अपने गांव की सीमा पर उनकी मोटर रोककर उन्हें मालाएं पहनाईं। सुहागन नारियों ने उनकी आरती उतारकर उन पर मंगल भावनाओं से भरी अनंत वर्षा की।

पोलादपुर के पास प्रतापगढ़ इलाके के हजारों अस्पृश्य बांधवों ने जयघोष के निनाद से उनका स्वागत किया। वहां बाबासाहब अनंतराव चित्रे के घर ठहरे। वहां उनसे मिलने

1. निर्भीड : 12 जनवरी, 1936

के लिए जनसमुदाय एकत्रित हुआ था। सबसे मिलजुल कर, उनकी खुशखबरी ले, डा. साहब ने उन्हें संबोधित किया। रात्रि के समय पोलादपुर के महारों की बस्ती में उनका भाषण हुआ। उसके बाद वे अपने सेक्रेटरी श्री कमलाकांत चित्रे के घर गये। फिर चांदनी रात के शीतल प्रकाश में अनंतराव चित्रे ने अपने बगीचे में डा. आंबेडकर और उनके स्पृश्य तथा अस्पृश्य साथियों को शानदान दावत दी। 1 जनवरी, 1936 को डा. आंबेडकर अपना आगे का दौरा स्थगित कर पोलादपुर से महाड़ होते हुए मुंबई लौट आये।

25

29 दिसंबर, 1935 के दिन पुणे में हिंदू महासभा का अधिवेशन संपन्न हुआ। इस अधिवेशन में उन्होंने यह प्रस्ताव पारित किया कि हिंदू धर्म जन्मजात अस्पृश्यता को स्वीकार नहीं करता।

सन् 1929 में हिंदू सभा के कार्यकर्ताओं ने 'हिंदू संघ' नामक संगठन की स्थापना की थी। इस संस्था की सलाहकार समिति में बैरिस्टर सावरकर, डा. जयकर, केशवराव जेधे, अनंतहरि गद्रे के साथ ही डा. आंबेडकर भी सम्मिलित थे।[1]

धर्म परिवर्तन की घोषणा करने के बाद इस बारे में समाज के सभी वर्गों की ओर से अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं प्रकट हुई थीं। वेदशास्त्र संपन्न पंडित सातवडेकर ने एक बहुत विस्तृत लेख लिखा था।[2] उसका शीर्षक था : "डा. आंबेडकर का कर्तव्य।" इस लेख में उन्होंने डा. आंबेडकर तथा उनके साथियों को धर्म परिवर्तन न करने की सलाह दी थी। उन्होंने यह ओछी बात भी लिखी, "डा. आंबेडकर ने महार जाति में जन्म लेने के कारण ही आज इतना महत्व पाया है। यदि इनका जन्म किसी ऊंची जाति में हुआ होता तो उन्हें इतना महत्व नहीं मिल पाता। जब तक अस्पृश्य समाज को यह घोषणा करनी चाहिए कि हम हिंदू ही रहेंगे, इसी में उनका हित निहित है।" उनकी यह बात निंदनीय थी।

इस लेख का उत्तर देते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "यद्यपि मैं महार जाति का हूं, फिर भी मुझे जो महानता मिली है, वह मेरी विद्वता के कारण है और यदि मैं धर्म परिवर्तन कर लेता हूं तो भी मेरी विद्वता तो नष्ट होने से रही।"

उन्होंने यह भी कहा, "मेरा धर्म परिवर्तन का निश्चय अटल है।" विचारों की बहस और तर्कवाद में डा. आंबेडकर के लेखों से लाजवाब दलीलों और वकीली बहसबाजी की कुशलता झलकती है।

जनवरी 1936 में पुणे शहर में धर्म परिवर्तन के निर्णय पर गहराई से विचार करने

---

1. निर्भीड : 12 जनवरी, 1936
2. पुरुषार्थ : नवंबर, 1935

के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इस अखिल महाराष्ट्र युवक परिषद में डा. आंबेडकर ने चेतावनी देते हुए कहा, “अब अगर भगवान भी स्वयं अवतरित हो जायें तो भी अस्पृश्य समाज धर्म परिवर्तन के निश्चय से विचलित नहीं होगा। मैं आप सबको अपनी पतित अवस्था से ऊपर उठाने का प्रयास कर रहा हूं। इसमें मेरा कोई निजी हित नहीं है। आप लोगों को अपना दायित्व संभालना होगा और अगर आप लोग मेरे बताये गये मार्ग का अनुसरण करेंगे तो आप लोगों का उद्धार ही होगा।” इस सम्मेलन में किस धर्म को स्वीकार किया जाय, इस विषय पर निर्णय करने का संपूर्ण अधिकार डा. आंबेडकर को सौंप दिया गया। डा. आंबेडकर के आसपास एक वलय का निर्माण होने लगा। इस महत्ता के कारण एक कार्यकर्ता ने घोषणा की, “अस्पृश्यों को वेद नहीं चाहिए, गीता नहीं चाहिए, शंकराचार्य नहीं चाहिए, उन्हें किसी देवदूत की भी आवश्यकता नहीं है। उन्हें तो बस आंबेडकर चाहिए।” डा. आंबेडकर ने साफ साफ सचेत किया, “अपने उद्धार के लिए आपको संघर्ष करना होगा। धर्म परितर्वन से आप लोगों का कल्याण ही होगा। लेकिन इक्के दुक्के धर्म बदलने से बात नहीं बनेगी।”

इस सम्मेलन के दौरान डा. आंबेडकर पुणे के सिख समाज के भजन कीर्तन के कार्यक्रम में भी सम्मिलित हुए। सिख नेताओं ने उन्हें अपनी ओर से रिझाने का बहुत प्रयास किया कि वे सोलंकी सहित सिख धर्म को स्वीकार कर लें। इसी सप्ताह में दो मुस्लिम डेलीगेशन भी उनसे मिले और उन्होंने डा. आंबेडकर से इस्लाम मजहब को मान लेने की गुजारिश की।

भले ही धर्म परिवर्तन के महत्वपूर्ण सवाल पर डा. आंबेडकर व्यस्त थे, फिर भी अन्य कार्यों की ओर वे पूरा ध्यान देते थे। कुलाबा जिले के चरी गांव में एक किसान सभा के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए उन्होंने ललकार कर कहा, “किसानों को जमींदारों के विरुद्ध आंदोलन करना चाहिए।”

1 मार्च, 1936 को बाबासाहब ने पनवेल में आयोजित परिषद का अध्यक्ष पद गौरवान्वित किया। वहां महिलाओं ने उनकी आरती उतारी। अंजुमन ए इस्लाम और मुसलमानों के अखाड़े की तरफ से उनकी अगवानी की गई। स्थानीय चमार समाज ने भी उनका आदर सत्कार किया। वहीं अपने भाषण में उन्होंने कहा, “यह अस्पृश्यों का आंदोलन सब दलितों के लिए है। अगर चमार और मांग समाज इस आंदोलन का बीड़ा उठाते हैं तो मैं महार समुदाय से कहूंगा कि वे शांत बैठें।” उन्होंने यहां यह जानकारी भी दी कि उन्होंने मुंबई नगरपालिका में शिक्षा विभाग के सुपरवाइजर के पदों पर चमार समाज के लोगों को लेने की सुविधा कैसे प्राप्त करवाई और चमार मांग समाज के लोगों को पुलिस ट्रेनिंग विभाग में लाने के लिए उन्हें कितने प्रयास करने पड़े।

26

विधि महाविद्यालय की जनवरी 1936 की पत्रिका में लॉ कालेज के विद्यार्थियों ने डा. आंबेडकर के प्रति अपना हार्दिक स्नेह व्यक्त करते हुए संपादकीय लेख में उनकी प्रशंसा की। इस कालेज की पत्रिका में एक लेख लिखकर डा. आंबेडकर ने कानून की शिक्षा कैसे दी जाये, इसका विवेचन किया है। अपने लेख में उन्होंने पाठ्यक्रम कैसा हो, इसे समझाते हुए इस बात पर जोर दिया है कि किसी भी प्रौद्योगिक पाठ्यक्रम की तरह ही कानून की पढ़ाई भी एक पदवी प्राप्ति का पाठ्यक्रम हो। इंग्लैंड में जो बैरिस्टर की पढ़ाई का अभ्यास क्रम है, वह पदवी प्राप्ति की दृष्टि से पूर्ण नहीं है। यह बात उन्होंने उस लेख में समझाते हुए विस्तृत रूप से आग्रह किया है कि उनकी योजनानुसार यदि विधि की पढ़ाई का पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाये तो उससे विद्यार्थियों को किस प्रकार लाभ पहुंच सकेगा। यदि कानून की परीक्षाओं की जिम्मेदारी बार कौंसिल को सौंप दी जाये तो बार कौंसिल भी मजदूरों के संगठन के समान काम कर सकेगी। उन्होंने यह सुझाते हुए आगे लिखा है कि वकीलों को विधि शास्त्र के मूलभूत तत्वों के ज्ञान के साथ ही व्यापक सामान्य ज्ञान भी होना चाहिए। उन्हें अपनी वक्तृत्व कला के साथ ही, विषय प्रतिपादन की कला और अपने मन्तव्यों का युक्तिवाद के साथ विवेचन करने में भी निपुण होना चाहिए। इसलिए कानून की पढ़ाई के साथ समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, तर्कशास्त्र, वक्तृत्व कला तथा वादविवाद कौशल्य और भाषा प्रभुत्व की शिक्षा भी पाठ्यक्रम में समाविष्ट होनी चाहिए। डा. आंबेडकर ने पूरे अभ्यास क्रम में आमूल परिवर्तन की राय दी है।

दिसंबर 1935 से पंजाब के जातपात उन्मूलन मंडल के साथ डा. आंबेडकर का पत्र व्यवहार शुरू हो गया था। इस मंडल के सालाना जलसे के लिए डा. आंबेडकर से अध्यक्ष पद ग्रहण करने का अनुरोध किया गया। 5 दिसंबर, 1935 को लिखे गये अपने पत्र में डा. आंबेडकर ने यह स्पष्ट किया कि उनके अध्यक्षीय भाषण का मूलभूत सिद्धांत क्या होगा। फिर मंडल के सदस्यों ने उनके भाषण की प्रति पढ़कर उसमें कुछ सुधार करने का सुझाव भेजा। परंतु आंबेडकर ने उसे मानने से साफ मना कर दिया। आखिर उन्होंने लिखा कि जाति व्यवस्था पर उनके विचार बहुत ही विस्फोटक हैं और

उसे श्रोता सहन नहीं कर सकेंगे। इसलिए यह समारोह ही स्थगित किया जा रहा है।

डा. आंबेडकर ने "अनिहिलेशन ऑफ कास्ट" विषय पर अपना जो भाषण प्रकाशित किया है वह आज जाति प्रथा और इस संस्था पर गीता के समान एक सारगर्भित पुस्तक मानी जाती है। इस किताब पर अपने विचार व्यक्त करते हुए महात्मा गांधी ने यह मत प्रकट किया है, "हर हिंदू को यह किताब पढ़नी चाहिए।" उनकी यह सिफारिश ही किताब का महत्व सिद्ध करती है। गांधीजी के कुछ आक्षेपों का विस्तृत, सुसंगत उत्तर देते हुए डा. आंबेडकर ने इस किताब के दो संस्करण छपवाये थे। आज तक तो इस किताब के भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं और उनके कई संस्करण निकल चुके हैं। किसी भी ग्रंथकार ने अभी तक जाति निर्मूलन पर इतनी गहरी सुसंगत चर्चा किसी किताब में नहीं की है। हिंदू समाज के पुनर्संगठन के लिए डा. साहब ने जो दूरदर्शिता भरे उपाये सुझाये हैं वे आज भी उतने ही नवीनतम हैं।

चित्तरंजन नाटक कपंनी ने 15 मार्च, 1935 के दिन 'बांबे थियेटर' मुंबई में उनका आदर सत्कार किया था।

अमृतसर में 13-14 अप्रैल को सिख मिशनरी परिषद का जलसा हुआ। इस सम्मेलन में डा. आंबेडकर भी गये थे। अपने भाषण में उन्होंने कहा था, "सिख समाज में सामाजिक समता के तत्व हैं, इसे मैं जानता हूं। मगर हमारे धर्म परिवर्तन का समय अभी निश्चित नहीं हुआ है।"

डा. आंबेडकर का यह रुख देखकर महात्मा गांधी के अनुयायी सेठ वालचंद हीराचंद ने उन्हें गांधीजी से मिलने का विशेष आग्रह किया। तदनुसार बाबासाहब सेगांव जाकर गांधीजी से मिले। लेकिन उस मुलाकात से कुछ हासिल नहीं हुआ। सेगांव से लौटते समय वर्धा स्टेशन पर हजारों दलित, डा. आंबेडकर के दर्शनों के लिए, जमा हो गये थे। इस दृश्य को देखकर सेठ वालचंद हीराचंद ने कहा, "इन लोगों के लिए हम लाखों रुपये खर्च करते हैं, लेकिन ये लोग हमारी परवाह नहीं करते।" सहज ही डा. आंबेडकर के मुंह से उद्गार निकले, "इन्हें माता और दाई का अंतर अच्छी तरह मालूम है।"

सिख धर्म के सिद्धांतों को समझने के लिए डा. आंबेडकर ने अपने पुत्र यशवंत और भतीजे मुकुंदराव को अमृतसर के स्वर्ण मंदिर गुरुद्वारे में रखा था।

सन् 1936 में 30-31 मई को डा. आंबेडकर ने मुंबई इलाके की महार परिषद आयोजित की थी। यह परिषद इस उद्देश्य से बुलाई गई थी कि येवला में आयोजित सम्मेलन में जो प्रस्ताव पारित हुए थे उन्हें कैसे अमल में लाया जाये। इस पर विचार करके दिशा निर्धारित करनी थी। इस सम्मेलन में डा. आंबेडकर ने डेढ़ घंटे तक भाषण

दिया।[1] अपने बारह हजार शब्दों के इस ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने यह समझाया कि अस्पृश्य समाज ज्ञान, धन और संख्याशक्ति की दृष्टि से कितना कमजोर है। और इन तीनों शक्तियों को प्राप्त किए बगैर उसकी उन्नति होना किसी प्रकार से संभव नहीं है। "अस्पृश्य समाज तरह तरह से अपने नाम बदलकर अपनी जाति छिपाने का प्रयास करते हैं। इस भांति नाम बदलने की अपेक्षा धर्म बदलना अधिक सम्मानजनक है।" भाषण के अंत में उन्होंने कहा, "भगवान बुद्ध ने निर्वाण के समय अपने पट्टशिष्य आनन्द को जो उपदेश दिया था, उसे ध्यान में रखना आवश्यक है। भगवान बुद्ध ने कहा था, 'हे आनन्द, तुम स्वयं ही अपना प्रकाश बनो, तुम स्वयं अपनी ही शरण में जाओ, किसी अन्य की कभी भी शरण न लो।' इस परिषद के बाद डा. आंबेडकर ने बैरागियों और मोहतरे (महार जाति पंचायत के प्रमुख) समाज की सभा आयोजित कर उन्हें खरी खरी सुनाई और उन्हें आगे बढ़कर अस्पृश्य समाज के उद्धार कार्य में अगुआई करने की ताकीद दी।

डा. आंबेडकर के इस भाषण का प्रभाव परिषद के लिए बहुत व्यापक परिणामदायक सिद्ध हुआ। अस्पृश्यों ने हिंदू धर्मावलंबियों के त्यौहार, रीतिरिवाज, देव पूजन इत्यादि का त्याग करना प्रारंभ कर दिया।

सन् 1936 की 10 जून को इटली के बौद्ध भिक्षु लोकनाथ ने, राजगृह (आंबेडकर का मुंबई का निवास) जाकर, डा. आंबेडकर से मुलाकात की और उनसे अनुरोध किया कि वे बौद्ध धर्म स्वीकार करें। किंतु डा. आंबेडकर ने उनसे निश्चित रूप में कुछ नहीं कहा।

हिंदू महासभा के नेता डा. मुंजे 18 जून, 1936 को डा. आंबेडकर से मिले। उनकी मुलाकात का प्रयोजन यह था कि डा. आंबेडकर सिख्ख धर्म को स्वीकार करने के कार्य में अपना सहयोग दें, चूंकि यह पराया धर्म नहीं है। डा. आंबेडकर से चर्चा करने के उपरांत डा. मुंजे ने डा. जयकर की भी सहमति प्राप्त की और अन्य नेताओं को भी उन्होंने निवेदन भेजे। डा. मुंजे ने एम. सी. राजा को भी पत्र भेजा था। यह पत्र निजी तौर पर लिखा गया था परंतु गांधीजी ने राजा मुंजे पत्रव्यवहार को प्रकाशित करने के लिए विवश किया। इस पत्रव्यवहार में आंबेडकर के निवेदन का उल्लेख इस प्रकार था, "यदि डा. आंबेडकर सिख धर्म को स्वीकार करते हैं, तो नवसिख के रूप में भी उन्हें पुणे के समझौते के अनुसार मिले हुए अधिकार मिलते ही रहें। इस पर हिंदू महासभा को कोई आपत्ति नहीं होगी।" इस निवेदन में बाबासाहब ने लिखा है, "मुस्लिम या ईसाई धर्म का अंगीकरण करने से अस्पृश्य भारतीय संस्कृति से अलग हो जायेंगे, लेकिन सिख धर्म को स्वीकार करने से वे हिंदू संस्कृति से जुड़े रहेंगे।"

1. संघरक्षित : पृ. 66

27

विधि महाविद्यालय की अक्तूबर सन् 1936 की प्रकाशित पत्रिका में डा. आंबेडकर ने एक सौ सात साल पूर्व के प्रिवी काउंसिल द्वारा दिए गये निर्णय को उद्धृत किया है और उस पर अपनी व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है, "यह मुकदमा केवल इतिहास के विद्यार्थियों के लिए ही उपयोगी नहीं है वरन् कानून के विद्यार्थियों और जनसाधारण के लिए भी जानने योग्य है। सन् 1857 के विद्रोह के पूर्व इस देश में ईस्ट इंडिया कंपनी और रानी विक्टोरिया की सरकार के अधिकारियों के बीच मनमुटाव और राग द्वेष बढ़ता जा रहा था। कंपनी द्वारा नियुक्त किये गये गवर्नर, शासन द्वारा नियुक्त सबसे बड़े न्यायाधीश के साथ कोई न कोई वाद जान बूझकर खड़ा कर दिया जाता था। इस मुकदमे में उसी बहसबाजी से पैदा हुआ मामला दर्ज किया गया है। क्या अपने अधिकार क्षेत्र में न रहने वाले व्यक्ति पर 'रिट' भेजने का सर्वोच्च न्यायाधीश को अधिकार है ? इस मुकदमे का यह अहम सवाल है। आज की परिस्थिति में भी इस फैसले का महत्व उतना ही प्रमुख है।" इस विषय पर अपना विवरण प्रस्तुत करते हुए डा. साहब लिखते हैं, "किसी भी शासन व्यवस्था में विधान मंडल और प्रशासन विभाग के सामने न्यायपालिका सबसे अधिक कमजोर होती है। प्रशासन साधारणतया न्यायपालिका के आदेशों का पालन करता है। लेकिन आलस्य या द्वेष के कारण अगर प्रशासन विभाग ने न्यायपालिका के आदेशों को मानने से इंकार कर दिया तो फिर न्याय हवा में हिचकोले खाता रहेगा और जनता की जान जोखिम में और संपत्ति संकट में पड़ जायेगी।" उन्होंने अंत में लिखा है, "सन् 1925 के कानून में इस बारे में जो व्यवस्था की गई है और अमेरिका देश के संविधान तथा जर्मन गणराज्य में कैंसर का पराभव तथा हिटलर का उदय—इन परिस्थितियों के साथ इस फैसले की तुलना करके देखनी चाहिए।"[1]

---

1. लॉ कालेज मासिक पत्र, अक्तूबर 1935, ''एंड दि लार्ड सेड अन टु'' वर्ष 1829-31 के प्रिवी काउंसिल द्वारा दिया गया निर्णय—और डा. आंबेडकर का विवेचन

28

भारत सरकार के सन् 1935 के कानून के अनुसार प्रादेशिक स्वाधीनता स्वीकृत हो चुकी थी और सभी प्रांतों में चुनाव के बाद राज्य सरकारें स्थापित होने वाली थीं। हर दल चुनाव की तैयारियां कर रहा था। अगस्त 1936 में डा. आंबेडकर ने भी 'स्वतंत्र मजदूर दल'—इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के नाम से एक दल की स्थापना की और 15 तारीख को अपने दल के ध्येय और नीति को समझाते हुए एक घोषणापत्र प्रकाशित किया। अपने इस घोषणापत्र में उन्होंने स्पष्ट किया, "भले ही नये विधान में राज्य शासन प्रणाली को उत्तरदायित्व का भार पर्याप्त रूप में प्राप्त नहीं हुआ है, फिर भी हमें जो कुछ भी दिया गया है उस राज्य विधान को पूरी तरह अमल में लाने का हमने फैसला कर लिया है।" इस निर्णय का उल्लेख कर फिर उन्होंने लक्ष्य समझाए। उनके कार्यक्रम इस प्रकार थे—पुराने कारोबारों को गति प्रदान करना, नये धंधों को प्रारंभ करना, पट्टधारियों का शोषण से संरक्षण करना, मजदूरों की भलाई की दृष्टि से कानून बनाना, भूमिहीनों को जमीन दिलवाना, समाज सुधारकों को सहायता पहुंचाना, देहातों में आरोग्य और निवासों के लिए योजनाएं प्रारंभ करना इत्यादि सुविधाएं प्रदान करने का इस नीति पत्र में उल्लेख किया गया था। यह घोषणापत्र हर एक को यह विश्वास दिलाता था कि मुंबई प्रदेश के लोगों का जीवन संमृद्ध करने के लिए यह दल भरसक प्रयत्न करेगा। देश की भलाई के लिए हम क्या कर सकते हैं, इसकी प्रत्यक्षता डा. आंबेडकर ने 1942 से 1946 तक मजदूर विभाग के मंत्री की कालावधि में प्रमाणित कर दी। सबकी नजर में उनकी महत्ता सिद्ध हो गयी।

चुनाव के लिए अपनी पार्टी की व्यवस्थित पूर्व तैयारी कर डा. आंबेडकर नवंबर 1936 में 'इटालियन' जहाज से अपने स्वास्थ्य के सुधार के लिए यूरोप यात्रा पर गये। अपना प्रवास प्रारंभ करने से पूर्व उन्होंने 'टाइम्स आफ इंडिया' के संवाददाता को मुलाकात देते हुए कहा, "कांग्रेस संस्था शोषण करने वालों और शोषित समाज का मिला जुला संगठन है। यह संस्था राष्ट्र के नव निर्माण की दृष्टि से उपयोगी नहीं है। स्वतंत्र मजदूर पार्टी जनता को लोकतंत्र का तंत्र समझायेगी और प्रजातंत्र की प्रणाली का प्रशिक्षण देगी।" डा. आंबेडकर को विदाई देने के लिए अपार जनसमूह बंदरगाह

पर उपस्थित था। यूरोप का अपना लंबा दौरा समाप्त कर डा. आंबेडकर 14 जनवरी, 1931 को मुंबई वापस लौटे। यहां के 'विविधवृत्त' साप्ताहिक पत्र ने यह समाचार प्रकाशित कर दिया था कि उन्होंने एक अंग्रेज महिला से विवाह कर लिया है। इसलिए डा. आंबेडकर का स्वागत करने आए हुए हजारों लोग बड़ी उत्सुकता से डा. आंबेडकर को सपत्नीक देखने को लालायित थे। परंतु डा. आंबेडकर को अकेले ही पधारते देख कुछ संवाददाताओं ने उन्हें टोका। तब उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे लुके छिपे शादी करने की आवश्यकता ही नहीं है। फिलहाल हमारा जरूरी काम है, नये चुनाव लड़ना।"

इंग्लैड में उन्होंने सर रेम्जे मैक्डोनाल्ड से मुलाकात की। उनकी यह धारणा थी कि रेम्जे मैक्डोनाल्ड जब प्रधानमंत्री पद पर आसीन थे तब उन्होंने भारत की भलाई के लिए बहुत कार्य किए हैं। वे भारत के मित्र रहे हैं। यूरोप में भी डा. आंबेडकर ने अनेक कानून विशेषज्ञों और विधि पंडितों से इस बारे में चर्चा की कि धर्म परिवर्तन करने से अस्पृश्यों के अधिकारों पर कहीं कुठाराघात तो नहीं होगा? विधि पंडितों से राय लेकर वे स्वदेश लौटे थे।

29

जनवरी 1937 के दूसरे सप्ताह में डा. आंबेडकर ने इगतपुरी, बरखेडे और सिन्नर शहर में स्वतंत्र मजदूर पार्टी के उम्मीदवारों की प्रचार सभाएं संबोधित कीं। साथ ही नासिक नगर, जलगांव शहर में भी सभाओं में भाषण दिये। इसी मास के अंतिम सप्ताह में वे सातारा तथा कोल्हापुर के लिए रवाना हुए। राह में पुणे शहर में रुके। उस समय वहां काकासाहब न. वि. गाडगिल उनसे मिले।[1] उन्होंने यह चाहा कि अस्पृश्यों के वोट कांग्रेस को मिलें। जब वहां आंबेडकर ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया तब गाडगिल मुंबई हाई कोर्ट में उनसे मिले। डा. आंबेडकर ने उन्हें उत्तर दिया, "मेरे अनुयायी शेर की संतान हैं। उनका अनुशासन अति उत्तम है।" अपने अनुयायियों पर डा. आंबेडकर का दृढ़ विश्वास था।

इस चुनाव में डा. आंबेडकर ने स्वराज्य पार्टी के श्री ल. ब. भोपटकर को समर्थन देने का विचार व्यक्त किया था। वे अपने पत्र में अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए उन्हें लिखते हैं, "डेमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी और स्वतंत्र मजदूर पार्टी दोनों इस बारे में सहमत हैं कि नये विधान का अधिक से अधिक लाभ उठाया जाये। इस विधान के कारण जो राजनैतिक अधिकार हमें प्राप्त हो रहे हैं, उनका देश के बहुजन समाज के दुख दूर करने के लिए उपयोग किया जा सकता है।"[2] भोपटकर ने अस्पृश्यता निवारण करने का आश्वासन भी दिया था और डा. आंबेडकर का समर्थन करने का वचन भी। न. चि. केलकर के समान मराठी साहित्य सम्राट और अन्य नेताओं ने यह घोषित किया था कि डा. आंबेडकर की उम्मीदवारी को स्वराज्य पार्टी का पूरा समर्थन प्राप्त है। केलकर ने अपने पत्र में लिखा था, "राउंड टेबल कांफ्रेंस में डा. आंबेडकर का राष्ट्रीय बाना उज्वलता से कैसे प्रस्थापित हुआ, यह सर्वविदित है। उनकी तुलना में अन्य नेता बहुत अदने नजर आते हैं।" और भी बातों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा, "डा. आंबेडकर ने अपनी बुद्धिमत्ता और ध्येय निष्ठा से अपने लिए गौरव का उच्च स्थान प्राप्त किया है।"

---

1. विविधवृत्त : 7-2-1937
2. वही : 7-11-1937 (पत्र दि. 5-2-1937)

डा. आंबेडकर मुंबई शहर के इ और एफ वार्ड से चुनाव के प्रत्याशी थे। कांग्रेस ने पी. बालू को उनके विरोध में खड़ा किया था। पा. ना. राजभोज और देवरुखकर, अस्पृश्यों के मत विभाजित करने के लिए, स्वयं ही आंबेडकर के विरोध में खड़े हुए थे। कम्युनिस्टों ने भी आंबेडकर का विरोध किया। चुनाव 17 फरवरी, 1937 को हुआ। डा. आंबेडकर अत्यधिक मतों से विजयी हुए। आंबेडकर की पार्टी के 17 में से 13 उम्मीदवार विजयी हुए। शहर शहर और गांव गांव में आंबेडकर की जीत के उत्सव मनाए गये। सांगली शहर में आंबेडकर का भव्य स्वागत किया गया। इन्हीं दिनों के आसपास, 16 मार्च, 1937 को मुंबई के उच्च न्यायालय ने महाड़ के 'चवदार' तालाब के बारे में विचाराधीन अपील पर अपना निर्णय दिया, जिसके अनुसार अस्पृश्यों को उसी 'चवदार' तालाब का पानी पीने और उपयोग में लाने का अधिकार संस्थापित हो गया।

इन्हीं दिनों मुंबई के वरली भाग में नया बुद्ध विहार बनकर तैयार हो गया। इस बारे में सूचना देते हुए धर्मानंद कोसांबी ने कहा, "सामान्य जनता के लिए सब जगह नये विहार स्थापित करने की कल्पना डा. आंबेडकर ने मुंबई की बुद्ध विहार सोसायटी को सबसे पहले दी है।"[1]

---

1. दि बुद्धप्रभा (अंग्रेजी) : भाग 5, अंक 2, अप्रैल 1937, मुंबई

30

चुनाव में कांग्रेस विजयी हुई। परंतु उसने मंत्रिमंडल का गठन करने से इंकार कर दिया। इसलिए सरकार ने सर धनजीशाह कूपर और जमनादास मेहता को मंत्रिमंडल बनाने को आमंत्रित किया। कांग्रेस के प्रमुख नेता वी. जी. खेर ने कूपर मंत्रिमंडल पर अविश्वास का प्रस्ताव रखा। उसका समर्थन करने के लिए डा. आंबेडकर से निवदेन किया गया। उस समय आंबेडकर जंजीरा गए हुए थे। उन्होंने वहां से खेर को अपनी अस्वीकृति लिख भेजी थी।[1] एक मित्र ने जब उनसे उस समय सवाल किया[2], "जोरों से अफवाह है कि आप कांग्रेस मंत्रिमंडल में वित्तमंत्री बन रहे हैं।" डा. आंबेडकर ने झट कहा, "पहले तो यह असंभव सी बात है—और यदि कांग्रेस पार्टी मुझे यह जिम्मेदारी सौंपने का निश्चय कर भी ले तो भी मैं उसको मंजूर नहीं करूंगा, क्योंकि (1) संयुक्त सरकार के मंत्रिमंडल पर मेरा विश्वास नहीं है। (2) मैं कांग्रेस पार्टी में अपनी पार्टी का विसर्जन नहीं करूंगा, न स्वयं ही उस पार्टी में शामिल होऊंगा।"

"जिस तरह कांग्रेस के अनुयायियों का अपने उद्देश्यों और राजनीति की धारणाओं पर विश्वास है उसी तरह हमें भी अपनी नीति और उसूल प्यारे हैं। हम दोनों की विचारधाराओं में अंतर है—भिन्नता है। विचारों की स्वतंत्रता के साथ जब यह मेल संभव और आवश्यक होगा तब कांग्रेस पार्टी के साथ कार्य करने में मुझे आपत्ति नहीं होगी।"

सावंतवाड़ी रियासत के लोकप्रिय सामंत श्री बापू साहब महाराज के न्यायालय में अपील दाखिल करने के लिए डा. आंबेडकर को जाना पड़ा। पडवे गांव के जमींदार का खून किया गया था। इस मामले में अभियुक्त की ओर से राजा साहब के सामने आंबेडकर ने केस की पैरवी की थी। इस अपील की दलीलें तीन दिनों तक सामंत श्री बापू साहब की कोर्ट में चलती रहीं। राजा साहब रोज दिन के 11 बजे से शाम 5-30 बजे तक पैरवी को बहुत ध्यान के साथ सुनते थे। बीच में आध घंटे की विश्रांति को छोड़ लगातार छह घंटे तक एकाग्रतापूर्वक बहस को सुनना और बीच बीच में कुशाग्रता

1. विविधवृत्त : 16-5-1937
2. वही : 25-7-1437 : लेखक : सत्यग्राही

से प्रश्न पूछना, उनकी निपुणता थी। डा. आंबेडकर को यह अनुभव बहुत ही असामान्य प्रतीत हुआ। जब उन्होंने राजा साहब द्वारा दिया हुआ फैसला पढ़ा तो उन्हें महाराज की बुद्धिमत्ता और कानून की गहरी पकड़, विधि ज्ञान की निश्चित अनुभूति, ज्ञात हुई।

सावंतवाड़ी के इस नरेश का जून 1937 में स्वर्गवास हुआ। उसी समय डा. आंबेडकर ने एक श्रद्धांजलि लेख[1] लिखकर उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की थी। उन्होंने महाराज की धर्मशीलता की मन में प्रशंसा की थी। लगता है, राजा साहब के व्यक्तित्व में डा. आंबेडकर को स्वयं की धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब दृष्टिगोचर हो रहा होगा। इसीलिए उन्होंने सामंत श्री बापू साहब महाराज के लिए "महान, कर्तव्य तत्पर तथा वंदनीय" जैसे विशेषणों का अपने लेख में प्रयोग किया है।

राज्य शासन के नये विधान को पूरी तरह अमल में लाने के बारे में स्वतंत्र मजदूर पार्टी ने मुंबई के कामगार मैदान में एक सभा आयोजित की थी। उस सभा में भाषण करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "दलित समाज की भलाई के लिए राज्य विधान का अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने का हमारा संकल्प है। हमें जितना भी फायदा मिल सकता है वह हम जरूर लेंगे।" पंडित नेहरू ने अपने एक अस्पृश्य घरेलू नौकर हरि को चुनाव लड़ने के लिए चुना था। नेहरू के इस काम का जिक्र करते हुए आंबेडकर ने उनकी खूब खबर ली थी।

---

1. विविधवृत्त : 11-7-1937

31

कूपर मंत्रिमंडल ने 18 जुलाई, 1937 को त्यागपत्र दे दिया। आखिर कांग्रेस ने 19 जुलाई, 1937 के दिन शासन की बागडोर संभाली। कांग्रेस के सदस्यों को अंग्रेजी शासन के साथ निष्ठा से व्यवहार करने की शपथ लेनी पड़ी। आंबेडकर ने शपथ लेते समय हाथ में गीता नहीं ली थी। विरोधी सदस्य के रूप में डा. आंबेडकर और जमनादास मेहता दोनों ही विख्यात तथा कुशल वादविवाद करने वाले थे। भारत की किसी भी असेंबली में उनके मुकाबले और दबदबे का सदस्य नहीं था।

अपने अदालती कामकाज के लिए डा. आंबेडकर 31 जुलाई को जब धूलिया शहर को जा रहे थे तो मार्ग में चालीसगांव स्टेशन पर प्रचंड जयघोष के साथ उनका स्वागत किया गया। हरिजन सेवक संघ के श्री बर्वे महोदय ने डा. आंबेडकर के सम्मान में चाय पार्टी दी। संध्या समय विजयानंद थियेटर में डा. आंबेडकर का भाषण हुआ। उन्होंने कहा, "कांग्रेस मंत्रिमंडल में एक भी अस्पृश्य सदस्य मंत्री नहीं है। हमें संगठित होकर ही अपनी राह ढूंढकर कदम बढ़ाना चाहिए।"

स्वतंत्र मजदूर पार्टी का वार्षिक अधिवेशन 7 अगस्त को मुंबई के नागपाड़ा इलाके में आयोजित किया गया। इस खुले अधिवेशन में डा. आंबेडकर को सर्वसम्मति से अध्यक्ष तथा कोषाध्यक्ष चुना गया।

मुंबई विधान सभा में 23 अगस्त, 1937 को मंत्रियों के वेतन, घर का किराया तथा यात्रा भत्ते के बारे में एक बिल चर्चा के लिए पेश किया गया। उस समय उस बिल का कड़ा विरोध करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "वेतन पर विचार करते समय कार्यक्षमता, सामाजिक प्रतिष्ठा, प्रजातंत्र तथा शासन के प्रति सत्यनिष्ठा पर भी ध्यान देना चाहिए।"

कोंकण विभाग के खोत अर्थात् जमींदार अपने पट्टेदारों का सैकड़ों सालों से शोषण करते आ रहे थे। इन किसानों को जमींदारों के शोषण से छुटकारा दिलाने के लिए डा. आंबेडकर ने 17 सितंबर, 1937 को विधान सभा में एक बिल रखा। किसानों के हित के लिए विधेयक पेश करने वाले डा. आंबेडकर प्रथम व्यक्ति थे। इस बिल में यह सुझाया गया कि इन जमींदारों का जमीन पर जो स्वामित्व है उसे समाप्त किया

जाये। इसके लिए उन्हें हरजाना दिया जाये और जो खेती करे वही खेती का मालिक हो, यह अधिकार उसे दिया जाये। लेकिन शासक वर्ग ने इस बिल को लटकाए रखा। महार जाति की पैतृक संपत्ति के अधिकारों में सुधार करने के लिए आंबेडकर ने एक विधेयक भी रखा, मगर उसे भी विलंब खाते में डाल दिया गया।

चुनाव जीतने के बाद डा. आंबेडकर जलवायु बदलने के लिए जापान जाने की सोच रहे थे। परंतु उनके मित्र, 'विविधवृत्त' पत्र के संपादक, रामचंद्र काशीनाथ तटणीस पर अली बहादुर खान ने मानहानि का दावा दायर किया था, उस मुकदमे में पैरवी करने के लिए डा. आंबेडकर ने अपनी जापान यात्रा का विचार छोड़ दिया। यह मुकदमा 1937 में अप्रैल से अक्तूबर तक चलता रहा। आंबेडकर ने बहुत चतुराई से इस मुकदमे में बहस की, लेकिन अखबार में अली बहादुर खां को निर्वासित किए जाने का जो संकेत दिया गया था, उसे साबित न कर सकने की वजह से न्यायाधीश महोदय ने संपादक तटणीस को पांच रुपये का जुर्माना भरने की सजा दी।

नवंबर 1937 में 'आदि द्रविड़ तरुण संघ' द्वारा मुंबई में डा. आंबेडकर को सम्मान दिया गया। वहां डा. आंबेडकर ने यह उपदेश दिया कि नौजवानों को कांग्रेस में शामिल नहीं होना चाहिए।

32

नवंबर 1937 में डा. आंबेडकर ने मैक्डोनाल्ड साहब के बारे में एक विस्तृत लेख लिखकर[1] यह स्पष्ट किया कि उन्होंने प्रधानमंत्री रहते समय किस तरह भारत की भलाई के लिए कार्य किए थे।

दूसरी गोलमेज परिषद के समय ब्रिटेन के अनुदार दल की ओर से बहुत षड्यंत्र किये गये थे कि भारत को केवल 'प्रांतीय स्वायत्तता' पर ही बातचीत करने दी जाय। इस भीतरी चाल के जाल में गांधीजी भी फंस गए थे। उन्होंने तो इस प्रादेशिक स्वतंत्रता के आशय पर निकाले गये एक परिपत्र पर अपने हस्ताक्षर भी कर दिए थे। किंतु ब्रिटेन के कूटनीतिज्ञों के इस दांव की, माननीय आगा खान, सर तेजबहादुर सप्रू और डा. आंबेडकर ने दाल नहीं गलने दी। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के सारे प्रयत्नों को सर मैक्डोनाल्ड की ओर से बहुत अधिक सहयोग रहा। डा. आंबेडकर ने ऐसी अनेक महत्वपूर्ण बातों को अपने लेख में प्रतिपादित किया है। डा. आंबेडकर लिखते हैं, "मैक्डोनाल्ड भारत के मित्र थे और उन्होंने अपने स्नेह भाव को कार्यरूप देने का सच्चे दिल से प्रयास भी किया था।"

30 दिसंबर को डा. आंबेडकर सोलापुर जिला अस्पृश्य परिषद में उपस्थित रहने के लिए पंढरपुर रवाना हुए। मार्ग में कुर्डवाडी रेलवे जंक्शन पर उनका भव्य स्वागत हुआ। फिर मातंग समाज के करकंब गांव में भरी सभा में भाषण दिया जिसमें उन्होंने कांग्रेस से बचकर रहने की सलाह दी। वे दोपहर में पंढरपुर पहुंचे। वहां पहुंचते ही विश्रामगृह तक उनकी शोभायात्रा निकाली गयी। पंढरपुर नगरपालिका के अध्यक्ष वहां उनसे मिलने आए और डा. आंबेडकर को अपने साथ उस धर्मशाला में ले गए जहां परिषद का आयोजन किया गया था। वहां भाषण देते हुए बाबासाहब ने कहा, "जब तक जातपात का रिवाज खत्म नहीं होगा तब तक समानता हो ही नहीं सकेगी। जाति संस्था का नाश ही समानता का निर्माण है। जब तक गरीब समाज अधिकारियों के विरुद्ध मोर्चा संगठित नहीं करेगा तब तक उनका आर्थिक शोषण समाप्त नहीं हो सकेगा। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए आंदोलन शुरू करने से ही हमें भविष्य में लाभ हो

---

1. विविधवृत्त : 21-11-1937

सकेगा।" परिषद ने महार पैतृक संपत्ति विधेयक का समर्थन किया। उसके बाद डा. आंबेडकर ने पंढरपुर नगरपालिका जाकर वहां मानपत्र ग्रहण किया।

परिषद का कार्य समाप्त कर आंबेडकर सोलापुर में मातंग परिषद में उपस्थित हुए। 4 जनवरी, 1938 को सोलापुर नगरपालिका ने उन्हें मानपत्र अर्पित किया। उस अवसर पर मानपत्र का जवाब देते हुए उन्होंने अपने भाषण में कहा, "हमारे देश के प्रजातंत्र ने अपनी बुद्धि का उपयोग करना स्थगित कर दिया है। प्रजातंत्र में सत्तारूढ़ दल के विचार और कार्यों की पूरी जांच पड़ताल होनी चाहिए और चिकित्सा भी। भारत को अच्छे अधिनायकवाद की आवश्यकता है।"

दूसरे दिन ईसाई समाज के समक्ष भाषण करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "मेरे मन पर ईसा मसीह और भगवान बुद्ध, इन दो महापुरुषों के महान व्यक्तित्व का गहरा असर हुआ है। जो धर्म हमें समता, बंधुत्व और स्वाधीनता के तत्वों के अनुसार जीने और व्यवहार करने का पाठ सिखाए, ऐसे धर्म की हमें आवश्यकता है।" इस बात को कहना भी वे नहीं भूले कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध ईसाई समाज ने संघर्ष नहीं किया है।

सोलापुर से लौटने के बाद डा. आंबेडकर ने विधानसभा भवन तक किसानों का एक मोर्चा निकाला। इस मोर्चे में ठाणा, नासिक, कुलाबा, रत्नागिरी, सातारा के इलाकों के गरीब किसानों ने भाग लिया था। 'जमींदारी मुर्दाबाद', 'आंबेडकर के विधेयक का समर्थन करो', इन नारों की घोषणा करते हुए यह मोर्चा विधानसभा भवन तक पहुंचा। शामराव परुलेकर, इंदुयाल याज्ञिक और अन्य 15-20 नेताओं को साथ लेकर डा. आंबेडकर मुख्यमंत्री से मिले। खेतिहर किसानों का न्यूनतम वेतन निर्धारित करना, पट्टेदारी खत्म करने वाला कानून पास करना, जमींदारी समाप्त करना, छोटे किसानों के लिए पानी का मूल्य कम करना, वगैरह मांगों को उन्होंने मुख्यमंत्री के सामने पेश किया।

निवेदन पेश करने के बाद मोर्चा आजाद मैदान तक पहुंचा। वहां डा. आंबेडकर ने ओजस्वी भाषण दिया। उन्होंने कहा, "संसार में दो ही श्रेणियां हैं—एक शोषक, और दूसरी शोषित। मजदूरों और किसानों को जातिवाद रहित बुद्धि से संगठित होकर, विधानसभा में अपने प्रतिनिधियों को चुनकर भेजना चाहिए। तभी उनका हित हो सकेगा।"

33

किसान मजदूरों की समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाने के कारण डा. आंबेडकर को भाषण देने के लिए काफी निमंत्रण आने लगे। किसान मजदूरों की एक परिषद अहमदनगर में आयोजित की गयी। वहां का बुलावा आया। 25 जनवरी, 1938 को वहां उनका बहुत ही प्रभावशाली भाषण हुआ। उसके बाद वहां के जिला लोकल बोर्ड में वकीलों की ओर से उन्हें चाय पार्टी पर आमंत्रित किया गया। संध्या समय वे उसी जिले के अकोला ग्राम गये और वहां भी उन्होंने एक सभा को संबोधित किया।

जाधवजी गांधी और धीरजलाल नामक दो सट्टेबाजों को जुआ खेलने के अपराध में चीफ प्रेसिडेंसी मेजिस्ट्रेट ने जो सजा सुनाई थी उसे बंबई की हाईकोर्ट ने बहाल रखा था। बंबई के शासन ने उन दोनों की इन सजाओं को अपने अधिकार का प्रयोग कर निलंबित कर दिया। न्यायपरायणता के क्षेत्र में शासन द्वारा इस प्रकार हस्तक्षेप करने के कारण, जमनादास मेहता ने बंबई की विधान सभा में स्थगन प्रस्ताव रखा। इसका समर्थन करते समय डा. आंबेडकर ने प्रिवी काउंसिल का हवाला देते हुए कहा, "इस मामले में कानून के उसूलों का उल्लंघन किया गया है, इसे साबित किए बगैर हिंदुस्तान की फौजदारी कचहरी के फैसले पर हाईकोर्ट में अपील मंजूर नहीं की जा सकती। इस तरह के कार्यों से जनता के मन से कानून और व्यवस्था तथा शासन प्रणाली की सच्चाई के प्रति आस्था उठ जायेगी, शंका और संदेह पैदा हो जायेगा। अपराधी अभियुक्तों को दी गई दंडाज्ञा को क्षमा प्रदान करना कानून का विनाश करने के समान है।" उन्होंने यह भी जानना चाहा कि क्या गृहमंत्री के. एम. मुंशी ने मुख्यमंत्री की इस बारे में सम्मति ली थी ?

12 फरवरी, 1938 को ग्रेट इंडियन पेनिनशुला रेलवे के दलित वर्गीय मजदूरों की सभा हुई। इस परिषद में 20,000 मजदूर उपस्थित थे। इस आयोजन के अध्यक्ष पद से मजदूरों को संबोधित करते हुए डा. आंबेडकर ने उन नेताओं के पाखंड का पर्दाफाश किया जिनके कारण मजदूर आंदोलन अधोगति को पहुंचा है। उन्होंने अपने भाषण में कहा, "इस मजदरू समाज को पूंजीपतियों और ब्राह्मणवादियों—दोनों शत्रुओं का सामना करना पड़ता है। अपने विकास के लिए आप लोगों को स्वतंत्र संगठन का निर्माण करना

होगा।" उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि मानवेंद्रनाथ राय, जो एक जगविख्यात कम्युनिस्ट नेता हैं, इनका विरोध क्यों कर रहे हैं। उन्होंने आगे यह राय दी, "अंग्रेजों की इस साम्राज्यवादी शक्ति से छुटकारा पाने के लिए यदि आप लोगों को यहां के पूंजीवाद से संघर्ष करना है तो आप अभी से उसकी तैयारी करने में जुट जाइये।"

इस परिषद के अलावा उन्होंने वहां नवयुवकों की सभा में उनके हित की बातें करते हुए कहा, "अपने जीवन में उच्च उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उदात्त ध्येय धारण करना एक महत्वपूर्ण महत्वाकांक्षा है। इन ध्येयों तक पहुंचने के लिए हर व्यक्ति को आठों पहर लगन से प्रयत्नशील रहना चाहिए। उन्हें समाज के उद्धार के लिए लगातार कर्मशील रहना चाहिए।" शिक्षा के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा, "शिक्षा एक दुधारी तलवार की तरह है। जो व्यक्ति चरित्रहीन और विनयरहित है, वह शिक्षित होते हुए भी एक पशु से अधिक भयावह है। मेरी धार्मिक भावना के कारण ही मुझमें गुणों का विकास हुआ है।"

4 अप्रैल, 1938 के दिन विधानसभा में स्वतंत्र कर्नाटक प्रदेश का निर्माण करने वाले विधेयक पर चर्चा चल रही थी। डा. आंबेडकर ने इस चर्चा में भाग लेते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा, "इस स्वतंत्र प्रदेश की मांग के कारण राज्य में लिंगायत तथा अन्य सब निवासियों के बीच द्वेष पैदा हो जायेगा। अंग्रेजी शासन की हमें महत्वपूर्ण भेंट यह है कि केंद्रीय शासन शक्तिशाली हो और सब लोगों के लिए एक ही कानून हो। हम सब भारतवासियों का यह ध्येय होना चाहिए कि इस भावना को हम हर व्यक्ति के मन में जागृत करें कि हम सब भारतवासी हैं।"

मुंबई पुलिस कानून में संशोधन का सुझाव प्रस्तुत करने वाले विधेयक पर डा. आंबेडकर ने 27, 28 तथा 29 अप्रैल, 1938 को तीनों दिन भाषण दिया। उन्होंने यह भी कहा, "मैं पिछले बीस सालों से मुंबई के गुनाहगारों की दुनिया में घूम फिर रहा हूं। गुंडे और बदमाश गरीबों का जीना हराम कर देते हैं, उन्हें बेहद सताते हैं मगर इन गुंडों के खिलाफ की गई फरियाद से किसी के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती, उनकी शिकायतें सुनी अनसुनी कर दी जाती हैं।" उन्होंने यह भी मांग की कि कौमी दंगों पर फौरन कदम उठाए जायें और तुरंत व्यवस्था स्थापित की जाये।

मई महीने के प्रारंभ में वे छत्तीसगढ़ में बसे सतनामी पंथवासियों के धर्म गुरु मुक्तावनदास पर लगाए गये हत्या के अभियोग की पैरवी करने के लिए नागपुर हाईकोर्ट में अभियुक्त की ओर से प्रतिवादी वकील बने। उनकी तर्कसंगत दलीलें सुनने के लिए अनगिनत लोग हाईकोर्ट के कक्ष में और बाहर खड़े रहते थे। पहली शाम को नागपुरवासियों ने उनका बहुत प्रभावशाली स्वागत किया। दूसरे दिन वे कामठी गये और वहां अस्पृश्य विद्यार्थियों की सभा में उन्होंने मार्गदर्शक भाषण दिया। फिर वे मुंबई लौट आये।

34

मई 1938 में डा. आंबेडकर ने विधि महाविद्यालय के प्राचार्य पद से त्याग पत्र दे दिया। विधि महाविद्यालय की मासिक पत्रिका में उनके कार्यों का बखान करते हुए लिखा गया था, "डा. आंबेडकर के ज्ञान और कार्यकौशल के बारे में विद्यार्थियों में बहुत आदर था। उनके व्याख्यान अध्ययन का निचोड़ और मनोयोग पूर्ण होते थे। विधिशास्त्र के विषय में उनके विचार हमेशा क्रांतिकारी हुआ करते थे।"

13 मई से डा. आंबेडकर कोंकण इलाके के दौरों पर निकले। वहां कोंकण निवासी महार समाज सेवा संघ की ओर से दक्षिण कोंकण पंचमहल अस्पृश्य परिषद का आयोजन किया गया था। उस सभा में पांच छह हजार गरीब अस्पृश्य दूर दूर से डा. आंबेडकर के दर्शन करने आए हुए थे। अपने उन द्ररिद्र बंधुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "आप यह कसम खा लें कि आप लोग मृत जानवरों का मांस नहीं खायेंगे और उन्हें ढोने या हटाने का काम भी नहीं करेंगे।" उन्होंने शिक्षित और संपन्न महारों को उपदेश देते हुए कहा, "ऊंची जाति और ओहदे वालों से याचना मत करो परंतु अपने कानूनी अधिकारों के लिए लड़ो और उन्हें प्राप्त करो। अब यहां अंग्रेजों का नहीं, जनता का शासन है। विधानसभा में पंद्रह अस्पृश्य सदस्य हैं। उनके कार्यों पर ध्यान रखो। अंग्रेज तो देश छोड़ जायेंगे, मगर तुम्हें पूंजीपतियों ओर पुरोहितों का सामना करना है।"

दूसरे दिन डा. आंबेडकर देवरुख और आखली नाम के गांवों में गये और वहां भाषण दिये। 15 तारीख की रात को वे चिपलून नगर में पहुंचे।

16 की सुबह उन्होंने मुहागर ग्राम में भाषण दिया और वापिस चिपलून पहुंचे। चिपलून की सभा में उन्होंने कहा, "मुझे एक किसान को प्रधानमंत्री पद पर आरूढ़ होते हुए देखना है। यदि खेतों पर विशेषाधिकार दिलाने वाला 'खोती' विधेयक विधानसभा में पारित नहीं हो पाये तो लगान बंदी का आंदोलन प्रारंभ कीजिए।"

उसके बाद खेड और दापोली शहरों में भाषण करते हुए वे महाड़ पहुंचे। वहां एक जंगी सभा में उन्होंने समाजवादियों की कड़ी आलोचना करते हुए कहा, "जमींदारी खत्म होनी चाहिए का नारा बुलंद करने वाले यह समाजवादी 'खोती बिल' पर मुंह में

दही जमाए बैठे हैं।" लगभग छह सौ मील की यात्रा कर डा. आंबेडकर 21 मई को मुंबई पहुंचे। लगातार भाषणों के कार्यक्रमों से उनका गला सूख गया था।

मुंबई लौटने पर उन्होंने एक मुलाकात में कहा कि उनकी पार्टी को समर्थन प्राप्त होता जा रहा है। स्वतंत्र मजदूर पार्टी अपने वायदों को पूरा करने की पूरी कोशिश कर रही है।

लगभग इन्हीं दिनों नागपुर के आसपास जाफर हुसैन नामक पुलिस अधिकारी ने अपने साथ काम करने वाले की मदद से एक नाबालिग अस्पृश्य बालिका से बलात्कार किया था। उस केस में दी गई सजा हाइकोर्ट तक ने बहाल रखी थी, लेकिन मध्य प्रदेश के डा. ना. भा. खरे के मंत्रिमंडल में शरीफ नामक गृहमंत्री थे। उन्होंने जाफर हुसैन को छुड़वा दिया। डा. आंबेडकर सामाजिक मामलों में कही बेइंसाफी देखते ही बेचैन हो जाते थे। उन्होंने खरे मंत्रिमंडल की निंदा करने के लिए मुंबई में श्री तटणीस के सभापतित्व में आयोजित एक सभा में भाषण दिया। इस सभा में आधी रात में भी 10,000 से भी अधिक लोग उपस्थित थे। डा. आंबेडकर बहुत विकल हो गये थे। उनका गला भर आया था और वे अपनी सिसकियां भी नहीं रोक पा रहे थे। उन्होंने बहुत ही जोरदार शब्दों में डा. खरे के मंत्रिमंडल का विरोध किया जिसने बलात्कार जैसे जघन्य अपराध को करने वाले जाफर हुसैन को छोड़ दिया था।[1]

फिर भी डा. खरे का महात्मा गांधी से मतभेद हो जाने पर जब उन्होंने अपने मंत्रिमंडल का त्यागपत्र दिया तब उनकी स्वागत सभा में वे उपस्थित थे।

इस समारोह का आयोजन 5 अगस्त को हुआ था। उस सभा में प्रजातंत्र के निर्धारण पर बोलते हुए उन्होंने कहा था, "सबको इस बारे में सोचना होगा कि प्रजातंत्र के सिद्धांत कहीं समाप्त न हो जायें। इस देश में केवल एक ही राजनैतिक दल का होना हितकारक नहीं है। चूंकि देश में एक से अधिक राजनैतिक पार्टियां नहीं हैं, इसलिए बुद्धि का विकास भी संभव नहीं हो पाता है। जहां बुद्धि का विकास न हो पाए वहां स्वतंत्रता प्राप्त करना और उसे लाभप्रद बनाना भी असंभव हो जायेगा।"

इससे पहले 4 अगस्त, 1938 को भारत सेवक समाज के हाल में डा. खरे को दावत दी गयी। इस अवसर पर अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा. आंबेडकर ने इस बारे में अपनी घोर मानसिक व्यथा व्यक्त की कि महाराष्ट्रवासी व्यक्ति पिछड़ते जा रहे हैं, "महाराष्ट्रीय लोगों ने भारत की स्वाधीनता के लिए अपने प्राण न्यौछावर किए। महाराष्ट्र ने ऐसे शूरवीर सेनानी, महान कूटनीतिज्ञ, निपुण राजनीतिज्ञ दिये हैं जिन पर संसार

1. विविधवृत्त : 27-3-1938

के किसी भी देश को गर्व हो सकता है परंतु वे इसलिए आगे नहीं बढ़ पाये कि उन्होंने व्यापार को नहीं अपनाया।"

तिलक, रानाडे, गोखले—इन नेताओं की राजनीति भले ही उत्तेजक नहीं रही हो लेकिन ये नेता अधिक प्रामाणिक, विचारप्रवर्तक और सत्यनिष्ठ थे। इन विचारों के साथ उन्होंने उत्तरदायी प्रशासन पद्धति के सिद्धांत, मुख्यमंत्री के अधिकार और अन्य बातों को समझाया। मंत्रियों को भी अपने मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी रहना आवश्यक है। पहली यात, प्रजातंत्र के लिए एक दल सत्ताधारी होता है तो दूसरा विरोधी पक्ष कहलाता है। दूसरी बात यह है कि विरोधी पक्ष को हमेशा शासकीय दल को कसौटी पर कसते रहना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट किया कि यह दोनों बातें प्रजातंत्र की प्राथमिक आवश्यकताएं हैं।[1]

उन्हीं दिनों 'चित्रा' साप्ताहिक को मुलाकात देते हुए उन्होंने लेख लिखा, "क्या गांधी महात्मा हैं ?" इस लेख में उन्होंने उपहास और व्यंग्य को अपनी लेखनी का अस्त्र बनाकर गांधीजी के महात्मापन का मनमाना मखौल उड़ाया था।

अहमदाबाद के निकट बायला गांव के अस्पृश्य समाज की दरिद्रता देखकर वे दया से द्रवित हो गये। लौटते समय खैमाभाई सभागृह में उनका भाषण हुआ जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि वे गांधीजी का विरोध क्यों कर रहे हैं। उन्होंने यह प्रश्न भी उठाया कि मुंबई और मध्यप्रदेश के मंत्रिमंडल में एक भी अस्पृश्य मंत्रीपद पर क्यों नहीं है ? 31 अक्तूबर, 1938 को निपाणी शहर में उनका भव्य स्वागत, किया गया। उन्हें 51 बैलों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर विराजमान कर उनकी शोभायात्रा निकाली गयी।

1. विविधवृत्त : 14-8-1938

35

सन् 1938 के सितंबर माह में मुंबई की विधानसभा में औद्योगिक विवाद पर बिल पेश किया गया। इस बिल के अनुसार कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में मजदूरों का हड़ताल पर जाना गैरकानूनी माना जायेगा—यह कानून बनना था। इस विधेयक का डा. आंबेडकर ने जमकर विरोध किया। उन्होंने कहा, "अगर स्वतंत्रता एक पवित्र अधिकार है तो मजदूरों के हड़ताल करने का अधिकार भी उतना ही पवित्र है। यह बिल मजदूरों की नागरिक स्वतंत्रता का गला घोंटने वाला कानून होगा।"

विधानसभा के बाहर इस कानून को 'काला कानून' कहकर उसको धिक्कारा गया। 7 नवंबर, 1938 को मिल मजदूर यूनियन और स्वतंत्र मजदूर पार्टी द्वारा इस कानून के विरोध में हड़ताल करने की रणभेरी फूंकी गई। इसकी पूर्व संध्या को रात्रि के आठ बजे यूनियन की सभा में हड़ताल की रूपरेखा तैयार की गई। इस सभा में आंबेडकर, परूलेकर, डांगे, निबकर आदि नेताओं ने भाग लिया। आंबेडकर ने भी अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं की सभा आयोजित की और हजारों स्वयंसेवकों द्वारा शहर के सब भागों में इश्तहार बांटे गये।

6 नवंबर को बंबई के कामगार मैदान में मजदूरों की जंगी सभा हुई। लगभग अस्सी हजार मजदूरों को संबोधित करते हुए डा. आंबेडकर ने कांग्रेस की नीतियों की उत्तेजनापूर्ण आलोचना की। 6 नवंबर, 1938 के दिन मजदूर नेताओं की बैठक हुई और उसमें हड़ताल समिति का गठन किया गया। इन स्वयंसेवकों में नब्बे प्रतिशत लाल चोलाधारी स्वयंसेवक स्वतंत्र मजदूर पार्टी के थे।

7 नवंबर को आंबेडकर तथा जमनादास मेहता सुबह से ही मजदूर बस्ती का चक्कर लगाते हुए उन्हें लाउडस्पीकर पर सूचनाएं दे रहे थे। मुंबई की सारी कपड़ा मिलें बंद थीं।

मुंबई की डिलाइल रोड पर पथराव की घटना हुई। पुलिस ने गोलियां चलाईं जिससे दो व्यक्ति घायल हुए। उस दिन इस काले कानून के विरुद्ध बंबई प्रदेश के सब बड़े शहरों में प्रदर्शन हुए।

शाम को कामगार मैदान में मजदूरों की अति विशाल सभा हुई। आंबेडकर ने हड़ताल की सफलता पर मजदूरों का अभिनंदन किया। उन्होंने कहा, "जब तक मजदूरों के हाथ में हुकूमत नहीं आती तब तक उनके सवाल भी नहीं सुलझाए जा सकते।"

इस हड़ताल से डा. आंबेडकर की एक कुशल मजदूर नेता के रूप में सब तरफ ख्याति फैल गयी और उनकी प्रतिभा को चार चांद लग गये। सारे मजदूर संगठनों को उन्होंने यह सबक सिखाया कि समय पड़ने पर सारे मतभेद भुलाकर मजदूरों की आम भलाई के लिए सबको एक साथ खड़े हो जाना चाहिए। आंबेडकर ने अपनी पार्टी का स्वतंत्र अस्तित्व अवश्य बनाए रखा।

इस हड़ताल की सफलता से प्रभावित होकर संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) के किसान मजदूर नेता स्वामी सहजानंद ने डा. आंबेडकर से भेंट कर किसानों की समस्याओं पर चर्चा की।

बाबासाहब के मार्गदर्शनानुसार पी. जे. रोहम ने 10 नवंबर, 1938 को मुंबई की विधानसभा में एक प्रस्ताव पेश किया, "संतति नियमन और परिवार नियोजन के लिए सरकार को जोरदार प्रचार करना चाहिए और इसके साधन सुलभता से प्राप्त हो सकने की व्यवस्था करनी चाहिए।" अस्वस्थता के कारण उस दिन बाबासाहब विधानसभा में उपस्थित नहीं रह सके। लेकिन उन्होंने उनसे भाषण की बातें सुन लीं। इस भाषण में भिन्न भिन्न देशों की जनसंख्या के आंकड़े, उन लोगों को उपलब्ध डाक्टरी चिकित्सा सुविधाएं, वहां होने वाली मृत्यु संख्या का अनुपात इत्यादि विषयों पर तुलनात्मक विचार प्रस्तुत किया गया था। साथ ही, यह दर्शाया गया था कि भारत में परिवार नियोजन की कितनी अधिक आवश्यकता है। लेकिन उस समय हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई सदस्यों ने धर्म का आधार लेकर इस प्रस्ताव का विरोध किया था। इस कारण यह प्रस्ताव अस्वीकार हो गया। जिन दिनों परिवार नियोजन पर बात करना भी अपवित्र समझा जाता था, उस समय आंबेडकर ने जो साहस दिखाया था वह प्रशंसनीय है। इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करवाने में भारत के भवितव्य के विषयों में उनकी हार्दिक लगन और सूक्ष्म दृष्टि भी दृष्टिगोचर होती है।

इसी साल श्री जी. आर. प्रधान ने पीएच. डी. की उपाधि के लिए लिखा गया प्रबंध पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। उसका शीर्षक था—"अनूटचेबल वर्कर्स आफ बांबे सिटी।" इस पुस्तक के आमुख में डा. आंबेडकर लिखते हैं, "लेखक ने अपने प्रबंध में सत्य परिस्थिति का सुंदर चित्रण किया है। यदि लेखक ने स्पृश्य तथा अन्य धर्मावलंबी मजदूरों के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया होता तो यह समझना सरल हो जाता कि धर्म परिवर्तन करने के बाद उनकी हालत में क्या अंतर हो सकता है।"

कर्जदारों को साहूकारों के पाश से ऋण मुक्त कराने के लिए डा. आंबेडकर ने इन्हीं दिनों "ए बिल टु रेग्युलेट मनीलेंडर्स एक्ट" नामक बिल विधानसभा में पेश किया था। इस बिल में साहूकारों के लिए अनुज्ञा पद्धति तथा कर्ज देने के व्यवहार पर अनेक भांति के बंधन सुझाए गये थे।

36

सन् 1939 के जनवरी माह में महाड़ गांव में किसानों का विशाल सम्मेलन किया गया। इस सम्मेलन में भाषण देते हुए डा. आंबेडकर ने सरदार पटेल द्वारा मुख्यमंत्री खेर को एक महाराष्ट्रीयन कहकर उनका अनादर करने के लिए, बहुत कड़े शब्दों में उन्हें धिक्कारा।

मुंबई लौटने के बाद उन्होंने 'समता सैनिक दल' के स्वयंसवेकों द्वारा किए गए कार्यों के लिए उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। यह संगठन डा. आंबेडकर ने ही युवकों के लिए प्रारंभ किया था और अब स्वयंसेवी सैनिक पथक को समता सैनिक दल नाम दिया था। उन्होंने अपने भाषण में यह भी बताया कि मुख्यमंत्री खेर और सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी उनके कार्यों की सराहना की है।

उन दिनों राज्य संघ की योजना पर समस्त भारत में चर्चा का जोर था। पुणे की 'गोखले अर्थशास्त्र संस्था' ने डा. आंबेडकर को इस योजना पर 29 जनवरी, 1939 को भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने अपने दो घंटे के व्याख्यान में सावधान करते हुए समझाया कि इस राज्य संघ शासन में रियासतों के प्रतिनिधि अंग्रेजों के एजेंट होंगे। वहां के निवासी केवल रियासती प्रजा रहेंगे। राज्य संघ का उन पर कोई अधिकार नहीं रहेगा। यह एक खतरा है। "हमें केंद्रीय शासन प्रणाली चाहिए", रक्षा और वैदेशिक विभाग राज्य संघ के अधिकार में रहना चाहिए," इत्यादि विषयों पर विचार प्रकट करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा, "इस नियोजित राज्य संघ के कारण हमारा स्वराज्य नहीं रह पाएगा।" रानाडे युग प्रकाश का युग था। लेकिन यह गांधी युग है अंधकार का युग है।" साथ ही उन्होंने दावे के साथ यह भी कहा कि राजनीति में विद्या के साथ अध्ययन भी बहुत आवश्यक है। उनका यह भाषण बाद में "फेडरेशन वर्सेस फ्रीडम" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था।

7 नवंबर, 1938 की हड़ताल के गोलीकांड की जांच करने के लिए एक समिति नियुक्त की गयी। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में हड़तालियों को दोषी ठहराया। समिति के विवरण पर विधानसभा में आलोचना करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "स्वराज्य का अर्थ अब गोलीबारी का शासन हो गया है। तात्पर्य यह है कि जनता मुंह बंद करके

देखे और मुस्कुराये। यदि यही इसका मतलब हो तो फिर यह स्वराज्य नहीं बल्कि एक अभिशाप है।"

फरवरी 1939 से राजनैतिक सुधारों के लिए राजकोर्ट में आंदोलन प्रारंभ हुआ था। सुभाषचन्द्र बोस और महात्मा गांधी के मतभेद चरम सीमा तक पहुंच चुके थे।

अप्रैल 1939 में राजनैतिक सुधारों पर विचार करने के लिए संगठित की गई समिति में अपना एक प्रतिनिधि रखा जाये—इस मांग का समर्थन करने के लिए राजकोट की अस्पृश्य जनता ने बाबासाहब आंबेडकर को निमंत्रित किया था। बाबासाहब ने राजकोट के राजा ठाकुर से भेंट की। रात में उन्होंने अस्पृश्यों की एक सभा को संबोधित किया। दूसरे दिन उन्होंने गांधी जी से भेंट करके उनसे कहा, "अस्पृश्यों का एक प्रतिनिधि समिति में लिया जाये।" लेकिन बुखार के कारण गांधीजी इस विषय पर उनसे पूरी चर्चा नहीं कर सके।

जुलाई 1939 में 'रोहिदास शिक्षण संस्थान' द्वारा आयोजित मुंबई के परेल क्षेत्र में चमार समाज की एक सभा को बाबासाहब ने संबोधित किया। इस सभा में डा. आंबेडकर ने स्पष्ट रूप से कहा, "उनका आंदोलन किसी विशेष जाति के लिए नहीं है। दलित समाज से जातिभेद को पूरी तरह निकाल फेंकना चाहिए। यह उनका निश्चित मत है।"[1]

उन्होंने मुंबई विधानसभा की 25, 26 और 27 अक्तूबर की बैठक में युद्ध के बारे में नीति निर्धारण पर की गई चर्चा में भाग लिया। जिस समय दक्षिण अमेरिका में बसे स्पेन के देशवासियों ने स्पेन साम्राज्य से पृथक होने का निश्चय किया तो उन्होंने राज्य का संविधान तैयार करने के लिए संविधान विशेषज्ञ जेरेमी बेन्थाम से कहा था। उसने बहुत प्रयत्नों से संविधान की रूपरेखा तैयार की और उसकी हजारों प्रतियां जहाज से बंडलों में भिजवाईं। लेकिन ये संविधान दक्षिण अमेरिका के लिए निरुपयोगी सिद्ध हुआ और उन्होंने उन सारी प्रतियों को अग्नि में स्वाहा कर दिया। इस उदाहरण के साथ बाबासाहब ने कहा, "शरीर पर परिधान के लिए बनाए गए सूट के समान ही संविधान भी उस देश के लिए उपयुक्त होना चाहिए। जिस तरह अध्यक्ष महोदय के दुबले पतले शरीर के कपड़े मेरे शरीर गठन के लिए उपयोगी नहीं हैं, उसी तरह जो संविधान देश के लिए उपयुक्त न हो, उससे देश को कोई लाभ नहीं पहुंच सकेगा। प्रजातंत्र का अर्थ है, बहुजन का शासन। इसलिए इस देश में शासन हिंदुओं का रहेगा। अतः इस बहुमत में अस्पृश्यों, आदिवासियों और अन्य अल्पसंख्यकों के प्रति क्या नीति अपनाई जायेगी, यह महत्वपूर्ण है।"

1. डा. आंबेडकर : रायटिंग्स एंड स्पीचेस, खंड 2, पृ. 245

अपनी व्यक्तिगत भूमिका को समझाते हुए उन्होंने कहा, "जब जब मेरे व्यक्तिगत हित और देशहित आपस में टकराए हैं तब तब मैंने देशहित को ही प्रधानता दी है। लेकिन मैं अपने समाज के प्रति निष्ठा से भी जुड़ा हुआ हूं। मैं आखिरी सांस तक अस्पृश्य समाज को कभी दूर नहीं होने दूंगा।"

नवंबर माह के पहले सप्ताह में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दिये। इस पर जिन्ना ने मुसलमानों को मुक्ति दिवस मनाने का आदेश दिया। मुंबई के भेंडी बाजार क्षेत्र में मुसलमानों ने मुक्ति दिवस के उपलक्ष में एक जंगी सभा आयोजित की। इस सभा में डा. आंबेडकर ने कांग्रेस की नीतियों की कड़ी आलोचना की।

सन् 1927 से डा. आंबेडकर ने महारों की वंशानुगत पैतृक संपत्ति को समाप्त करने का बहुत प्रयास किया, किंतु सरकार ने उस ओर कोई सहानुभूति नहीं दिखाई थी। लेकिन महार वतन अधिकार पर अधिक कर लगाया गया। इस बारे में अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए महार मांग समाज ने दिसंबर 1939 में हरिगांव में एक सम्मेलन आयोजित किया। करीब 20 हजार वतनदारों के सामने भाषण करते हुए आंबेडकर ने सरकार को चेतावनी दी कि अगर वह छह महीनों के भीतर वतनदारों को बंधुआगिरीं से मुक्त नहीं करती और उन्हें सरकारी नौकरों के समान वेतन नहीं देती तो इन वतनदारों को हड़ताल पर जाना पड़ेगा।

37

इन्हीं दिनों यूरोप में पोलैंड के सवाल को लेकर दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में भारत को भी लपेट लिया गया। सभी कांग्रेस नेताओं ने महायुद्ध में अंग्रेजों को बिना शर्त सहायक होने का आश्वासन दिया। 11 सितंबर, 1939 के दिन वायसराय ने यह ऐलान किया कि यद्यपि संघ राज्य शासन सरकार का ध्येय है फिर भी मौजूदा हालात में उसे स्थगित करने के सिवा और कोई चारा नहीं है।

डा. आंबेडकर ने युद्ध के प्रति अपनी भूमिका स्पष्ट करने वाला बयान प्रकाशित किया। उसमें उन्होंने कहा, "पोलैंड का सवाल तो एक बहाना है। लेकिन जो उनके विचारों से सहमत नहीं हैं या नहीं हो सकते उन पर अपने विचारों को थोपना जर्मनी की नीति है और वह संसार के लिए हानिप्रद है। भारत को वह मार्ग नहीं अपनाना चाहिए जिससे भारत को गुलामी की खाई में फिर गिरना पड़े। ब्रिटेन के लिए यह जरूरी है कि ब्रिटिश साम्राज्य में भारत को कौन-सा दर्जा दिया जायेगा—इस सवाल पर ब्रिटिश सरकार को साफ साफ अपना मत स्पष्ट करना चाहिए।"

14 सितंबर को कांग्रेस के नेताओं ने घोषणा की, "स्वाधीन भारतीय प्रजातंत्र अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ सुरक्षा के लिए सहयोगपूर्ण कार्य करेगा।" डा. आंबेडकर को कांग्रेस की यह नीति पसंद नहीं थी। डा. आंबेडकर की तरह ही कांग्रेस के बाहर वाले सभी नेताओं को भी यह स्वीकार नहीं था कि कांग्रेस समस्त भारतीयों का प्रतिनिधित्व करती है। बाबासाहब आंबेडकर ने एक पत्रक प्रकाशित कर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए लिखा था, "कांग्रेस का दावा फासिस्ट वृत्ति का है और यह प्रजातंत्र के लिए घातक सिद्ध होगा।"

अक्तूबर माह के पहले पखवारे में भारत के वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने भारत के 52 नेताओं से मुलाकातें कीं और उनसे चर्चा की। डा. आंबेडकर 9 अक्तूबर को उनसे चर्चा के लिए मिले। उन्होंने भावी संविधान में दलित समाज का क्या स्थान रहेगा, इस बारे में अपने विचार वायसराय के सामने रखे।

सब नेताओं से मिलने के बाद वायसराय ने एक बयान जारी किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि युद्ध समाप्त होने के बाद सभी प्रमुख दल के नेताओं की सम्मति से भारत

सरकार के कानून में संशोधन किया जायेगा। साथ ही कोई भी महत्वपूर्ण सुधार अल्पसंख्यकों की सम्मति के बिना नहीं किया जायेगा।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने यह तय कर लिया कि वायसराय की घोषणा संतोषजनक नहीं है, और सभी कांग्रेस मंत्रिमंडलों को त्यागपत्र देने का आदेश दिया। इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डा. आंबेडकर ने दिल्ली में अपना वक्तत्व्य दिया। उसमें उन्होंने साफ शब्दों में कहा, "देशभक्ति केवल कांग्रेस की ही इजारेदारी नहीं है। अन्य दलों की भी अपनी स्वतंत्र विचारधारा हो सकती है।" उन्होंने मुस्लिम लीग की नीतियों की भी आलोचना करते हुए स्पष्टता से कहा, "हमें इस बयान पर बिल्कुल यकीन नहीं है कि कांग्रेस हुकूमत में मुसलमानों पर जुल्म हुआ है।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अक्तूबर 1939 में डा. आंबेडकर से अस्पृश्यों की मांगों को समझने के लिए दो दिनों तक चर्चा की। फिर जल्द ही मुंबई प्रदेश कांग्रेस कमेटी के नेताओं के साथ भी उनकी तीन चार दिनों तक चर्चा होती रही, मगर परिणाम कुछ नहीं हुआ।

38

15 जनवरी, 1940 को इंटरनेशनल फेलोशिप के समक्ष भाषण करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "पेशवाओं के राज्य काल में दुकान से कपड़ा खरीदते समय भी कपड़ा थान से काटने के बाद भी फाड़कर दिया जाता था जिससे यह जाना जा सके कि खरीददार अस्पृश्य है।"[1]

फरवरी 1940 में डा. आंबेडकर ने मुंबई के एक पत्रकार को साक्षात्कार दिया।[2] इस भेंट में उन्होंने कहा, "जो बौद्ध धर्मी अपना धर्म त्याग कर हिंदू धर्मावलंबी नहीं बने, पूर्व प्रदेशीय ब्राह्मणों ने उन्हें यह सजा दी थी।" अपने इस सिद्धांत को उन्होंने आगे चलकर सन् 1948 में अपने ग्रंथ 'अस्पृश्य पहिले कौन थे' में विस्तार से प्रतिपादित किया है।

इन्हीं दिनों उन्होंने ह. वि. देसाई को दी गई भेंटवार्ता में भी बौद्ध धर्म के बारे में अपने विचार स्पष्टता से प्रकट किये हैं।[3] "बौद्ध धर्म में समानता और स्वाधीनता, दोनों तत्वों का समावेश है। ये तत्व ब्राह्मण वर्ण को कतई पसंद नहीं थे। यदि बौद्ध धर्म की विजय हो जाती तो समाज में जाति भेद रह ही नहीं पाता और साथ ही ब्राह्मणों का स्थान भी डावांडोल हो जाता। राजनैतिक शासन और सेना की शक्ति, दोनों की मदद से सशक्त धर्म ब्राह्मणों ने हथियाया और इसीलिए उन्हें बौद्ध धर्म का विनाश करना संभव हो पाया।" बौद्ध धर्म में अहिंसा के तत्व ज्ञान का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा, "यह भगवान बुद्ध का प्रिय तत्व ज्ञान था। शस्त्र शक्ति पास होनी चाहिए किंतु उसका उपयोग विनाशकारी नहीं होना चाहिए, न किया जाना चाहिए। जो समर्थवान है उसे अत्याचार न करने का व्रत पालन करना चाहिए। यह व्रत कमजोरों के लिए नहीं है। यह बुद्ध के तत्वज्ञान का सही अर्थ है।"

"मनुष्य के जीवन पर नियंत्रण रखने के लिए कोई धर्म तो चाहिए ही। मार्क्स का तत्वज्ञान शोषितों के लिए समाधान कारक है।" उन्होंने रूस के बारे में बोलते हुए

---

1. संजाना, जे. इ. : कास्ट एंड आउटकास्ट, पृ. 146
2. संघरक्षित : आंबेडकर एंड बुद्धिज्म, पृ. 69
3. देसाई ह. वि. : मोठ्यांचा मुलाकाती, हिरनी मोहन जी प्रकाशन, मुंबई नं. 2, पृ. 20-28

कहा, "लेखनी की एक जोरदार घसीट से आदर्श समाज की स्थापना नहीं की जा सकती। यह ध्यान रखें।" "हमारे यहां के अमीर लोगों को चित्रकला से विशेष रुचि नहीं है। चार वर्णों के चक्कर में उनकी रसिकता रफूचक्कर हो गई है।" यह इशारा देते हुए उन्होंने संगीत और हास्य के प्रति हर व्यक्ति के मन में रुचि होने की जरूरत समझाई। उन्होंने कहा, "हास्यरस एक प्रभावकारी शस्त्र है। उपहासपूर्ण हंसी से दुश्मन की धज्जियां उड़ाई जा सकती हैं। व्यंग्य में यह शक्ति है।"

महाड़ के संग्राम का स्वाधीनता दिवस हर साल मार्च में मनाया जाता था। सन् 1940 में भी डा. आंबेडकर इसे मनाने महाड़ पहुंचे। लगभग दस हजार लोगों की भीड़ के सामने भाषण करते हुए उन्होंने कहा, "अपनी शक्ति को केवल राजनैतिक और सामाजिक सवालों को हल करने में ही मत लगाइए। आर्थिक प्रश्नों की ओर ध्यान न देने से बात नहीं बनेगी।"

26 मार्च, 1940 के दिन मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में 'पाकिस्तान' बनाने का अपना प्रस्ताव पास कर दिया।

युद्ध की ज्वाला सब तरफ फैल रही थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उसकी लपटें लग रही थीं। भारत को भी उसकी आंच लग रही थी। इसी समय वायसराय ने केंद्रीय मंत्रिमंडल का विस्तार करने और एक युद्ध समिति निर्धारित करने की घोषणा की। कांग्रेस ने इस योजना का विरोध किया।

22 जून, 1940 को सुभाषचंद्र बोस ने डा. आंबेडकर से भेंट की। अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ सारे जनमत को एकत्र करने का उनका यह प्रयास था। इस मुलाकात में डा. आंबेडकर ने सुभाष बाबू से सीधे दो सवाल पूछे– "क्या आप चुनाव में कांग्रेस के विरोध में उम्मीदवार खड़े करेंगे ? और अस्पृश्यों के सवाल पर आपकी निश्चित कार्यप्रणाली क्या होगी?" पहले सवाल का उनका जवाब तो नकारात्मक था और दूसरे सवाल का उनके पास कोई निश्चित उत्तर ही नहीं था।

"दूसरे महायुद्ध में भारत बिलकुल भाग न ले", गांधीजी के इस प्रचार के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "यह तो भारत की हिफाजत के कानून को भंग करने के समान है। सब विचारवान लोगों को हिंसा के रास्ते की निंदा अवश्य करनी चाहिए, लेकिन हिंसा को पराजित करने के लिए शक्ति का उपयोग करना पाप नहीं है।"

पाकिस्तान बनाने की मांग सारे भारत में जड़ पकड़ रही थी। अभी तक किसी ने भी इस विषय पर सर्वांगीण विचार प्रकट करने वाला प्रभावी ग्रंथ नहीं लिखा था। सन् 1940 के अंत में डा. आंबेडकर का 'थाट्स ऑन पाकिस्तान' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ ने भारत के राजनैतिक जीवन में जोरदार धमाका पैदा कर दिया। भारत

के हिंदुओं को शांति से जीने के लिए भारत के हिंदुस्तान और पाकिस्तान दो भाग कर देने चाहिए—यह सिद्धांत उन्होंने अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया है। "हिंदुओं को मन में यह डर नहीं रखना चाहिए कि पड़ोस के मुस्लिम राष्ट्र हम पर धावा बोल देंगे, क्योंकि वर्तमान युद्धतंत्र के कारण देश की भौगोलिक सीमा का आज की दुनिया में कोई महत्व नहीं है। सुरक्षित सीमा की अपेक्षा भारत के प्रति निष्ठा रखने वाली गैर मुसलमानों की फौज हिफाजत के लिहाज से ज्यादा अहम है।" उन्होंने सुझाया कि पाकिस्तान बनाने से पहले पाकिस्तानी हिस्से के हिंदू तथा हिंदुस्तान के मुसलनमानों की अदला बदली हो जानी चाहिए। मुसलमान समाज मूल से ही धार्मिक प्रवृत्ति रखने वाला है और वह समाज सुधार का विरोधी है। मुसलमानों के द्वारा इस्लाम को हमेशा से उपयोगी और जगत में फैला हुआ धर्म माना जाता है। उनकी रीति और उनका भाईचारा मुसलमानों तक ही सीमित है। डा. आंबेडकर ने अपने इन विचारों को ग्रंथ में स्पष्टता से प्रकट किया है।

उन्होंने तुर्किस्तान, मिस्र आदि देशों के उदाहरण देते हुए यह साफ साफ समझाया है कि मुसलमानों को पाकिस्तान बनाने देना किस तरह से हिंदुओं के लिए हितकर होगा। केंद्रीय शासन सशक्त करने के लिए भारत का विभाजन आवश्यक है। अन्यथा "भारत की स्वाधीनता सदा ही संकट में रहेगी।" विचार, आशय, विद्वत्ता, ज्ञान और जानकारी से भरा हुआ यह ग्रंथ आधुनिक भारत की राजनैतिक घटनाओं को सही परिस्थितियों में प्रस्तुत करने वाला इतिहास है। डा. आंबेडकर की बुद्धिमत्ता, राष्ट्रभक्ति और हिंदू समाज की नियति के लिए चिंता--इन सारी विशेषताओं का सुंदर मिलाप इस ग्रंथ में दृष्टिगोचर होता है। 'पाकिस्तान' विषय पर यह एक अधिकारपूर्ण ग्रंथ है, इसे महात्मा गांधी और जिन्ना साहब ने भी मान्यता प्रदान की है।[1] इस ग्रंथ का दूसरा संस्करण 'पाकिस्तान ऑर दि पार्टिशन ऑफ इंडिया' नाम से 1945 में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि भारत के राजनैतिक क्षितिज पर यह पाकिस्तान की मांग के कारण लगा हुआ ग्रहण समझदारी से छूटे, इस इरादे से आंबेडकर ने इस ग्रंथ की रचना की थी, फिर भी सरकार, कांग्रेस या मुस्लिम लीग—सबने उनके सुझावों की ओर ध्यान नहीं दिया। इसी कारण पाकिस्तान तो बना मगर लाखों हिंदू मुसलमानों को जातीय दंगों में अपनी जानें गंवानी पड़ीं। साथ ही, दोनों देशों में लोगों की अदला बदली अपने ढंग से हुई।

---

1. डा. आंबेडकर : पाकिस्तान ऑर दि पार्टिशन ऑफ इंडिया

39

महार जाति के जवानों को फौज में भर्ती किया जा सके, इसके लिए डा. आंबेडकर बहुत पहले से ही प्रयत्नशील थे। सन् 1941 के प्रारंभ में उन्होंने इस तरफ फिर हलचल शुरू कर दी। महार जाति रणबांकुरों की कौम है। लेकिन उन्हें 'मार्शल रेस' मानने से इंकार कर 1892 के बाद उनको फौज में भरती करना बंद कर दिया था। लेकिन युद्ध में हर बार उनका उपयोग किया गया था। इसलिए डा. आंबेडकर ने उनका रेजिमेंट दुबारा तैयार किया जाए, इस बारे में गवर्नर महोदय से निवेदन किया। सरकार ने महारों की फौज तैयार करने का निश्चय किया। डा. आंबेडकर ने महार लोगों को यह आह्वान किया कि अपने देश की रक्षा करने और अपने हित के लिए इस अवसर का लाभ उठाकर महार युवक फौज में भर्ती हों। उनकी इस पुकार पर अनेक युवक सेना में भर्ती हुए।

जुलाई 1941 में वायसराय ने एक संरक्षण सलाहकार समिति का गठन किया। जमनादास मेहता, रामराव देशमुख के साथ ही बाबासाहब आंबेडकर को भी इस समिति के लिए चुना गया। लेकिन केंद्र सरकार के कार्यकारी मंडल में सदस्यों की संख्या बढ़ाकर भी दलितों के प्रतिनिधियों को उसमें स्थान नहीं दिया गया, इसलिए डा. आंबेडकर ने भारत मंत्री लार्ड एमरी को तार भेज कर अपना विरोध व्यक्त किया।

अगस्त 1941 को सिन्नर शहर में वतनदार महारों का एक सम्मेलन हुआ। बाबासाहब इस सम्मेलन में उपस्थित थे। इस अधिवेशन में अपने भाषण में उन्होंने—किस प्रकार यह 'वतनदारी' नष्ट की जा सकती है, इस बारे में हमें क्या करना चाहिए, इसको स्पष्ट किया। महार 'वनतदारों' पर लगाया गया कर यदि वापस नहीं लिया गया तो फिर कर बंदी के लिए आंदोलन किया जायेगा। यह चेतावनी उन्होंने दूसरी बार दी थी।

सिन्नर से लौटने के बाद उन्होंने मुंबई के गवर्नर राजर लुम्ले से मुलाकात लेकर महार मांग 'वतनदारों' के सवाल पर एक छपा हुआ प्रतिवेदन उन्हें दिया। उस प्रतिवेदन में उन्होंने संकेत दिया था कि महार वतनदार अपनी मांगों के लिए चीख पुकार कर रहे हैं। अगर उनके इस दुख को दूर नहीं किया गया तो वे हड़ताल करेंगे। इस सारे

आंदोलन का बहुत जल्द असर हुआ और थोड़े ही दिनों में वतनदारों पर लादा गया अन्यायी टैक्स आदेश सरकार ने वापिस ले लिया। इस तरह डा. आंबेडकर ने इस सवाल पर विजय प्राप्त की।

इसके बाद फौज में भरती प्रारंभ करवाने के बारे में डा. आंबेडकर के जोश भरे भाषण जगह जगह होने लगे। मुंबई की एक सभा में उन्होंने ऐलान किया, "अगर कहीं नाजियों ने इस देश पर कब्जा कर लिया तो फिर देश में न कार्यकारी समिति रहेगी, न प्रजातंत्र।" उनके भाषणों का रुख इसी बात की ओर संकेत कर रहा था कि कांग्रेस को सरकार के साथ सहयोग करना चाहिए। उन्होंने यह राय भी जाहिर की कि महार नौजवानों को सेना के अधिकारियों की परीक्षाएं पास करनी चाहिए।

सन् 1941 के दिसंबर माह में राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के दूसरे अधिवेशन के लिए वे दिल्ली पधारे। इस समिति का तीसरा अधिवेशन 1942 के फरवरी माह में हुआ था। इसमें भी डा. आंबेडकर ने भाग लिया था। ऐसा लगता है, इन्हीं दिनों उन्होंने अपने ग्रंथ 'व्हाट हिंदूज हैव डन टू अस' का लेखन कार्य प्रारंभ कर दिया था।[1]

सन् 1942 के फरवरी माह की 18 और 20 तारीख को मुंबई के वागले हाल में वसंत व्याख्यान माला के अंतर्गत डा. आंबेडकर के ग्रंथ, 'पाकिस्तान के बारे में विचार', पर तीन दिनों तक चर्चा चलती रही। आचार्य मो. वा. दोदे अध्यक्ष थे। चर्चा का उत्तर देते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "लोगों से इतिहास भूलने का आग्रह करना गलत बात है। जो लोग इतिहास भूल जाते हैं, वे नये इतिहास का निर्माण नहीं कर सकते। भारतीय सेना में मुसलमानों की प्रमुखता कम कर इस फौज में एकरूपता लाना आवश्यक है। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि भले ही सवर्ण हिंदुओं से मेरी लड़ाई है, फिर भी अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए मैं अपने प्राण न्यौछावर कर दूंगा।"

भारत की राजनैतिक उलझनों को सुलझाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सर स्टेफर्ड क्रिप्स की नियुक्ति की। उनके भारत पधारने पर डा. आंबेडकर ने अपनी योजना उन्हें सादर दी। अपनी योजना में उन्होंने जिन्ना की योजना का विरोध करते हुए लिखा था कि कार्यकारिणी, विधान मंडल और न्यायालयों में तथा सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को पचास प्रतिशत स्थान दिये जायें, जिन्ना की यह मांग बहुत अन्यायपूर्ण है। उस योजना को अस्वीकार करने के लिए उन्होंने बड़े लाट साहब का अभिनंदन किया।

---

1. कीर (मराठी) : पृ. 351; इसी ग्रंथ को 'व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव डन टु द अनटचेबल्स'; के नाम से दुबारा प्रकाशित किया गया, कीर का यह कहना सही प्रतीत नहीं होता है । इस बारे में कुछ अनजाने प्रकरण पांचवें खंड में सम्मिलित किए गए हैं। उनका विषय सामाजिक और धार्मिक है, राजनीतिक नहीं है।

स्टेफर्ड क्रिप्स मिशन मार्च 1942 में भारत आया था। इस शिष्टमंडल ने कांग्रेस, हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों से चर्चा की। एम. सी. राजा के साथ डा. आंबेडकर ने 30 मार्च को शिष्टमंडल से भेंट की। क्रिप्स मिशन की योजनानुसार दूसरा महायुद्ध समाप्त होते ही संविधान समिति बनने वाली थी। मगर कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा–तीनों संस्थाओं ने इस क्रिप्स योजना को अस्वीकार कर दिया। आंबेडकर और उनके सहयोगियों ने आपस में चर्चा करके अपने विचार क्रिप्स को सूचित किए। उन्होंने अपने निवेदन में स्पष्ट किया कि यह योजना अस्पृश्य समाज के हाथ पैर जकड़कर उसे हिंदू शासकों को सौंपने का प्रयास है। यदि उनकी सम्मति लिए बिना उन पर कोई योजना थोपी गयी तो यह उनके साथ सरासर विश्वासघात होगा। उनकी यह निश्चित धारणा ब्रिटिश सरकार तक पहुंचा दी जाये।

14 अप्रैल, 1942 को डा. आंबेडकर का जन्मोत्सव हर साल की तरह इस बार भी बहुत धूमधाम से मनाया गया। मुंबई में स्वतंत्र मजदूर दल और अन्य 45 संस्थाओं ने मिलकर यह जयंती उत्सव दस दिनों तक मनाया। जगह जगह सभा सम्मेलनों में उनके दीर्घायु होने की हार्दिक शुभकामनाएं की गईं। 19 अप्रैल, 1942 के दिन 'रोहिदास तरुण सुधारक संघ' के महिला मंडल का बाबासाहब ने उद्घाटन किया। अपने भाषण में उन्होंने कहा, "दूसरों की सहायता पर जीना मत सीखो, स्वावलंबी बनो।" अपने उपेदशात्मक भाषण में उन्होंने महाभारत से कच का उदाहरण देते हुए समझाया, "जिस तरह देवयानी का लोभ त्याग कर कच ने संजीवनी विद्या प्राप्त की और अंत में वह अपने दल से जा मिला उसी तरह तरुणों को चाहिए कि अपने समाज को कभी न भूलें।"

आंबेडकर जयंती का प्रमुख समारोह 19 अप्रैल के दिन चौपाटी पर संपन्न हुआ। कामगार मैदान पर आंबेडकर को उनके जन्मदिवस के उपलक्ष में थैली अर्पित की गयी। अपने स्पष्टवादी भाषण में उन्होंने विशाल जनसमुदाय को चेतावनी देते हुए कहा, "यदि अपनी श्रद्धा और भक्ति के बल पर हम किसी को देवताओं के सिंहासनों पर आरूढ़ करते हैं, तो उससे समाज का पतन ही होता है। दुनिया में कोई भी दैवी गुण लेकर पैदा नहीं होता। स्वयं उसके ही प्रयत्नों से उसकी उन्नति होती है या अवनति होती है।" अस्पृश्यों की प्रगति का सिंहावलोकन करते हुए उन्होंने कहा, "यदि अंग्रेजी शासन ने अपनी किसी भी योजना के द्वारा अस्पृश्यों के न्यायोचित अधिकारों की अवहेलना की तो हम उस योजना का कड़ा विरोध करेंगे। यदि हिंदुओं ने हमारा सहयोग चाहा तो हम उनके कंधे से कंधा मिलाकर साथ लड़ेंगे।"

40

5 जुलाई, 1942 को दिल्ली में डिफेंस काउंसिल की मीटिंग में वे उपस्थित थे और 11 जुलाई को वापिस लौटे। उसी रात उन्हें मुंबई के रेडियो क्लब की ओर से दावत दी गयी। इस अवसर पर भाषण करते हुए उन्होंने कहा, "मैं गरीबों में पैदा हुआ, पला और घूमा फिरा। इसी तरह मैं गीली जमीन पर तख्ता डालकर सोया भी हूं। मैं उनके दुखों को अच्छी तरह जानता हूं। मैं अपने मित्रों और सारे लोगों के लिए हमेशा वैसा ही रहूंगा जैसा पहले था और मेरे दिल्ली के बंगले के दरवाजे सबके लिए खुले रहेंगे।" जोकिम अल्वा के शब्दों में, "वे कीर्ति के ऊंचे शिखर पर क्यों न पहुंच जायें, अपने पुराने दोस्तों और पुरानी जगहों की याद उनके दिल में सदा बनी रहेगी।"[1]

दूसरे ही दिन मुंबई नगरपालिका मजदूर यूनियन और स्वतंत्र मजदूर दल की ओर से डा. आंबेडकर का सम्मान किया गया। उनके उद्‌गार थे, "मेरा यश, मेरे सहयोगियों के सहयोग पर ही अधिकतर अवलंबित रहेगा।" भट हाई स्कूल में कोंकण जिले के किसानों को संबोधित करते हुए उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा, "भारतीय किसानों की भलाई के लिए चलाये जाने वाले आंदोलन में, मुश्किल से मुश्किल मौके पर भी कदम पीछे न हटाने की मेरी नीति निर्धारित है।" मजदूर संगठन को छोड़कर अन्य कार्यों के लिए दलितों को अपना अलग संगठन खड़ा करना बहुत आवश्यक है—इसके महत्व को समझाते हुए उन्होंने कहा, "अगर किसी भी इमारत की नींव कमजोर रही तो उस इमारत की भव्य संरचना ढह जाने की अधिक संभावना रहती है। अभी भी भारतीय मजदूर जातीयवादी है। इसलिए इस तरह का अलग संगठन बनाना आवश्यक हो गया है।"

सर क्रिप्स से जब डा. आंबेडकर मिले तो उन्होंने यह प्रश्न किया, "आप मजदूरों के नेता हैं कि दलित समाज के ?" भले ही डा. आंबेडकर अस्पृश्यों के प्रश्न सुलझाने, उठाने, या कार्यान्वित करने में प्रयत्नशील थे, फिर भी उनके दल का नाम 'स्वतंत्र मजदूर दल' था। उस दल का कार्यक्षेत्र केवल मध्यप्रदेश, बरार और मुंबई का इलाका ही था। इसलिए एक अखिल भारतीय स्वरूप का अस्पृश्य संगठन खड़ा रहना बहुत आवश्यक हो गया था। आंबेडकर ने समस्त भारत के अस्पृश्य नेताओं को 30-31 मार्च, 1942

---

1. जोकिम अल्वा : पृ. 26

को दिल्ली में आमंत्रित किया। इस बैठक में यह निश्चित किया गया कि 'अखिल भारतीय दलित समाज' का पहला अधिवेशन 19-20 जुलाई, 1942 को नागपुर में किया जाये। भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में 1942 का साल एक महत्वपूर्ण वर्ष माना जाता है। इस वर्ष में ही महात्मा गांधी ने भारतवासियों को एक नारा दिया—"अंग्रेजों ! भारत छोड़ दो।" इस नारे की गूंज सारे भारत में फैल गयी थी। उसकी प्रतिक्रिया सब तरफ अंकित हुई। अस्पृश्य समाज की दृष्टि से भी यह साल स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। हजारों साल की दासता के बाद पहली बार एक अस्पृश्य व्यक्ति को भारत की राजधानी में मंत्रीपद पर नियुक्त किया गया। वायसराय की काउंसिल में डा. आंबेडकर को 2 जुलाई, 1942 को सदस्य रूप में नियुक्त करने की लॉर्ड लिनलिथगो ने घोषणा की।

मजदूर लोगों की समस्याओं और असुविधाओं को डा. आंबेडकर ने बहुत निकटता से देखा था। वे मजदूरों के नेता थे। राज्य व्यवस्था में किस प्रकार अर्थशास्त्र का उपयोग किया जा सकता है—इसका ज्ञान उन्हें प्रारंभ से ही था। उन्हें यूरोप, अमेरिका और भारत की विधान सभाओं की कार्यप्रणाली का भी अनुभव था। इसलिए भारतीय मजदूरों की भलाई के लिए मूलभूत सुधार करने के लिए कानून बनाने का उन्होंने मन से निश्चय कर अपने काम का प्रारंभ किया।

नागपुर अधिवेशन के परिषद की जिम्मेदारी स्वतंत्र मजदूर दल के प्रांताध्यक्ष श्री दशरथ पाटील को सौंपी गई। श्री. टी. जी. मेश्राम परिषद के स्वागताध्यक्ष थे।

इस परिषद में सारे भारत से प्रतिनिधि पधारे थे। डा. आंबेडकर, एन. शिवराज के साथ 18 जुलाई की सुबह मेल से नागपुर पहुंचे। हजारों लोगों ने नागपुर स्टेशन पर बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया। 'समता सैनिक दल' के पांच हजार स्वयंसेवकों ने उन्हें बैंड बाजे के स्वर निनाद में गार्ड आफ ऑनर दिया। इस मानवंदना के बाद उनका अनुशासनपूर्ण शानदार जुलूस निकाला गया। यह शोभा यात्रा परिषद के सभा मंडप तक पहुंची। चूंकि डा. आंबेडकर को वायसराय काउंसिल में समाविष्ट किया गया था, इसलिए उनके स्थान पर एन. शिवराज को परिषद का अध्यक्ष बनाया गया।

19-20 जुलाई, 1942 को नागपुर में अखिल भारतीय दलित फेडरेशन का अधिवेशन चल रहा था। बाबासाहब ने यहीं से उन्हें मंत्रिमंडल में नियुक्त करने के लिए वायसराय महोदय को धन्यवाद देते हुए अपनी स्वीकृति भेजी थी।

इस परिषद में लगभग पचहत्तर हजार लोग उपस्थित थे। उनके समक्ष भाषण करते हुए डा. आंबेडकर ने गोलमेज परिषद से लेकर इस अधिवेशन तक अस्पृश्यों को एक स्वतंत्र समुदाय के रूप में मान्यता दिलवाने के लिए जो प्रयत्न किये गये, उनका विस्तृत इतिहास प्रस्तुत किया। मुस्लिम लीग ने अल्पसंख्यकों से अलग अपना एक स्वतंत्र

आंदोलन प्रारंभ कर दिया है, इसलिए उन्होंने कहा कि अस्पृश्यों को भी अपना स्वतंत्र संगठन बनाना ही चाहिए। अस्पृश्य समाज के लिए स्वतंत्र बस्तियां और शिक्षा संस्थाएं बनाने के लिए निधि की समुचित व्यवस्था, सरकारी नौकरियों, विधि विभाग, पुलिस विभाग आदि क्षेत्रों में निश्चित अनुपात में सुरक्षित स्थान इत्यादि मांगों को उन्होंने इस अधिवेशन में रखा। लगातार डेढ़ घंटे तक अपने धाराप्रवाह मराठी भाषण से उन्होंने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।

इसी अधिवेशन की स्वागत सभा की ओर से डा. आंबेडकर को मानपत्र अर्पित किया गया। अपने सम्मान का उत्तर देते हुए उन्होंने अपने भाषण में पहले यह बताया कि इंग्लैंड में मानपत्र देने की प्रथा किस तरह राज्य निष्ठा से उत्पन्न हुई। इसका मनोरंजक इतिहास सुनाने के बाद अपने भाषण के अंत में उन्होंने कहा, "यह बात नहीं है कि आपको मुझसे इस आश्वासन की आवश्यकता है कि मैं आपके उद्देश्य की सिद्धि के लिए पूरे प्रयास करूंगा, फिर भी आपको मुझे वचन देना होगा कि आप हमेशा एकता और अपने अधिकारों के पक्ष में खड़े रहने, उनको प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने और विजय पाने तक कभी भी कदम पीछे न लेने का निश्चय कर चुके हैं। संग्राम मुझे जीवन में आनंद देता है, यह धारणा ही सही शक्ति है। हमारा यह संग्राम न सुरक्षा प्राप्त करने के लिए है, न संपत्ति के लिए, यह कहकर उन्होंने अपना तीन सूत्रीय संदेश दिया, "शिक्षित बनो, आंदोलन चलाओ, संगठित रहो।"

इसी पंडाल में दलित समाज की महिला परिषद सौ. सुलोचनबाई डोंगरे की अध्क्षता में संपन्न हुई। पचहत्तर हजार के उपस्थित समुदाय में पच्चीस हजार से अधिक महिलाएं उपस्थित थीं। जनरल सेक्रेटरी सौ. इंदिराबाई पाटील और स्वागताध्क्ष सौ. कीर्तिबाई पाटील ने विवरण पढ़कर सुनाया। इसके बाद डा. आंबेडकर ने अपने उपदेशात्मक भाषण में कहा, "मैं स्त्री समाज की प्रगति पर ही दलित समाज की प्रगति का मापदंड रखता हूं। महिलाओं का संगठन आवश्यक है। महिलाओं! स्वच्छ रहिये, अपने आपको दुर्गुणों से दूर रखिए, बेटियों को लिखाइए पढ़ाइए, उनके मन में महत्त्वाकांक्षाएं पैदा होने दीजिए, उनकी शादी जल्द करने की कोशिश मत कीजिए।"

'समता सैनिक दल' का अधिवेशन भी 20 जुलाई को इसी पंडाल में संपन्न हुआ। डा. आंबेडकर ने सैनिकों का मार्गदर्शन किया। उन्होंने अहिंसा के तत्व की चर्चा करते हुए कहा, "हमें तुकाराम के प्रसिद्ध अभंग का आधार लेना चाहिए। भूत, दया और दुष्टों का दलन, इनमें पहले दुष्टों का दमन करना, अधिक महत्व रखता है। चरित्र द्वारा नियंत्रित शक्ति ही हमारा आदर्श है। आप सैनिकों को नारियों और दलित वर्गों पर

होने वाले अत्याचारों और ऐसे मामलों पर ध्यान देना चाहिए।"[1] नागपुर प्रवास के समय वे कमाठी में महार रेजिमेंट में भी गये और उसके अधिकारियों के साथ बातचीत की।

दिल्ली लौटने पर उन्होंने श्री जी. टी. मेश्राम को लिखे गए पत्र में सभी कार्यकर्त्ताओं के आभार माने। "यह सम्मेलन अपनी विशेषताओं के कारण ऐतिहासिक माना जायेगा और इसके लिए मुझे गर्व है। समता दल की प्रगति को देखकर मुझे विशेष आनंद हुआ। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस परिषद में हजारों नारियों ने भाग लिया। यह दृश्य तो देवी देवताओं के देखने योग्य था। उनकी वेशभूषा, अनुशासन, साफ सुथरापन, आत्मविश्वास देखकर मैं गद्गद हो गया।" उनका पत्र इस प्रकार की भावनाओं से ओत प्रोत था।[2]

दिल्ली में महाराष्ट्र क्लब में महाराष्ट्र समाज, ब्राह्मण महाराष्ट्र मंडल, आदि संस्थाओं की ओर से दिनांक 9 अगस्त, 1942 को डा. आंबेडकर का सत्कार किया गया। बाबासाहब ने इस अवसर पर कहा, "महाराष्ट्रवासी उदात्त चरित्र, स्वतंत्र आनबान वाला, कृतसंकल्पी और अपने कुशल व्यवहार ज्ञान के लिए प्रसिद्ध है। भले ही आज हम पिछड़ गए हों, हमें हिम्मत के साथ आगे बढ़ना चाहिए। मुझे अपने आपको महाराष्ट्रीय कहलाने का अभिमान है।"[3]

अप्रैल माह में बाबासाहब मुंबई आये। मुंबई क्षेत्र की लेबर फेडरेशन की ओर से 11 अप्रैल, 1943 को उनका सत्कार किया गया। सत्कार का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, "भारत में एक सर्वव्यापी लेबर पार्टी स्थापित कर हमें लेबर दल की सरकार भारत में शासनारूढ़ करने को अपना ध्येय बनाना चाहिए। यह जितनी जल्दी हो पायेगा उतनी ही जल्दी मजदूरों की अधिक भलाई होगी।"

दिल्ली के लिए रवाना होने से पहले डा. आंबेडकर ने 'टाइम्स आफ इंडिया' के संवाददाता को भेंट देते हुए कहा, "जिस समय बर्बर लोग भारत की सरहद पर अपना डेरा डाले हुए हैं, ऐसे समय देश के कायदे कानून की धज्जियां उड़ाना या उसकी सुचारु व्यवस्था को कमजोर करना निरा पागलपन है। यदि ब्रिटिश प्रजातंत्र विजयी हुआ तो भारतीय स्वाधीनता को कोई रुकावट नहीं होगी।" "गांधीजी पर की गई यह आलोचना अंग्रेजी हुकूमत की तरफदारी करने वाली है", पत्रकारों द्वारा की गई यह टिप्पणी आश्चर्यजनक नहीं थी। डा. आंबेडकर हमेशा यह मानते आये थे कि स्वतंत्रता पाने के संवैधानिक मार्ग में कानून भंग करना नहीं आता।

---

1. कोसारे : पृ. 418-19
2. वही : पृ. 4707-78 ; पत्र दिनांक 3-8-1942
3. ज्ञानप्रकाश : दि. 20-8-1942

8 अगस्त, 1942 की रात को कांग्रेस ने अपने असहयोग आंदोलन की घोषणा की। लॉर्ड लिनलिथगो के मंत्रिमंडल की बैठक में जब यह प्रस्ताव रखा गया कि सारे कांग्रेसी नेताओं को अंडमान में कैद रखा जाये तो आंबेडकर ने चेतावनी देते हुए कहा, "उन्हें कैद कर अंडमान रवाना करने से अंग्रेजी शासन को बहुत बड़ा कलंक लगेगा। शासन को प्रजातंत्र के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए।"[1]

1. शंकरानन्द शास्त्री : प्रबुद्ध भारत : 14-4-1957

41

"कांग्रेस का प्रस्ताव सारे देश को अस्त व्यस्तता की परिस्थिति में डालकर अराजकता पैदा कर देगा। इसलिए यह देश की व्यवस्था के लिए एक चुनौती है।" यह प्रस्ताव वायसराय की काउंसिल ने पास किया। सारे देश में तुरंत कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारियां शुरू हो गईं। कार्यकर्ता जेल में ठूंसे जाने लगे। देश भर में सरकार का दमनचक्र शुरू हो गया।

श्रम मंत्री बनने के बाद डा. आंबेडकर का पहला सत्कार समारोह दिल्ली में 23 अगस्त, 1943 को 'दलित वर्ग हितकारिणी' संस्था की ओर से संपन्न हुआ।[1] मंत्रिपरिषद में शामिल होने के अपने हेतु को समझाते हुए उन्होंने कहा, "अस्पृश्य समाज को बराबरी का दर्जा दिलवाने में सफलता पाना ही मेरी उपलब्धि है। आप लोग दूसरों के गुलाम न रहें, इसके लिए शासन की बागडोर आपको अपने हाथ में लेनी होगी। यदि हमारे समाज का भवितव्य सुधारने के मेरे प्रयत्न सफल न हो पाने का मुझे तनिक भी संदेह हुआ तो मैं इस अधिकारी पद से चिपका नहीं रहूंगा वरन् तुरंत त्यागपत्र देकर बाहर आ जाऊंगा।

उन्होंने नागपुर के श्री एस. एन. कोसारे को पत्र लिखकर उन्हें यह राय दी कि वे कांग्रेस द्वारा प्रेरित मजदूर संगठन के अधिवेशन में भाग न लें।

डा. आंबेडकर ने 13 नवंबर, 1942 को आल इंडिया रेडियो के मुंबई केंद्र से "भारतीय मजदूर और दूसरा महायुद्ध" विषय पर एक वार्ता प्रसारित की। "यह महायुद्ध इंसान के साथ और एक देश का दूसरे देश के साथ कैसा रिश्ता होना चाहिए, इसे दर्शाता है। यदि नाजियों की विजय हुई तो स्वतंत्रता का गला घुट जायेगा। समता अस्वीकार कर दी जायेगी। केवल स्वराज्य पाकर भी उसका कुछ उपयोग नहीं हो पायेगा। मजदूर वर्ग को 'भारत छोड़ो', नारे की जगह 'नवभारत का निर्माण करो' की मांग करनी चाहिए। हिंसा के आगे नतमस्तक होकर पाई हुई शांति कभी भी सच्ची शांति नहीं हो सकती। यदि युद्ध को सदा के लिए समाप्त करना हो तो युद्ध जीतकर सही विराम संधि प्रस्थापित करनी होगी।" उन्होंने अपना यह मत प्रतिपादित किया था।

---

1. मार्न : पृ. 4

कैनेडा के क्यूबेक शहर में 'इंस्टिट्यूट आफ पैसोफिक रिलेशन्स' नामक संस्था ने दिसंबर 1942 में अपना आठवां अधिवेशन आयोजित किया था। इस परिषद के लिए डा. आंबेडकर ने एक निबंध "अनटचेबल्स एंड द इंडियन कांस्टिट्यूशन" भिजवाया था। अपने इस निबंध में उन्होंने यह समझाया था कि किस तरह यह अस्पृश्यों का प्रश्न एक राष्ट्रीय मसला है। उसकी वर्तमान स्थिति दूसरे देशों की गुलामी की हालत से भी गयी गुजरी है। उनकी समस्याओं की तरफ कोई भी ध्यान नहीं दे रहा है। उन्होंने ऐसे ही अन्य सवालों को भी समझाने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने इस निबंध में, भारत की ग्राम व्यवस्था में भी आमूल परिवर्तन करना कितना आवश्यक है, अस्पृश्यों को विधानसभाओं, कार्यकारिणी और विधि संस्थाओं में प्रतिनिधित्व मिलना जरूरी है, अस्पृश्यों के लिए स्वतंत्र आवास व्यवस्था होनी चाहिए, आदि बातों को स्पष्ट करते हुए यह समझाया है कि महात्मा गांधी, नेहरू वगैरह की अस्पृश्यों के प्रति अपनाई गई नीति अस्पृश्यों की भलाई की पोषक नहीं है।[1] अपने इसी निबंध को उन्होंने आगे चलकर 'मिस्टर गांधी एंड द इमैन्सीपेशन आफ अनटचेबल्स' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया था।

16 जनवरी, 1943 को सूरत शहर में दलित समाज की ओर से डा. आंबेडकर को मानपत्र दिया गया। दोपहर में नागरिकों के दल के सामने दिये गये अपने भाषण में उन्होंने सैनिक्र शिक्षा के महत्व को समझाया।

18 जनवरी, 1943 को पुणे जिला लोकल बोर्ड द्वारा उन्हें मानपत्र दिया गया। इसी दिन शाम को चार बजे अहिल्याश्रम में पुणे के कालेजों में पढ़ने वाले अस्पृश्य विद्यार्थियों की ओर से उनका स्वागत किया गया।

19 जनवरी, 1943 के दिन 'गोखले इंस्टिट्यूट आफ एकानामिक्स' संस्था की ओर से न्यायमूर्ति रानाडे के 101वें जन्मदिवस के उपलक्ष में डा. आंबेडकर का भाषण हुआ। अपने भाषण में उन्होंने "महापुरुष किसे कहा जाए"—विषय पर चर्चा की। कार्लाइल ने अपने ग्रंथ 'हीरो एंड हीरो वरशिप' में किसे महापुरुष कहा जाये, इस बारे में जो कसौटियां बताई हैं, उनका विश्लेषण कर डा. आंबेडकर ने यह समझाया कि ये कसौटियां किस तरह अपर्याप्त हैं। "जो नेता समाज के दुर्गुणों को दूर करने के लिए दिन रात पूरी लगन से जुटा रहता है, उसे महापुरुष कहना चाहिए।" यह कहकर उन्होंने न्यायमूर्ति रानाडे किस प्रकार एक महापुरुष सिद्ध होते हैं इसका विश्लेषण किया। उन्होंने आगे कहा, "महात्मा गांधी और जिन्ना दो ऐसे नेता हैं, जिन्होंने राजनीति को अपना निजी मामला बना लिया है। दोनों में अपने आपको किस तरह बड़प्पन प्राप्त हो, इसकी होड़

---

1. डा. आंबेडकर : अनटचेबल्स एंड द इंडियन कांस्टिट्यूशन, न्यूयार्क, 1962

लगी हुई है। इनके विभूति महात्म्य की पताका फहराने के लिए देशहित की बलि दी जा रही है।" अंत में उन्होंने कहा कि जिस पीढ़ी ने रानाडे को अपना गुरु माना, वह अधिक समझदार थी, इसे स्वीकार करना होगा।

अगस्त की क्रांति से सारे देश में लूटमार, आगजनी का माहौल जोश पकड़ चुका था। लेकिन यह अस्तव्यस्तता शीघ्र ही समाप्त हो गयी। गांधी जी को आगा खान पैलेस में नजरबंद कर रखा था। उन्होंने वहां 20 फरवरी से अपना उपवास प्रारंभ किया। उनके अनशन से वायसराय के मंत्रिमंडल के भारतीय सदस्यों पर दबाव पड़ने लगा और कुछ सदस्यों ने अपना त्यागपत्र दे दिया। डा. आंबेडकर पर इस दबाव का कोई असर नहीं हुआ। उन्हें विश्वास था कि शासन में रहकर वे भारतीयों के लिए कुछ अवश्य कर सकेंगे।

मुंबई की 'महाराष्ट्र चेंबर आफ कॉमर्स' संस्था में 10 मई, 1943 को डा. आंबेडकर का भाषण हुआ। उन्होंने कहा, "सारी दुनिया साम्राज्य के विस्तार, वर्ण भेद की घृणा और गरीबी—इन तीन बीमारियों से ग्रस्त है। जब भारत की औद्योगिक और आर्थिक स्थिति का विकास होगा तब साम्राज्यवाद और काले गोरों का भेदाभेद समाप्त होगा।"[1] उन्होंने इस अवसर पर यूरोपवासियों के उदाहरण दिये कि ये लोग पेशवाओं के सामने उन दिनों किस तरह घुटने टेकते थे। वे सदैव स्वतंत्र और सामर्थ्यवान भारत का स्वप्न देखा करते थे।

अपने मुंबई प्रवास के समय एक आमसभा में भाषण देते हुए डा. आंबेडकर ने कहा था,"गांधीजी के पास धन शक्ति की प्रचुरता होते हुए भी उन्होंने एक के बाद एक गलतियां कर, आज यह परिस्थिति पैदा कर दी है। देश विभाजन के कगार पर है।" उन्होंने यह बात 1943 में कही थी।[2] चार साल बाद उनका कहना राजनैतिक घटनाओं की भविष्यवाणी सिद्ध हुआ।

इसी विषय पर उन्होंने 12 मई, 1943 के दिन अपनी एक मुलाकात में अपनी राय जाहिर की, "पाकिस्तान का सवाल उनके अपने फैसले का सवाल है, इसलिए इसे उनके मत के अनुसार ही हल करना होगा जिन्हें इसके नतीजे भोगने हैं। इस वजह से (1) पाकिस्तान में बसने वाले लोगों की राय का पता लगाना होगा, (2) जिस प्रदेश में मुसलमानों की संख्या अधिक है वहां के गैर मुस्लिमों की राय जानकर यदि उन्हें पाकिस्तान जाना मंजूर न हो तो उन्हें उनकी राय को दर्ज कर, ऐसे जिलों की सीमाएं, सीमा समिति स्थापित कर, उससे निश्चित करवानी होंगी और इन इलाकों के मुसलमानों

---

1. कीर (म) : पृ., 372
2. माने : पृ. 80

को या तो दस सालों के लिए भारत में ही रखकर, उन्हें फिर कहां बसाया जाए, इसका निर्णय लेना होगा, अथवा (3) पाकिस्तान की तुरंत स्थापना कर दस साल बाद जनमतसंग्रह कराकर वे लोग कहां रहना चाहेंगे, इसका फैसला करना होगा।" बाबासाहब ने इस तरह देश के सामने ये तीन तरीके पेश किये थे।

आस्ट्रेलिया के कूटनीतिज्ञ मिस्टर कर्टिन ने यह सुझाव दिया था कि ब्रिटिश साम्राज्य विषयक विचार विनिमय मंडल की स्थापना की जाये। इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए आंबेडकर ने कहा था, "हिंदुस्तान को साम्राज्य के लिए रत्ती भर भी लगाव नहीं है, क्योंकि यहां की प्रजा को अपने समान दर्जे का नागरिक समझने के लिए साम्राज्यवादी कभी तैयार नहीं होंगे।"[1]

डा. आंबेडकर को श्रम मंत्री बने लगभग पंद्रह महीने बीत चुके थे। इन चौदह पंद्रह महीनों में उन्होंने श्रम मंत्री की हैसियत से अस्पृश्यों के लिए जो कार्य किया था उसकी अस्पृश्य समाज को जानकारी देना आवश्यक था। उन्होंने लॉर्ड लिनलिथगो को बहत्तर सफे का बयान पेश किया था। उसमें उन्होंने निम्नलिखित मांगें पेश की थीं–(1) आई.सी.एस. नौकरी में अस्पृश्यों का अनुपात बढ़ाया जाये ; (2) जनसंख्या के अनुपात में मुसलमानों ही की तरह अस्पृश्यों को नौकरियां देने का 1934 में जो निर्णय लिया गया था, उसे अमल में लाया जाये ; (3) अस्पृश्यों की शिक्षा के लिए कुछ निधि निर्धारित की जाये ; (4) दलित विद्यार्थियों के लिए लंदन में कुछ स्थान आरक्षित रखे जायें ; (5) केंद्रीय एसेंबली में 141 सदस्य हैं इनमें केवल एक ही अस्पृश्य सदस्य है, यह संख्या बढ़ाई जाये। साथ ही, (6) एक्जीक्यूटिव कौंसिल में एक की बजाय अस्पृश्यों के दो प्रतिनिधि नियुक्त किए जायें।

नवंबर 1947 में उन्होंने दिल्ली में दलित कार्यकर्ताओं की बैठक में कार्यकर्ताओं को यह जानकारी दी। 8 दिसंबर, 1943 के दिन मुंबई के परेल स्थान में डा. आंबेडकर के कार्यों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए एक विशाल सभा आयोजित की गयी। श्री गणपतराव जाधव उर्फ मडकेबुआ इस सभा के सभापति थे। बाबासाहब ने हजारों श्रोताओं के सामने भाषण देते हुए अधिकतर मांगों को किस प्रकार मान्यता मिली, इसके बारे में विस्तृत जानकारी खुले मन से सबको दी। अपनी सुविधाओं के प्रति सतर्क रहने का संकेत देते हुए उन्होंने कहा, "केवल सहूलियतें मिलने से कोई लाभ नहीं है। ये सुविधाएं हमारी झोली में पड़ती भी हैं या नहीं, इस ओर हमें ध्यान देना चाहिए। जब इस देश को स्वराज्य मिलेगा तब हिंदू मुसलमानों के साथ ही अस्पृश्य भी उसका साझेदार होगा। अस्पृश्यों को मुसलमानों के समान ही बराबरी का दर्जा दिलवाने में

1. कीर (म.) पृ. 373

आज हमें यश प्राप्त हुआ है। मेरी सरकारी मंत्री पद पर नियुक्ति कमल पत्र पर पड़ी हुई ओस की बूंद के समान है। या यह समझिए कि उससे भी अधिक क्षणभंगुर है। ईसाई, पारसी, यहूदी वगैरह अल्पसंख्यक समाज, कांग्रेस का सामना नहीं कर पाते हैं। यह सच ही प्रशंसनीय है कि अस्पृश्य समाज ने उनका मुकाबला किया है। अपने पराभव के लिए शरमाने की कोई वजह नहीं है। हर व्यक्ति को अपने सिद्धांतों के अनुरूप संघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए। मेरी तो यही इच्छा है कि मैं कुछ ऐसा कर सकूं जिसका लाभ सब प्रदेशों में बसने वाले अस्पृश्यों को मिल सके।" अपने भाषण के अंत में डा. आंबेडकर ने अस्पृश्यों के लिए उपदेश की बातें करते हुए कहा, "अस्पृश्य समाज को आजकल लकवा मार गया है। उस पंगु समाज को अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। उसे अपनी योग्यता और गुणों के आधार पर ही ऊपर उठने की आशा रखनी चाहिए।"

42

हिंदू मुस्लिम एकता कायम करने के लिए की जा रही महात्मा गांधी की सारी कोशिशें मिट्टी में मिल रही थीं। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने भी अपनी एक योजना पेश की। जब पत्रकारों ने डा. आंबेडकर से इस योजना के बारे में प्रश्न पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया, "गांधीजी ने प्रांतीय स्वनिर्णय के अधिकार को मान लिया है उससे मैं संतुष्ट हूं, लेकिन उन्होंने मुस्लिम लीग के सहकार्य के लिए जो शर्तें रखी हैं वे उन्हें नहीं रखनी चाहिए थीं।"[1] मैंने 1943 में जो योजना दी थी वह इस योजना से अधिक बढ़िया थी। उन्होंने अंत में कहा, "इस योजना के कारण वार्तालाप के लिए रास्ता खुल गया है।"[2]

महाराष्ट्र में कुछ लोग जान बूझकर यह प्रचार कर रहे थे कि डा. आंबेडकर महान समाज के नेता हैं और वे महारों के हित के काम ही करते हैं। लेकिन उन्होंने अपने कार्यों, विचारों और व्यवहार में किसी प्रकार का भेदभाव कभी नहीं किया। एसेंबली और काउंसिल आफ स्टेट में अस्पृश्य का नाम सुझाया था।

29 जनवरी, 1944 को कानपुर में दलित फेडरेशन का दूसरा सालाना जलसा हुआ। उस समय उन्होंने कांग्रेस पर प्रबल वाक् प्रहार करते हुए कहा, "कांग्रेस एक धधकता हुआ मकान है। उसमें जाकर अपना और अपने समाज का नुकसान मत कीजिए।" उन्होंने यह राय दी, "दलित नौजवानों को अपनी सारी शक्ति फेडरेशन को सहारा देने में लगानी चाहिए। इससे अंग्रेजी हुकूमत को भी अस्पृश्यों के न्यायोचित अधिकारों को नजरअंदाज करना संभव नहीं हो पायेगा। दलितों को दूसरे दर्जे की नागरिकता अस्वीकार कर देनी चाहिए। उन्हें दास की तरह जीना और व्यवहार करना त्याग देना चाहिए और मालिक की तरह जीना चाहिए।" उनका भाषण बहुत ही प्रेरणादायक रहा।[3] उनकी धाराप्रवाह, शांत और गंभीर वाणी में इंसान के मन में स्वाभिमान की ज्योति जगाने की अद्भुत शक्ति थी। अपने भाषण के अंत में महिलाओं और नवजवानों को उपदेश देना वे न भूले—"कोई भी आंदोलन महिलाओं के सहयोग के बिना संभव नहीं है।

1. माने : पृ. 84
2. माने : पृ. 85-86
3. फ्री प्रेस जरनल : 1-2-1944

नवयुवकों को दलों का संगठन करना चाहिए और आपसी मतभेदों को दूर करना चाहिए।"

भारतीय राजनीति के मैदान में अंग्रेज सरकार और कांग्रेस के बीच सुलह स्थापित करने के लिए सर तेजबहादुर सप्रू, डा. मुकुंदराव जयकर और श्री श्रीनिवास शास्त्री ने कई बार एक मध्यस्थ के नाते काम किया था। सन् 1944 में निर्दलीय परिषद के अध्यक्ष के रूप में सप्रू ने अगुआई की और एक समिति स्थापित करना तय हुआ। "इस समिति में तीन विधि विशेषज्ञों का समावेश किया जाये तथा इस समिति के सामने केवल जातीय एकता का ही लक्ष्य न हो वरन् हर अल्पसंख्यक समाज के सवालों को राष्ट्रहित की दृष्टि से निरीक्षण करने का प्रयास भी वह करे।" यह सुझाव डा. आंबेडकर ने व्यक्त किया था।[1] अंत में जब सप्रू कमेटी ने चार उपसमितियां स्थापित कीं तो फिर डा. आंबेडकर ने उसमें से अपने आपको स्वयं हटा लिया। उन्हें लग रहा था कि किसी भी पक्ष के अंतर्गत न आने वाले लोग व्यापक राष्ट्रहित के लिए बाधक बन सकते हैं।

डा. आंबेडकर के उपायों की देश के राष्ट्रीय विचारधारा वाले अखबारों ने सराहना की। 17 जुलाई, 1944 को गांधी जिन्ना मुलाकात हुई और उन्होंने राजा जी की योजना पर विचार किया। अंत में बातचीत विफल रही। इस बातचीत में गांधी जी ने जिन्ना से जब यह प्रश्न किया, "पाकिस्तान का मतलब क्या है ?" तो जिन्ना ने डा. आंबेडकर की किताब 'थाट्स ऑन पाकिस्तान' की ओर संकेत कर गांधी जी को उसका अध्ययन करने की राय दी।[2] इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा था, "राजाजी की योजना में जातीय प्रश्न को राजनैतिक सवाल से जोड़ दिया गया है। ऐसा जाल फेंका गया है कि पहले आप हमें आजादी दिलवाने में मदद कीजिए, फिर हम पाकिस्तान पर विचार करेंगे।" "जिस तरह पहले हिंदू राजा लोग पराये लोगों के आक्रमण से अपने राज्य को बचाने के लिए पड़ोसी देश के नरेश से वैवाहिक संबंध स्थापित करते थे, उसमें अच्छे वर के चुनाव का प्रश्न ही नहीं था। इसलिए न अच्छा वर मिलता था, न पैसा ही।" यह ताना मारते हुए डा. आंबेडकर ने इस योजना के अनेक दोषों की ओर इशारा किया। उन्होंने अंत में कहा कि पाकिस्तान की रचना करते समय यह ध्यान रखें कि पंजाब और बंगाल प्रदेश में कम से कम 15-20 प्रतिशत अस्पृश्य रहते हैं। उनके जनमत संग्रह के बगैर उनका पाकिस्तान में समावेश नहीं किया जा सकेगा।

डा. आंबेडकर ने जिन्ना से कई तरह के सवाल पूछे और गांधीजी पर यह दोष भी लगाया, "उन्होंने जिन्ना से यह सवाल क्यों नहीं किए। गांधीजी समझते हैं कि

1. सप्रू कमेटी आन इंडियन कांस्टिट्यूशनल रिफार्म्स, 1945 : अपेंडिक्स XI, पृ. LXXI
2. माने : पृ. 151

पाकिस्तान का सवाल केवल हिंदू मुस्लिम समस्या ही है। लेकिन वे भूल जाते हैं कि इसमें अस्पृश्य भी एक तीसरा महत्वपूर्ण समाज है। इनकी ओर से बोलने का कांग्रेस, मुस्लिम लीग अथवा हिंदू महासभा को बिल्कुल अधिकार नहीं है।" अब तक तो डा. आंबेडकर ने अस्पृश्य समाज को राष्ट्रीय महत्व का स्थान प्राप्त करवा दिया था। इसलिए उन्होंने साफ तौर से यह चेतावनी दे दी थी कि भावी पाकिस्तान के इलाकों में बिना जनमत संग्रह के अस्पृश्य समाज पाकिस्तान का नागरिक नहीं बनेगा।

जब आंबेडकर को यह प्रतीत हुआ कि गांधीजी पाकिस्तान की मांग पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं तब उन्हें लगा कि गांधीजी अस्पृश्यों की मांगों पर भी सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे। इसलिए उन्होंने एक पत्र लिखा, "यदि हिंदुस्तान को अपना राजनैतिक मकसद हासिल करना हो तो हिंदू मुस्लिम सवाल के साथ साथ स्पृश्य अस्पृश्यों के प्रश्न का भी हल खोजना चाहिए।" उनके इस प्रश्न का गांधीजी ने अपने 6 अगस्त के पत्र में उत्तर दिया, "अस्पृश्यों का प्रश्न एक धार्मिक और सामाजिक स्वरूप का है।"[1]

सन् 1944 के मध्य सितंबर में अस्पृश्य समाज की ओर से कलकत्ता में आंबेडकर का सत्कार किया गया। उस समय डा. आंबेडकर ने क्रिप्स मिशन की असफलता पर हर्ष प्रकट किया। उन्होंने साथ ही आश्चर्य व्यक्त किया कि हिंदू लोग समझौते के लिए मुसलमानों से याचना करते हैं, मगर अस्पृश्यों की परवाह तक नहीं करते। उन्होंने गांधी और वायसराय के बीच हाल ही में हुए पत्र व्यवहार की ओर ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने वायसराय को साफ साफ सूचित किया, "शासन की बागडोर सौंपने के लिए सिर्फ हिंदू मुसलमानों की आपसी सुलह हो जाने से काम नहीं चलेगा, दलित समाज के साथ भी समझौता करना आवश्यक है।" वायसराय ने उनकी यह दलील नोट कर ली। इस वजह से उन्होंने ऐलान किया, "हमारी विजय अब निकट है।"[2]

---

1. कोर (म) : 376
2. माने : पृ. 84

43

20 सितंबर, 1944 को हैदराबाद रियासत के शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की सभा में डा. आंबेडकर ने अत्यंत क्षोभजनक भाषण दिया। उन्होंने कहा, "देश के शासन में अपने अधिकार का हिस्सा प्राप्त करना दलित समाज का ध्येय है।"[1]

हैदराबाद शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की ओर से डा. आंबेडकर को जो मानपत्र दिया गया था, उसमें यह लिखा गया था, "यदि गांधी जिन्ना के बीच हुए समझौते के लिए आंबेडकर की सम्मति न हुई तो यह अनुबंध अस्पृश्यों के लिए बंधनकारक नहीं होगा।" उसी शाम डा. आंबेडकर मद्रास शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की कार्यकारिणी सभा की बैठक में उपस्थित रहने के लिए रवाना हो गये।

22 सितंबर, 1944 को मद्रास महानगरपालिका ने मद्रास के रिपन भवन में डा. आंबेडकर को मानपत्र अर्पित किया। अपने उत्तर में उन्होंने कहा कि वे स्वयं स्वराज्य या स्वतंत्रता के विरोधी नहीं हैं। उन्होंने कहा, "प्रजातंत्र के शासन की बागडोर यदि पूंजीपतियों के हाथों में जाती है तो फिर अन्य प्रजाजनों को गुलामी में ही जीना मरना होगा।"

दूसरे दिन 23 तारीख को मद्रास सदर्न मराठा रेलवे के स्पृश्य तथा दलित वर्गीय मजदूरों ने डा. आंबेडकर को मानपत्र भेंट किये। उन्हें संबोधित करते हुए उन्होंने उपदेश दिया, "मजदूर संगठन स्थापित करने के बदले राजनैतिक अधिकार हासिल कर सत्ता पाना अधिक महत्वपूर्ण है।"[2]

हिंदू मुसलमान समझौते के लिए गांधी और जिन्ना में मुलाकातें शुरू हुईं। इन बैठकों में अस्पृश्यों की अवहेलना की गयी। चूंकि ये बैठकें डा. आंबेडकर और दलित समाज को अलग रखकर की जा रही थीं, इसलिए अस्पृश्यों ने तुरंत इसके प्रति अपना विरोध व्यक्त किया। 23 सितंबर, 1944 के दिन अखिल भारतीय दलित फेडरेशन की कार्यकारिणी समिति की बैठक मद्रास में हुई। स्वयं डा. आंबेडकर ने इस सभा का मार्गदर्शन किया। इस मीटिंग में 11 प्रस्ताव पारित हुए।[3] इन प्रस्तावों में निम्न प्रकार

---

1. माने : पृ. 86
2. कीर (म) : पृ. 377
3. संग्राम : 24-9-1944; माने : पृ. 89-90

की मांगों का समावेश किया गया था—गांधी जिन्ना के बीच होने वाली समझौते की बातचीत का निषेध; देश के राजनैतिक जीवन में अस्पृश्य समाज को एक स्वतंत्र घटक के रूप में मान्यता; पृथक मतदार संघ; जातीय अधिकारों के संरक्षण का आश्वासन; सभी अल्पसंख्यकों के साथ प्रादेशिक और केंद्रीय विधान सभाओं में समान व्यवहार तथा प्रतिनिधित्व देने का एक ही सिद्धांत ; नौकरियों में अस्पृश्यों के लिए आरक्षित स्थान ; उच्चशिक्षा की उचित व्यवस्था ; तथा अस्पृश्य समाज के लिए स्वतंत्र बस्ती की व्यवस्था इत्यादि।

वेद, गीता, श्रुति, स्मृति, पुराण—ये सभी वैदिक आस्थाओं के प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते हैं। डा. आंबेडकर की यह धारणा थी कि हिंदू समाज में, बहुजन समाज—नारियों, शूद्र अतिशूद्रों आदि की अवनति के लिए इन्हीं ग्रंथों की सीख कारणीभूत रही है। महाड़ के सत्याग्रह में उन्होंने 'मनुस्मृति' का दहन कर इस ग्रंथ के प्रति अपनी तीव्र प्रतिक्रिया प्रदर्शित की थी। परंतु 24 सितंबर, 1944 की सुबह मद्रास में बुद्धिवादी सभा की ओर से आयोजित आम सभा में उन्होंने वेद ग्रंथों की तीखी आलोचना की। "भारत का बौद्धिक संस्करण" विषय पर बोलते हुए उन्होंने कहा[1], "हिंदू धर्म और समाज को शुद्ध करने के लिए और उसकी पुनर्रचना के लिए विचारों में परिवर्तन आवश्यक है। बौद्धिक विचार और बुद्धिवाद, इनका संघर्ष स्वरूप का न होकर सामाजिक और राजनैतिक स्तर का है।" बुद्ध और ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित धर्म—दोनों की तुलना करते हुए उन्होंने कहा, "बुद्ध को सत्यनिष्ठा और तर्कशुद्धता प्रिय थी। वेदांत जो कुछ भी है वह बस यही सत्य है, यह ब्राह्मणों की निश्चित धारणा है। बुद्ध के विचार पुरोगामी हैं, तो वैदिक विचार प्रतिगामी और प्रगति तथा क्रांति विरोधी हैं। बुद्ध धर्म का नाश इस देश की महान क्षति है।" बुद्ध तथा वैदिक धर्म की तुलना करते हुए उन्होंने आगे कहा, "समय की मांग है एक विचारशील और बुद्धिनिष्ठ समाज रचना।"

24 सितंबर, 1944 को बाबासाहब ने जस्टिस पार्टी के कार्यकर्ताओं के सम्मुख भाषण दिया। मद्रास की जस्टिस पार्टी और महाराष्ट्र का सत्यशोधक समाज दोनों ही अब्राह्मणों के संगठन थे। दोनों ही प्रदेशों में अब्राह्मणों का शासन था। लेकिन 1937 के आम चुनाव में जस्टिस पार्टी बुरी तरह से हार गई थी। इस हार का विश्लेषण करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "जो लोग महत्वपूर्ण विभागों के प्रमुख स्थानों पर नौकरी कर रहे थे उन्होंने अपने दल की ओर ध्यान नहीं दिया। अब्राह्मणों ने केवल ब्राह्मणों की आलोचना ही की। लेकिन उन्होंने ब्राह्मणों के प्रभाव से अपने आपको मुक्त नहीं किया। अब्राह्मण दल तीस वर्षों तक शासन की बागडोर अपने हाथ में संभालकर भी कोई सुधार नहीं कर सका। केवल जमीन सुधार के कार्य को छोड़ उन्होंने और कुछ

1. इंडियन एक्सप्रेस : 25-9-1944

हितकर कार्य नहीं किया। इसलिए देहातों की नब्बे प्रतिशत जनता गरीबी की घृणित जिंदगी में दिन काट रही है।"

संध्या समय पार्क टाउन स्थित मैमोरियल हाल में शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन और दक्षिण भारत बुद्धिस्ट एसोसियेशन ने बाबासाहब को मानपत्र अर्पित किये। उन्हीं दिनों श्रीनिवास शास्त्री ने अपने किसी भाषण में यह कहा था, "अंतर्राष्ट्रीय परिषद में आंबेडकर की उपस्थिति देश के लिए विनाशकारी सिद्ध होगी।" उन पर कटाक्ष करते हुए डा. आंबेडकर ने श्रीनिवास शास्त्री की कड़े शब्दों में आलोचना की। उनकी खासी खबर लेते हुए उन्होंने कहा, "अपने सार्वजनिक जीवन में मेरे द्वारा ऐसा कोई व्यवहार नहीं हुआ है जो लज्जास्पद हो।"

गोलमेज परिषद की कुछ घटनाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, "भारत में अगर किसी ने धोखा दिया है तो वह अस्पृश्य समाज ने हरगिज नहीं दिया, वरन् शास्त्री जैसे लोगों ने दिया है। अस्पृश्यों ने तो केवल न्याय का संरक्षण चाहा था और स्वराज्य की मांग का पूरा समर्थन किया है।"

'सिंध आबजर्वर' अखबार के प्रतिनिधि को मुलाकात देते हुए डा. आंबेडकर ने साफ शब्दों में कहा, "मेरा देश की स्वतंत्रता के लिए कोई विरोध नहीं है, अथवा पाकिस्तान के निर्माण का भी मैं विरोधी नहीं हूं। बस मैं तो यही चाहता हूं कि मेरे अस्पृश्य समाज को उचित संरक्षण मिलना चाहिए।"

अपने मद्रास प्रवास के समय उन्होंने जस्टिस दल के नेता रामस्वामी नायकर के साथ खूब लंबी बातचीत की। फिर वे एलोर गये। वहां एलोर नगरपालिका, शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन, क्रिश्चियन फेडरेशन और वेस्ट गोदावरी जिला बोर्ड की ओर से उन्हें मानपत्र अर्पित किये गये।

एलोर नगरपालिका के मानपत्र का उत्तर देते हुए बाबासाहब ने कहा, "गांधीजी की राजनयिक दृष्टि नहीं है। अब्राहम लिंकन ने चाहा था कि नीग्रो लोगों के वोट उत्तर भाग में बसी संस्थाओं को प्राप्त हो सकें। इसलिए सन् 1762 में नीग्रो के लिए स्वतंत्रता की अपील निकाली। इसके पीछे नीग्रो लोगों की स्वतंत्रता के बजाय संघ राज्य के प्रति निष्ठा अधिक महत्व की थी। गांधीजी को भी स्वतंत्रता चाहिए, साथ ही चारों वर्णों की भी उन्हें आवश्यकता है। इसलिए उनकी भूमिका अब्राहम लिंकन के ही समान है।"

अस्पृश्य समाज की ओर से डा. आंबेडकर को गुडीवाड़ा में भी मानपत्र अर्पित किया गया। दलितों को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा, ''हरिजन सेवक संघ द्वारा संचालित छात्रावास छोड़कर विद्यार्थियों को बाहर निकालना चाहिए और अपनी शिक्षा के लिए अधिक रकम मंजूर करने के लिए सरकार पर दबाव डालना चाहिए।''[1]

1. ज्ञानप्रकाश : 4-10-1944

अखिल भारतीय हरिजन समिति के प्रतिनिधिमंडल ने 26 सितंबर, 1944 को महात्मा गांधी से भेंट की। इन हरिजन सदस्यों ने डा. आंबेडकर का विरोध किया था और उन्होंने पुणे के समझौते का समर्थन किया था। उन्होंने गांधी जी से यह मांग की, "हमें हरिजन सेवक संघ में पचास फीसदी प्रतिनिधित्व दीजिए।" गांधी जी ने उन्हें उत्तर दिया, "हरिजन सेवक संघ हरिजनों की संस्था नहीं है बल्कि हरिजनों की उन्नति के लिए प्रयत्नशील व्यक्तियों की संस्था है। इसलिए उसमें आप लोगों के प्रतिनिधित्व का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।"[1]

28 सितंबर, 1944 को डा. आंबेडकर राजमहेंद्री पहुंचे। वहां उन्हें मानपत्र अर्पित किया गया। उसका उत्तर देते हुए उन्होंने अपने भाषण में कहा, "गांधीजी को वर्णाश्रम व्यवस्था भंग नहीं करनी है। उनमें दूरदृष्टि है ही नहीं।" यह उनकी गांधी जी पर स्पष्टवादी टीका थी। उन्होंने यह भी सुझाया कि वे अपनी गलतियों पर फिर से सोचें। पुणे के अहिल्याश्रम में 4 अक्तूबर को दिये गये भाषण में भी उन्होंने कड़े शब्दों में गांधी जी पर अपनी राय जाहिर की। उन्होंने कहा, "पिछले पच्चीस सालों से उन्हें करोड़ों रुपये मिले और लाखों लोगों का त्याग उन्हें प्राप्त हुआ, फिर भी उन्हें यशस्वी राजनीति खेलते नहीं बनी।"[2]

डा. आंबेडकर पर भी इन दिनों समालोचनाओं की भारी बरसात होने लगी। युद्ध के समय अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ कांग्रेस ने असहयोग की नीति अपनाई थी, उस समय डा. आंबेडकर ने सरकार के मंत्री पद पर कार्य किया था। इसलिए भारत के अखबारों ने उन्हें देशद्रोही तक कहने में कसर नहीं की थी।

डा. आंबेडकर के मद्रास में दिये गये भाषण पर तो सब तरफ से कड़ी आलोचना के तीर चलना तो स्वाभाविक ही था। कुछ समाचारपत्रों ने उनके भाषण को गलत ढंग से पेश किया तो कुछ ने संदर्भहीन समाचार दिये।

प्रोफेसर ए. आर. वाडिया ने मद्रास के भाषण पर "सेंस एंड नानसेंस इन पालिटिक्स" शीर्षक से एक लेख 'रस्त रहबर' नामक अखबार में लिखा था। उसमें सातवलेकर के समान ही बयान दिए गए थे, जैसे "डा. आंबेडकर अस्पृश्य समाज से हैं इसीलिए उन्हें यह बड़प्पन मिला है। अगर वे मुसलमान, ईसाई या ब्राह्मण होते तो किसी ने भी उनकी परवाह न की होती।" इस लेख का उत्तर देते हुए जे. इ. संजाना ने अपने लेख में लिखा है, "किसी भी समाज के किसी भी मशहूर नेता की तुलना

---

1. माने : पृ. 171
2. सकाल : 5-10-1945

में डा. आंबेडकर की अपनी योग्यता के बल पर किसी भी मामले में कमी नजर नहीं आती।"[1]

लेकिन डा. आंबेडकर आलोचनाओं के अंबार से भयभीत हो जाने वाले व्यक्ति नहीं थे। 29 नवंबर, 1944 को अपने पुणे के प्रवास में उन्हें पी. एन. राजभोज के यहां चाय पर आमंत्रित किया गया था। इस अवसर पर अपने आलोचकों को मुंहतोड़ जवाब देते हुए उन्होंने अपने विचार विस्तारपूर्वक रखे, "गीता को चार बार लिखा गया है। प्रारंभ में गीता में धर्म और तत्वज्ञान की बातें नहीं थीं। कहा जाता है उसमें केवल साठ श्लोक थे। यह यादवों का एक गाथा गीत था, पोवाडे की तरह। जब कृष्ण को ईश्वर का अवतार माना गया, तब भक्ति मार्ग का अवलंबन किया गया। इस ग्रंथ में शूद्रों की निंदा और अवहेलना की गयी है। मैं हिंदुओं के इस धर्म ग्रंथ का न तो उपहास कर रहा हूं और न निंदा ही। मैं केवल सच्ची स्थिति रख रहा हूं। वेद केवल ब्राह्मण ही मान सकते हैं। बुद्ध का धर्न शूद्रों का धर्म था। वह वेद को प्रामाणिक ग्रंथ नहीं मानता। अब्राह्मण समाज ने वेदों को धर्म ग्रंथ नहीं माना है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में नैतिकता का पोषण करने वाली कोई बात नहीं है। वर्णाश्रम धर्म को टिकाए रखने के लिए गीता की रचना की गयी है। गीता ने चार वर्णों को आधार दिया है। इसीलिए आज वह कायम है।"

डा. आंबेडकर के इस विवेचन से आलोचकों का समाधान तो नहीं हुआ, लेकिन उनकी आलोचनाओं में बाढ़ आ गई। आलोचक उन पर दुबारा अधिक तीव्रता से टूट पड़े।

डा. आंबेडकर ने जो सवाल उठाए, उनका खंडन करने एक भी विद्वान सामने नहीं आया। लेकिन इसका पता जरूर चल गया कि विरोधियों की आलोचनाओं का स्तर कितना नीचे गिर सकता है। डा. आंबेडकर ने अपने भाषणों में जो विषय उठाए थे, जो दलीलें पेश की थीं, उन्हें अपने ग्रंथ 'रिडल्स इन हिंदुइज्म'[2] में विस्तारपूर्वक और सबूतों के साथ दिया गया है। युद्ध के बाद वैदिक धर्म ग्रंथों के विरोध में आवाज बुलंद कर सामना करने वाले डा. आंबेडकर एकमेव विद्वान हैं, यह कहना गलत नहीं होगा।

इन्हीं दिनों बेवरले निकोलस नामक पत्रकार को मुलाकात देते हुए बाबासाहब आंबेडकर ने कहा, "मुझे गांवों, देहातों में बसे हुए मुट्ठी भर अस्पृश्यों को मजबूत बनाना है। इसलिए मुझे उन लोगों को देहातों से बाहर निकालकर उनकी बड़ी बड़ी बस्तियां बसानी हैं और उन्हें स्वावलंबी बनाना है। हम यह कर सकते हैं लेकिन वे इसे हमें पूर्ण करने दें, यही हम चाहते हैं। हम अन्य किसी भी समाज के जैसे ही राष्ट्रीय लोग हैं।"[3]

1. जे. इ. संजाना : पृ. 5
2. डा. बाबासाहब आंबेडकर : रायटिंग्स एंड स्पीचेस, वाल्यूम 4, महाराष्ट्र शासन, मुंबई
3. बेवरले निकोल्स : पृ. 40

2 जनवरी, 1945 को कलकत्ता में अखिल भारतीय अस्पृश्य विद्यार्थी परिषद का अधिवेशन आयोजित किया गया। इस अधिवेशन को संबोधित करते हुए डा. आंबेडकर ने विद्यार्थियों को उपदेश देते हुए कहा, "राजनीति से अलिप्त रहने में भी विद्यार्थियों की पढ़ाई का नुकसान हो रहा है। उनका शिक्षा स्तर नीचे गिर रहा है।" वहां 'पीपल्स हेराल्ड' नामक साप्ताहिक अखबार के प्रकाशन प्रारंभ के अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा, "राजनैतिक और नैतिक दृष्टि से 'दलित फेडरेशन' दल इस देश में सदा बना रहेगा।" कलकत्ता में उन्होंने डी. जी. जाधव के यहां भोजन किया। डा. आंबेडकर ने जाधव को बचपन से ही बहुत मदद की थी। जाधव रेल विभाग में लेबर अफसर थे। लेकिन अस्पृश्य आंबेडकर ने उनके घर भोजन किया है, इसकी जानकारी मिलने पर उनके यहां काम करने वाले सभी नौकरों ने काम करना नामंजूर कर दिया।

डा. आंबेडकर ने अपने पाकिस्तान विषयक ग्रंथ का दूसरा संस्करण 1945 में प्रकाशित किया। उस ग्रंथ में उन्होंने एक अध्याय और जोड़ दिया था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि कैनेडा, स्विट्जरलैंड इत्यादि देशों में भारत की सांस्कृतिक एकता को मानकर अनेक राष्ट्रों से आये समाज एक साथ रह सकते हैं। लेकिन उन्होंने अपनी यह राय कायम रखी कि भारत के संरक्षण की दृष्टि से, खर्च में कटौती करने के लिए हिंदुओं को पाकिस्तान के निर्माण को मान लेना चाहिए।

अखिल भारतीय दलित फेडरेशन का तीसरा वार्षिक अधिवेशन मुंबई में 8 मई, 1945 को संपन्न हुआ। उस दिन रविवार था, इसलिए दिन भर कार्यक्रम होते रहे। फेडरेशन के अधिवेशनों में समता सैनिक दल या युवक संगठन की ओर से भारी व्यवस्था रखी जाती थी। इस बार भी सुबह अस्पृश्य युवक परिषद हुई और दोपहर में महिला परिषद। सारे भारत से लगभग एक हजार प्रतिनिधि आये थे। सिंध, पंजाब, संयुक्त प्रांत, बंगाल, असम, मद्रास, मध्यप्रदेश, आंध्र, महाराष्ट्र—इन प्रदेशों के प्रतिनिधि और दर्शकगण मिलाकर सवा लाख से अधिक लोग अधिवेशन में उपस्थित थे।

अखिल भारतीय स्तर पर सवर्ण महिलाओं के अधिवेशन भी पत्रकारों ने देखे ही थे। इस अधिवेशन को देखकर वे बोले, "सवर्ण महिलाओं के चार अधिवेशनों की बराबरी आंबेडकर के इस एक महिला अधिवेशन में ही हो गयी। उपस्थिति की दृष्टि से आंबेडकर ने कांग्रेस सहित सभी संस्थाओं को हरा दिया है।" सभा मंच के मध्य में केवल बुद्ध का चित्र रखा गया था। सारे मंडप में मानो सैनिक अनुशासन था। श्री मडके बुआ जाधव, जो सर्वसंग परित्यागी समाज सेवा का व्रत धारण करने वाले गृहस्थ थे, इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। उन्होंने मराठी में अपना स्वागत भाषण दिया। अध्यक्ष पद से श्री. एन. शिवराज ने अंग्रेजी में भाषण दिया। डा. आंबेडकर अपना भाषण अंग्रेजी

में लिखकर लाए थे, मगर वे आशुवक्ता की तरह मराठी में ही बोले।[1] "अस्पृश्य समाज अज्ञानी और भोलाभाला है। उनके पास अपना मुख पत्र भी नहीं है। फिर भी यहां इतनी प्रचंड संख्या में लोग एकत्रित हुए हैं।" उन्होंने प्रारंभ में कार्यकर्ताओं की प्रशंसा की। फिर राजनैतिक और सामाजिक विषयों पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि "भारतीय मामलों के मंत्री साहब ने जब राज्य के संविधान की मांग की तो नेहरू ने 150-200 पन्नों की नेहरू रिपोर्ट तैयार की। उसमें उन्होंने 'अस्पृश्यों का प्रश्न धार्मिक है राजनैतिक नहीं' यह कहकर उसे रद्द कर दिया। सात करोड़ अस्पृश्य उनकी दृष्टि में शून्य के समान थे। लेकिन गोलमेज परिषद में उन्हें 10 प्रतिशत स्थान दिये गये। सप्रू कमेटी ने यह संख्या 50 तक बढ़ाई। हमारी इतनी प्रगति हो चुकी है। गुड़ की भेली के आसपास चींटे जमा हो जाते हैं। वे गुड़ की रक्षा करने के लिए नहीं आते, गुड़ खाने के लिए पहुंचते हैं। उसी तरह अब ये कम्युनिस्ट वगैरह अनेक दल स्नेह संबंध बढ़ाने के लिए हमारे आसपास मंडरा रहे हैं।" उनकी इच्छा थी कि कांग्रेस के साथ मनमुटाव न हो, इस भावना को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा "हमें किसी का भी आशीर्वाद नहीं चाहिए। हम अपनी हिम्मत, बुद्धि और कार्यक्षमता के बल पर अपने देश के लिए और अपने लिए पूरी लगन से काम करेंगे। जो भी जागृत है, संघर्ष करता है, उसे अंत में स्थायी न्याय मिल सकता है।"

जातीय समझौते के लिए उन्होंने जो इलाज सुझाया था उसे उन्होंने 'काम्युनल डेडलॉक एंड ए वे टु साल्व इट' शीर्षक से प्रकाशित किया। इस मसौदे में उन्होंने सुझाया था, "हिंदुस्तान के दल राजनैतिक न होकर जातीय दल हैं। इसलिए बहुसंख्यक जमात को पूर्ण बहुमत देने के बदले सापेक्ष बहुमत देने वाली योजना पर अमल करना चाहिए। औपनिवेशिक स्वराज्य को कार्यान्वित करना हो तो हमें अपने लिए संविधान तैयार करना होगा। अंग्रेजों के भरोसे रहकर यह काम नहीं हो पायेगा।" यह उनका सुझाव था।

डा. आंबेडकर तत्कालीन राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए समय समय पर उपयुक्त उपाय सुझाते रहते थे। लेकिन दुर्भाग्यवश इस महान बुद्धिमत्ता के मालिक के सुझावों की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

डा. आंबेडकर को 20 मई, 1945 को उनके मित्रों ने मुंबई के केप माडल नामक जलपान गृह में दावत दी। इस अवसर पर उन्होंने कहा, "हिंदुस्तान को पूर्ण स्वराज्य के बदले औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जाये, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय कानून के मुताबिक यह औपनिवेशिक स्वराज्य भी पूर्ण स्वराज्य के ही समान है।"

---

1. काल : 9-5-1945

44

डा. आंबेडकर का 'व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव डन टु द अनटचेबल्स' नामक राजनीतिक विषय से संबंधित ग्रंथ जून 1945 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ से फिर एक बार कांग्रेस पार्टी में बेचैनी फैल गयी। आंबेडकर की विद्वत्ता, बुद्धिवाद और बहस की शैली बहुत ही परिणामकारक और जोरदार थी। अपने प्रतिपादन के समर्थन में सबूत और आंकड़ों से यह सारा ग्रंथ भरा हुआ है। कांग्रेस ने 1917 से अस्पृश्यों के उद्धार का कार्य प्रारंभ किया था, लेकिन कांग्रेस ने आडंबर अधिक किया था, कार्य कुछ भी नहीं। इस ग्रंथ में इस बात को दर्शाया गया है।

डा. आंबेडकर ने इस ग्रंथ को 'एफ' नामक एक अंग्रेज महिला को अर्पित किया है। अपनी अर्पण पत्रिका में उन्होंने बाइबल के ओल्ड टेस्टामेंट से कुछ उक्तियां प्रस्तुत की हैं जैसे "देव आपका वही हमारा" दोनों के ध्येयों की समानता दर्शाने वाले बाइबल के उद्धरण देकर डा. बाबासाहब ने यह ग्रंथ उन्हें अर्पण किया है। इस महिला ने गोलमेज कांफ्रेंस के समय उन्हें बहुत मदद की थी। अपने "फिलासफी आफ हिंदुइज्म" नामक निबंध में भी डा. आंबेडकर ने 'रुथ और नाओमी' का संवाद उद्धृत किया है। दूसरे ग्रंथ 'कांग्रेस और गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया?' पर समाचारपत्रों ने डा. आंबेडकर की काफी आलोचना की। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और के. सन्थानम—इन दो कांग्रेस नेताओं ने इस किताब का उत्तर देने का प्रयास भी किया था।

जून मास के प्रथम सप्ताह में भारत के वायसराय अपनी छुट्टियों से वापस लौटे। उन्होंने जून के अंतिम सप्ताह में सर्वदलीय परिषद की बैठक शिमला में आमंत्रित की। इस परिषद में सभी प्रदेशों के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और अल्पसंख्यक समाज के प्रतिनिधिगण उपस्थित थे। चूंकि डा. आंबेडकर श्रम मंत्री थे, इसलिए वे इस परिषद में भाग नहीं ले सके। परंतु फेडरेशन के एन. शिवराज इसमें हाजिर थे। डा. आंबेडकर ने जो प्रतिवेदन तैयार किया था उसमें उन्होंने मांग की थी कि यदि जनसंख्या के अनुपात पर मुसलमानों को पांच सीटें दी जाती हैं तो फिर उसी कसौटी पर दलित समाज को तीन सीटें दी जायें। शिमला परिषद के द्वारा भारत को स्वाधीनता देने का निर्णय स्थगित

करने का प्रयत्न हो रहा है, यह संदेह घर कर रहा था। डा. आंबेडकर ने कुछ अन्य केंद्रीय मंत्रियों के साथ अपने विचार लॉर्ड वेवल को सूचित किये थे।

जून 1945 के अंतिम सप्ताह में डा. साहब जब बंबई पधारे तो उन्होंने 'टाटा इंस्टिट्यूट आफ सोशल सांइसेज' के विद्यार्थियों को संबोधित किया। उन्होंने अपने भाषण में कहा, "अनिवार्य समझौता मजदूरों के लिए बहुत हितकर है।" उन्होंने आश्वासन दिया कि इस युद्धकाल में तकनीकी शिक्षा के लिए खोले गये विद्यालय भविष्य में भी इसी तरह चलते रहेंगे।

जब लॉर्ड वेवल ने यह देखा कि भारत की उलझन नहीं सुलझ रही है तो वे अगस्त माह में लंदन गये और वहां से सितंबर के मध्य में लौटे। आते ही उन्होंने आम चुनाव की घोषणा कर दी।

सभी दल चुनाव के मैदान में उतरे। कांग्रेस, मुसलमान और हिंदू महासभा —तीनों दलों के पास धन और जनबल था। इसके अलावा कई अखबार भी उनके हिमायती थे। आंबेडकर के पास यह कुछ नहीं था। फिर भी शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन चुनाव मैदान में उतरी।

24 सितंबर, 1945 को बाबासाहब आंबेडकर ने डा. एम. आर. जयकर को महत्वपूर्ण पत्र भेजा। इस पत्र से पता चलता है कि 1929 के लगभग डा. आंबेडकर ने एक विधेयक तैयार कर केंद्रीय विधान सभा में पेश करने के लिए डा. जयकर को दिया था। इसका आशय था, "अस्पृश्यता के कारण किसी को भी किसी भी सार्वजनिक स्थान में आने जाने की मनाही नहीं होगी।" डा. जयकर ने डा. आंबेडकर को सूचित किया था कि उन्होंने यह बिल दिसंबर 1929 में केंद्रीय विधान मंडल में पेश किया है। लेकिन डा. आंबेडकर ने इस पत्र में उन्हें लिखा था, "इस प्रकार का कोई भी बिल आपने केंद्रीय विधान सभा में मार्च 1927 से जुलाई 1930 तक पेश किया है, इसका प्रमाण नहीं मिलता।" इस पत्र द्वारा यह बात डा. जयकर के ध्यान में लाई गयी थी।[1]

4 अक्तूबर, 1945 को उन्होंने पुणे की एक सभा में चुनाव प्रचार का प्रारंभ करते हुए महत्वपूर्ण सवाल प्रस्तुत किये। "दलित समाज को कांग्रेस पर कतई विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि कांग्रेस ने दलितों पर होने वाले अन्याय को दूर करने का प्रयत्न ही नहीं किया है। दलितों को शासन अधिकार अपने हाथों में लेकर शासनकर्ताओं की श्रेणी में पहुंच जाना चाहिए। अपने अधिकारों को स्वयं हमें ही संभालना होगा। प्रादेशिक विधान मंडलों द्वारा ही संविधान समिति के सदस्य चुने जायेंगे।" उन्होंने ही दलित समाज

1. नेशनल आर्काइव्ज़ फाइल, क्र. 832 : जयकर पेपर्स नं. 37

के ध्यान में यह जरूरी बात ला दी। दूसरे दलों को भी इस बात का पता नहीं था। डा. आंबेडकर की यह भविष्यवाणी आखिर सच निकली।

30 अक्तूबर, 1945 को डा. आंबेडकर ने पुणे में 'आंबेडकर स्कूल आफ पालिटिक्स' नामक संस्था का उद्घाटन किया। वे देश के राजनैतिक दलों में चल रही धांधलेबाजी का अचूक निदान करने में निपुण थे। राजनीति का खाका खींचते हुए उन्होंने कहा, "महात्मा गांधी का राजनीति में आगमन होने से पहले इस देश में दो प्रमुख विचारधाराएं चल रही थीं। पहली विचारधारा उदार मतवादी लोगों की थी जिनके अग्रणी थे रानाडे और गोखले। दूसरी विचारधारा बंगाल के क्रांतिकारियों की थी। इन दोनों विचारधारा के लोगों में झूठे, और उसूलों से बेइमानी करने वाले, गुलामी की दिमागी हालत वाले और ढोंगी मिजाज वाले लोगों के लिए बिलकुल जगह नहीं थी। गहरा अध्ययन, और ज्ञानोपासना इन विचारधाराओं को मानने वाले लोगों के प्रमुख ध्येय थे।"

"मेरे मरणोपरांत मेरे विचार या संप्रदाय की संस्था मत बनाइए। जो समाज या संस्था काल और समय के अनुसार अपने विचारों को नहीं बदलती या बदलने को तैयार नहीं होती वह जीवन के संघर्ष में टिक नहीं सकती।"

"यदि यह विश्वास हो कि मेरा पक्ष बिलकुल सही है, तभी विद्यार्थियों को मेरा नेतृत्व स्वीकार करना चाहिए।"

45

गुजरात में दलित फेडरेशन की तरफ से अहमदाबाद में चुनाव सभा और सम्मेलन आयोजित किया गया। डा. आंबेडकर 29-30 नवंबर को अहमदाबाद ठहरे। 29 को श्री जी. टी. परमार की अध्यक्षता में एक विशाल सभा हुई। इसमें भाषण करते हुए आंबेडकर ने कहा, "दलितों का जो भी हित हो पाया है वह सारा दलितों के ही प्रयत्नों का फल है। इसलिए दलित समाज को अपना संगठन इतना मजबूत रखना चाहिए कि उसे कोई तोड़ न सके। यह बहुत महत्वपूर्ण काम है।" यह सभा साबरमती नदी के किनारे हुई थी। इस स्थान को बुद्धनगर नाम दिया गया था। 30 तारीख को अहमदाबाद नगरपालिका ने आंबेडकर को मानपत्र अर्पित किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा, "कौन कहेगा कि देश को स्वराज्य नहीं चाहिए ? मुझे भी पूर्ण स्वराज्य की अभिलाषा है। आजादी हमारा दरवाजा खटखटा रही है। अंग्रेजी हुकूमत और ज्यादा दिन इस देश में नहीं टिक सकेगी।"

दिसंबर 1945 के पहले सप्ताह में श्रम अधिकारियों की एक विभागीय मीटिंग मुंबई के सचिवालय में संपन्न हुई। इस मीटिंग का उद्घाटन करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा था, "औद्योगिक कलह टालने के लिए तीन बातें जरूरी हैं—(1) समुचित संगठन, (2) कानूनों में आवश्यक सुधार, और (3) श्रमिकों के न्यूनतम वेतन का निर्धारण। औद्योगिक शांति सत्ता के बल पर नहीं वरन् न्यायनीति के तत्वों पर आधारित होनी चाहिए। श्रमिकों को अपने कर्तव्यों की पहचान होनी चाहिए। मालिकों को भी मजदूरों को उचित वेतन देना चाहिए। साथ ही, सरकार और श्रमिक समाज को भी अपने आपसी संबंध सौहार्दपूर्ण बनाए रखने की लगन से कोशिश करनी चाहिए।"

इसके बाद डा. आंबेडकर ने मनमाड और अकोला में चुनाव सभाएं कीं। 13 दिसंबर को उन्होंने नागपुर में लगभग डेढ़ लाख लोगों की सभा को संबोधित किया। उन्होंने अपने भाषण में उन्हें किस तरह पुरी के जगन्नाथ मंदिर में दूर से ही भगवान के दर्शन करने पड़े, इसके संस्मरण सुनाए। उसी तरह उन्होंने गुरुघंटाल नामक साधु की कथा सुनाई। वह तीन चौथाई रोटी स्वयं खा जाया करता था और एक चौथाई रोटी अपने

शिष्यों को बांटा करता था। उन्होंने आगे कहा, "कांग्रेस गुरुघंटाल की भूमिका निभा रही है।" दलितों को उनका यह इशारा था।

नागपुर से डा. साहब चुनाव प्रचार के लिए मद्रास निकल गये। उन्होंने मद्रास, मदुरै, और कोयम्बटूर में सभाओं को संबोधित किया। लौटते समय उन्होंने मद्रास में 'दक्षिण भारत में जस्टिस पार्टी का विकास और प्रभाव' विषय पर पार्कटाउन में भाषण दिया। उन्होंने कहा, "जस्टिस पार्टी को नेता, अनुशासन और कार्यक्रम की आवश्यकता है।"

ब्रिटिश पार्लियामेंट के दस सदस्यों का एक शिष्टमंडल जनवरी 1946 में दिल्ली आया। सदस्यों ने 10 जनवरी, 1946 को जिन्ना और नेहरू से चर्चा की। डा. आंबेडकर के साथ भी उनकी डेढ़ घंटे तक बातचीत होती रही।

13 जनवरी को डा. आंबेडकर मुंबई आये। वहां से वे सोलापुर पहुंचे जहां लोकलबोर्ड और नगरपालिका ने उन्हें मानपत्र भेंट किया। अपने भाषण में उन्होंने इन संस्थाओं के द्वारा अस्पृश्यों की भलाई के लिए किए गए कार्यों की सराहना की और यहां के डा. वि. वि. मुले के सहयोग से उन्होंने यहां अस्पृश्य योद्धा का कार्य किस तरह प्रारंभ किया था, इसका उल्लेख किया। शाम को अपने चुनाव भाषण में उन्होंने यह घोषणा भी की, "यदि अस्पृश्य उम्मीदवार चुनाव में विजयी नहीं हुए तो मैं सफेद टोपी धारण कर लूंगा।"

डा. आंबेडकर को एक विशाल सभा में दलित फेडरेशन की ओर से मुंबई में थैली अर्पित की गयी। इस अवसर पर भाषण देते हुए उन्होंने कहा, "अस्पृश्य समाज मुसलमानों की तरह भारत भूमि को विभाजित करने की बात नहीं करता है। वह तो केवल समानता का अधिकार चाहता है। यदि कांग्रेस समझती है कि हमारी मांगें उचित नहीं हैं, या न्यायसंगत नहीं हैं तो उसे चाहिए कि हमारा मामला निस्पृह विश्व न्यायपीठ के सामने रखा जाये। हम इस न्यायालय का निर्णय मानने के लिए तैयार हैं।"

10 मार्च, 1945 को संयुक्त प्रांत दलित फेडरेशन का अधिवेशन आगरा में हुआ। वहां पर विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए उन्होंने कांग्रेस पर कठोर प्रहार किया और कहा, "अल्पसंख्यकों के सहयोग से और उनकी सम्मति से बहुसंख्यकों का शासन चलाना ही स्वराज्य है।" इस तरह उन्होंने अपनी स्वराज्य की कल्पना को प्रस्तुत किया।

चुनाव में दलित फेडरेशन की हार हुई और सब तरफ कांग्रेस विजयी रही। बहुसंख्यक हिंदू वाले मतदार संघों में अस्पृश्य उम्मीदवार चुनाव हार गये।

अब भारत को जल्द ही आजाद करना चाहिए, इस ध्येय से इंग्लैंड के राजनीतिज्ञों की दौड़धूप शुरू हो गई। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने घोषणा की, "हिंदुस्तान को स्वतंत्रता प्राप्त करने का अधिकार है।" इसके बाद जल्द ही बरतानवी सरकार ने

सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। उनके साथ ए. वी. अलक्जेंडर और भारतमंत्री लार्ड पैथिक लारेंस—तीनों का मिला जुला शिष्टमंडल भारत पधारा था।

इस मंत्रीय शिष्टमंडल ने वायसराय भवन में अनेक नेताओं से विचार विनिमय किया, मुलाकातें कीं। इन मुलाकातों में 5 अप्रैल, 1946 को डा. आंबेडकर से भेंट की। इस भेंट में डा. आंबेडकर ने यह आग्रह किया कि अस्पृश्यों का अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करने के लिए स्वतंत्र मतदार संघ, स्वतंत्र आवासीय बस्ती की आवश्यकता, केंद्रीय और प्रादेशिक विधानसभाओं में यथेष्ट प्रतिनिधित्व, सरकारी नौकरियों और सेवायोजना कार्यालयों में सुरक्षित स्थान, दलित विद्यार्थियों को यथोचित आर्थिक अनुदान—इन मांगों को प्रस्तुत किया और राष्ट्र के संविधान में उनका समावेश हो, यह आग्रह भी किया।

19 मई को त्रिमंत्रीय शिष्टमंडल ने अपना विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने डा. आंबेडकर की मांगों को ठुकरा दिया था। इस बीच कार्यकारी मंडल बरखास्त कर दिया गया था। वायसराय के इस ऐलान के बाद डा. आंबेडकर को दिल्ली छोड़कर मुंबई आना पड़ा।

चुनाव की सरगर्मी में जातीय तनाव बढ़ गया था। अस्पृश्य उम्मीदवार जीत न पायें, इसलिए मतदाताओं की मोर्चेबंदी की गई थी। अस्पृश्यों की बस्तियों पर धावे बोले गये। नागपुर में तीन नवजवान कार्यकर्ता मारे गये। मुंबई में बी. जी. देवरुखकर नामक चमार समाज के आंबेडकर अनुयायी को छुरा भोंककर मौत के घाट उतार दिया गया। हुल्लड़बाजी का तूफान उमड़ रहा था। डा. आंबेडकर भारतभूषण प्रेस को भी गुंडों ने जलाकर राख कर दिया था।

जून के पहले सप्ताह में शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई। यह मीटिंग डा. आंबेडकर के निवास स्थान 'राजगृह' में आयोजित की गई थी। त्रिमंत्रीय शिष्टमंडल का, प्रस्ताव द्वारा निषेध किया गया। साथ ही चेतावनी भी दी गई, "यदि अन्याय समाप्त न किया गया तो सीधे प्रतिकार अर्थात प्रत्यक्ष कार्यवाही का मार्ग अपनाया जायेगा।" प्रिंटिंग प्रेस जलाने की भी कड़े शब्दों में निंदा की गई।

46

दिल्ली में वायसराय, प्रभारी शासन स्थापित करने की तैयारी कर रहे थे। जून 1946 के तीसरे सप्ताह में मत्रिमंडल ने वायसराय से बिदाई लेने का समारोह आयोजित किया। इस कार्यकारिणी के सदस्य डा. आंबेडकर की कार्यक्षमता और कार्यों का अवलोकन कर हिंदुस्तान के कमांडर इन चीफ ने आभार व्यक्त किया। डा. आंबेडकर के कार्यकाल में ही भारत के अनेक हवाई अड्डों का निर्माण कार्य हुआ था। उनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि अरब सागर को बंगाल के उपसागर से जोड़ा जाये। लेकिन यह महत्वाकांक्षा पूरी न हो पाई और राजा भागीरथ की तरह अपने हृदय में सपने संजोने वाले भारत के इस शिल्पकार डा. आंबेडकर को अपना कार्य अधूरा छोड़कर लौटना पड़ा।

केंद्रीय विधान सभा में वे एक प्रभावशाली वक्ता के रूप में प्रसिद्ध थे। श्रम मंत्री के नाते शासन के सूत्र हाथ में लेते ही उन्होंने केंद्रीय विधान सभा में दिये गये प्रारंभिक भाषण से ही एक वक्ता और वाद विवाद पटु के रूप में अपनी छाप जमा दी थी। उन्होंने 14 सितंबर, 1942 को मुंबई मजदूर आंदोलन के अपने सहयोगी कार्यकर्ता श्री सीताराम चिंतामणि जोशी को एक पत्र लिखा था। उस पत्र में उन्होंने विधान सभा में संवैधानिक विषय पर किस तरह उनके उठाए सवालों के कारण तूफान खड़ा हो गया, इस घटना का वर्णन किया है। उन्होंने आगे लिखा है, "सत्य कटु होता है लेकिन इस तरह के तूफान पैदा करने में मुझे मजा आता है।"[1]

वे एक कट्टर राष्ट्रवादी भी थे। दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों को रंगभेद नीति के कारण बहुत परेशानी होती है इसलिए उस सरकार की आर्थिक नाकेबंदी की जानी चाहिए, एक भारतीय सदस्य ने, ऐसा प्रस्ताव पेश किया। सभी यूरोपियन सदस्यों ने विरोध किया, लेकिन डा. आंबेडकर ने गुस्से के मारे टेबल पर हाथ पटकते हुए कहा, "यह भारतीय लोगों के स्वाभिमान का प्रश्न है।" आंबेडकर की इस मध्यस्थता के कारण ही काउंसिल ने यह बिल मंजूर किया था।[2]

सन् 1942 से 46 तक डा. आंबेडकर श्रम मंत्री थे। इस अवधि में उन्होंने श्रमिकों के लिए जो कानून बनवाए और जो सुधार किए, वे बहुत ही मूलभूत स्वरूप के हैं।

---

1. मोटे, ह. वि. : पृ. 516
2. दुर्गादास : पृ. 236

मजदूरों के प्रश्नों को सुलझाने के लिए सरकार, मालिक और श्रमिक–तीनों के प्रतिनिधियों का त्रिपक्षीय मंडल इन्हीं के कार्यकाल में बना। श्रम विभाग की स्थायी समिति पर इन्होंने ही तीन गैर सरकारी सदस्यों की नियुक्ति करवाई। मजदूरों को जो महंगाई भत्ता मिलता था वह अपर्याप्त होता था। उस भत्ते को उन्होंने बार बार बढ़वाया था। चाय बागान में काम करने वाले श्रमिकों की परिस्थिति में सुधार आए, इसलिए उन्होंने इंडियन टी कंट्रोल सुधार बिल मंजूर करवाया। कारखाने में काम करने वाले मजदूरों को युद्धकाल में यदि नुकसान होता है तो मजदूरों की नुकसान भरपाई मालिकों द्वारा होती रहे, यह सुविधा दिलवाई। खदान में काम करने वाली गर्भवती श्रमिक महिलाओं के प्रासविक समय की छुट्टियां और वेतन की व्यवस्था करवाने वाला बिल भी उन्होंने पास करवाया था।[1] उन्होंने 7 और 8 मई, 1943 को मुंबई में स्टैंडिंग लेबर कमेटी की बैठक में कहा था कि कुशल और अकुशल कारीगरों की भरती के लिए रोजगार दफ्तर खोलने का निश्चय किया गया है और उन्होंने ऐसे दफ्तरों को खुलवाया भी। साथ ही, मजदूरों की शिकायतों को दूर करने के लिए लेबर अफसरों की नियुक्तियां भी उन्होंने प्रारंभ करवाईं। उसके बाद अकुशल कारीगरों को तकनीकी शिक्षा देने की व्यवस्था और कारीगरों को उपयुक्त काम दिलवाने की जिम्मेदारी पहली बार भारत सरकार ने अपने ऊपर ली थी। इसी तरह मजदूरों और मालिकों के आपसी झगड़ों के हर विवाद को पंचाट द्वारा सुलझाना मालिकों के लिए अनिवार्य कर दिया गया था।

9 सितंबर, 1943 को प्लेनरी लेबर परिषद के सामने औद्योगीकरण पर भाषण देते हुए उन्होंने कहा था, "पूंजीवादी संसदीय प्रजातंत्र व्यवस्था में दो बातें अवश्य होती हैं। जो काम करते हैं उन्हें गरीबी में रहना पड़ता है और जो काम नहीं करते उनके पास अमापनीय पूंजी जमा हो जाती है। एक तरफ राजनैतिक समता और दूसरी तरफ आर्थिक विषमताएं। जब तक मजदूरों को मकान, कपड़ा, सहारा, निरोगी जीवन नहीं मिलते, विशेष रूप में जब तक वह सम्मान के साथ अपनी गर्दन ऊंची कर निर्भय हो जीवनयापन नहीं कर सकता तब तक स्वाधीनता कोई मायने नहीं रखती। हर मजदूर को सुरक्षा और राष्ट्रीय संपत्ति में सहभागी होने का आश्वासन मिलना आवश्यक है।" उनका ध्यान इस बात पर था कि श्रम का मूल्य बढ़े।

बाबासाहब स्वयं एक मजदूर नेता थे। अनेक सालों तक वे मजदूरों की बस्ती में रहे। इसलिए उन्हें श्रमिकों की समस्याओं की पूरी जानकारी थी। साथ ही, एक माने हुए अर्थशास्त्री होने के कारण इन सवालों को सुलझाने के तरीके भी उन्हें मालूम थे। इसलिए उनके शासनकाल में मिल मजदूरों, खान श्रमिकों, चाय बागान में काम करने

1. एसेंबली डिबेट : दि. 29-7-1943

वालों—इन सब के लिए जितने सुधार किये गये उतने उनसे पहले किसी के कार्यकाल में नहीं हुए थे। वे खुद जाकर उद्योग धंधों और कारखानों की जांच करते और मजदूरों की दिक्कतों को समझकर जरूरी कानून पास करवाते।

9 दिसंबर, 1943 को बाबासाहब धनबाद पहुंचे। वहां उन्होंने भुलनबरारी खदान का निरीक्षण किया। अपने सिर पर सुरक्षा टोपी पहनकर अपने अधिकारियों के साथ वे 400 फुट गहराई तक खदान में गये। किस तरह कोयला तोड़ा जाता है, उन्होंने इसको देखा। वहां काम कर रहे मजदूरों से उन्होंने सवाल किये। खदान से ऊपर आने के बाद उन्होंने कोयले के बड़े अंबारों पर काम करने वाले मजदूरों से बातचीत की। उसके वाद बाबासाहब मजदूरों की बस्ती में गये। एक मजदूर के घर में प्रवेश कर उन्होंने उसका जीवन स्तर देखा। उसके बाद वे खान मालिकों द्वारा चलाए जा रहे अस्पताल का निरीक्षण करने गये। वहां उन्होंने कुछ रोगियों से पूछताछ की। उन्होंने महिलाओं के वार्ड का भी निरीक्षण किया।

उसके बाद उन्हें दिगवाड़ी खदान में लगी अत्याधुनिक मशीनों को भी दिखाया गया। यहां उन्होंने मजदूरों के साथ लगभग एक घंटा बिताया। उन्होंने उन घरों का भी निरीक्षण किया जिन्हें खदान के मालिकों ने बनवाया था। उन्होंने मजदूरों को काम पर लगाने के तरीके की भी पूछताछ की। 'तिसरा' नामक खदान के भीतर जाकर उन्होंने मजदूरों के बारे में उत्सुकता से पूछताछ की। खदान से बाहर आते आते काफी रात हो गई थी। डा. साहब ने काम से लौटने वाले मजदूरों के घर जाकर उनके भोजन आदि के बारे में बड़े चाव से जानकारी हासिल की।

दूसरे दिन उन्होंने रानीगंज कोयला खदान के मजदूरों की परिस्थितियों और उत्पादन के तरीकों का अध्ययन किया। शिवपुर खदान के मजदूरों के लिए हाल ही में बनाये गये अस्पताल और वहां लगाई गई एक्स रे मशीन की भी जांच की। दोपहर के बाद डा. साहब ने कुष्ठ रोग निर्मूलन केंद्र का निरीक्षण किया। मजदूर महिलाओं के नन्हें मुन्नों के लिए चलाया जाने वाला 'पलनाघर' उन्होंने देखा। उन्होंने यह सुझाव भी दिया कि दुबले और कमजोर बच्चों के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाये।

जब वे सीतापुर खदान की तरफ से लौट रहे थे तो स्कूल के विद्यार्थियों ने पुष्पहार अर्पित करके उनका स्वागत किया। एक सात साल के विद्यार्थी से उन्होंने उसकी घरेलू हालत की पूछताछ की। डा. साहब ने सोधपुर में एक बहुत बड़ा झूला देखा जो एक घंटे में दो सौ टन रेत, खान को भरने के लिए, भीतर फेंक सकता था। धनबाद को लौटते समय वे मजदूर बस्ती के एक एक कमरे के घर देखने गये, जहां बेगुनिया खदान के मजदूर रहते थे। वहां उन्होंने मजदूरों के रहन सहन की जानकारी प्राप्त की।

11 सितंबर को धनबाद में केंद्र सरकार, बंगाल तथा बिहार राज्य के प्रतिनिधियों और खदान मजदूरों के तीन संगठनों की परिषद को संबोधित किया।[1]

जनवरी 1944 में खदान में काम करने वाले मजदूरों के कल्याण के लिए एक फंड निर्माण करने का आदेश जारी किया गया। इसके लिए जो सलाहकार समिति नियुक्त की गई उसमें पहली बार महिला प्रतिनिधि को स्थान देना तय हुआ था। डा. आंबेडकर ने ही श्रमिक बीमा योजना की नींव रखी थी। फरवरी 1944 में कोयला खदान के स्त्री मजदूरों को पुरुष मजदूरों के बराबर मजदूरी देने का आदेश निकलवाया गया। इतना ही नहीं, डा. आंबेडकर ने श्रमिकों के लिए अनेक सुविधाओं की घोषणा की।

29 अप्रैल, 1944 को बिहार के कोडर्मा गांव में अभ्रक खदान परिषद हुई। इसके अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए[2], डा. आंबेडकर ने अभ्रक उद्योग को मजबूत नींव पर स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की और चेतावनी देते हुए कहा, "यदि मजदूरों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलेगा तो किसी भी प्रकार का सुधार संभव नहीं है। यह मालिकों का कर्तव्य है कि वे श्रमिकों के जीवन स्तर की ओर ध्यान दें।" यहीं उन्होंने मजदूरों के सुधार के लिए एक फंड निर्माण करने की घोषणा की।

इसके पूर्व ही उन्होंने 28 अप्रैल को कोडर्मा की अभ्रक की खदानों का निरीक्षण किया था। बिजली से संचालित झूले से वे खदान में 400 फुट नीचे गये, वहां अभ्रक खोदकर निकालने तथा अन्य प्रक्रियाओं का निरीक्षण किया। यहां भी उन्होंने मजदूरों की झोपड़ियों वाली बस्ती देखी और उनके जीवन स्तर के बारे में चर्चा की। उन्होंने यहां अभ्रक की लादियां बनाना, उन्हें आकार देना तथा उनके टुकड़े काटना, चादर बनाना इत्यादि कामों की भी जानकारी हासिल की। यहां से लौटने पर उन्होंने इस उद्योग में होने वाले भ्रष्टाचार और माल की चोरियां कम करने के उपाय करने के लिए सरकारी आदेश 3 जून, 1944 को जारी किया।

23 अगस्त, 1944 को डा. साहब ने कलकत्ता में सेवा योजना कार्यालय का मुआयना किया। इसके साथ ही उन्होंने केंद्रीय मुद्रणालय और स्टेशनरी आफिस को भी देखा। उन्होंने लेबर कमिश्नर के साथ मजदूरों के सवाल पर आगामी योजनाओं की चर्चा की। शाम को उन्होंने बंगाल सरकार द्वारा स्थापित मजदूर संघ सलाहकार समिति को संबोधित किया और किस प्रकार भारत सरकार की योजनाओं को कार्यान्वित किया जाये, इस बारे में मार्गदर्शन किया।

20 अक्तूबर को उन्होंने दिल्ली में त्रिपक्षीय मजदूर परिषद के अध्यक्ष पद से सदस्यों

1. इंडियन इंफर्मेशन : 1-1-1944
2. वही : 15-5-1944

का मार्गदर्शन किया। नवंबर माह में उन्होंने फैक्टरी दुरुस्ती बिल पेश किया और मजदूरों को सात दिनों की सवेतन छुट्टी दिलवाने की पहली बार व्यवस्था की।

मार्च 1945 में खदानों की मजदूरनियों के प्रासविक अवकाश के बारे में महत्वपूर्ण विधेयक पास करवा लिया। फरवरी 1946 में उन्होंने दस घंटों से काम का दिन छोटा कर उसे आठ घंटों का कार्य दिवस बनाने के लिए विधेयक पास करवाकर भारत के मजदूरों के जीवन में क्रांतिकारी सुधार ला दिया। डाक्टर साहब ने भारत के कारीगरों, श्रमिकों, मजदूरों और मजदूरनियों के लिए श्रम विभाग में संबंधित सभी विभागों में आमूल परिवर्तन लाने वाले कई सुधारों को कार्यान्वित किया था।

उनके दामोदर बांध योजना के बारे में किए काम, पूर्वी भारत का कायापलट करने वाले सिद्ध हुए हैं। इस योजना की जानकारी पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक होगी।

दामोदर नदी को बिहार का अभिशाप माना जाता था। हर तीसरे-चौथे साल नदी में भीषण बाढ़ आती और लाखों लोगों को बेघरबार कर जाती। इस भयंकर बाढ़ से अनगिनत लोगों के जान माल की बरबादी हो जाती। सन् 1859 से इस नदी की बारह भयंकर बाढ़ें जनता ने देखी और सही थीं। लेकिन 17 जुलाई, 1943 में ऐसी विकराल बाढ़ आई कि पिछले सभी उच्चमान टूट गये। सत्तर गांव जलमग्न हो गये, अठारह हजार घर बह गये तथा असंख्य लोग बेघर हो गये।

इस बाढ़ ने बंगाल से संपूर्ण भारत का संबंध तोड़ दिया था। वहां खाद्य सामग्री पहुंचाना कठिन हो गया। उन दिनों जापानी सेना कलकत्ता पर बमबारी कर रही थी। सब तरफ अव्यवस्था फैल गई थी। इस आपदा के समय ही बंगाल में भीषण अकाल भी पड़ा जिसने कहर बरपा कर दिया।

इस अकाल से लगभग पच्चीस लाख लोग मौत के मुंह में समा गये, लाखों अपाहिज हो गये। ऐसे समय दामोदर नदी पर नियंत्रण करने के लिए भारत सरकार ने एक स्थायी योजना तैयार करने की ठानी।

पूर्वी भारत का रूप बदलने वाला यह काम डा. बाबासाहब आंबेडकर को सौंपा गया। डा. आंबेडकर उस समय कोयला खदान, प्रिंटिंग-स्टेशनरी, सैनिक-असैनिक अधिकारियों के लिए भिन्न संस्थानों में खुले हुए प्रशिक्षण केंद्रों में तकनीकी शिक्षा देने के कार्य, प्रचार और सैनिक भरती, गृह निर्माण और सार्वजनिक निर्माण कार्य, पिलानी का प्रशिक्षण केंद्र--ये सारे विभाग देख रहे थे और श्रम विभाग का सारा कार्यभार डा. आंबेडकर को सौंपा हुआ था। सन् 1943 के अंत में उन्हें सिविल पायोनियर फोर्स का काम भी सौंप दिया गया था।

डा. आंबेडकर को लगा कि यह दामोदर घाटी योजना गरीबों का कल्याण करने वाली स्थायी योजना बन जायेगी। अमेरिका में टेनेसी नदी कई प्रदेशों में बहती है।

एक समय उसकी बाढ़ से लोग त्रस्त हो गये थे। उनका विश्वास था कि जिस तरह अमेरिकन जनता ने इस नदी का मानव सेवा के लिए उपयोग किया है, उसी आधार पर दामोदर नदी को भी जन कल्याणकारी बनाया जा सकेगा। उन्होंने टेनेसी घाटी योजना के बारे में अनेक ग्रंथ मंगवाये। अपने विभाग की नौकरशाही के भरोसे रहने का डाक्टर साहब का स्वभाव नहीं था। उन्होंने टेनेसी घाटी योजना के साथ ही भारत में मैसूर रियासत के तुंगभद्रा और पंजाब के छोटे बड़े बांधों का अध्ययन किया।

श्रम विभाग के अंतर्गत सेंट्रल पावर बोर्ड नामक एक मंडल की स्थापना की गई। डा. आंबेडकर स्वयं इस मंडल के अध्यक्ष थे। नदी, बांध, विद्युत परियोजनाओं के सब कार्य इस मंडल को सौंप दिये गये। लगभग तीस महीनों तक दामोदर नदी की बांध परियोजना पर शासन का विचार मंथन चलता रहा। आखिर डा. आंबेडकर की दृढ़ नीति के कारण सरकारी निर्णय लिया गया। डा. आंबेडकर ने ही दामोदर घाटी योजना कार्यान्वित की।[1]

इन्हीं दिनों ओडिसा के प्रमुख नेता (जो बाद में ओडिसा के मुख्यमंत्री बने) हरे कृष्ण मेहताब ने जेल से एक पत्र भेजकर डा. आंबेडकर से अनुरोध किया था कि वे महानदी की ओर भी ध्यान दें। इसलिए डा. आंबेडकर ने नवंबर 1945 में एक बैठक कटक में भी बुलाई थी। इस बैठक में उन्होंने संबंधित राज्य अधिकारियों को जल मार्ग को नियंत्रण में रखने का महत्व समझाकर उनके संदेह दूर किये।

दामोदर घाटी योजना को कार्यान्वित करने के लिए एक अनुभवी, निपुण यंत्र विशेषज्ञ की आवश्यकता थी। वायसराय वेवेल की यह राय थी कि मिस्र में आस्वान बांध का निर्माण करने वाले ब्रिटिश इंजीनियर को यह कार्य सौंपा जाये। बाबासाहब ने साफ शब्दों में कहा कि इंग्लैंड में भारत के समान विस्तीर्ण नदियां नहीं हैं और वहां के इंजीनियरों को विशाल नदियों पर बांध बनाने का अनुभव नहीं है। उनसे अधिक अनुभवी और ऐसे कामों में दक्ष अमेरिकी विशेषज्ञ ही इस काम के लिए उपयुक्त हैं।[2] उन्होंने बरतानवी सरकार को इस दलील को मानने के लिए विवश किया और अमेरिका की टेनेसी वैली अथॉरिटी में काम कर रहे दुर दुइन नामक इंजीनियर को उन्होंने इस योजना को कार्यान्वित करने का भार सौंपा। भारत सरकार के 1935 के कानून के अनुसार जल मार्ग प्रादेशिक सरकार के नियंत्रण में आता था। डा. आंबेडकर को यह बात खटक रही थी। भारत का संविधान तैयार करते समय उन्होंने इस मामले को केंद्रीय कार्यसूची में समाविष्ट किया।

अमेरिकन इंजीनियरों का कार्य समाप्त होने पर यह काम सेंट्रल पावरबोर्ड अथवा

1. हार्ट : पृ. 72
2. दुर्गादास : पृ. 236

सेंट्रल वाटर इरिगेशन एंड नेविगेशन कमीशन को संभालना था। उस कमीशन का काम संचालित करने के लिए एक सुयोग्य भारतीय अधिकारी नियुक्त करना आवश्यक था। इस काम के लिए भारतीय अधिकारी को ही नियुक्त किया जाए, यह डा. आंबेडकर की जिद थी। उन दिनों पंजाब के चीफ इंजीनियर के पद पर रायबहादुर ए. एन. खोसला काम कर रहे थे। आंबेडकर के बारे में उसके मन में कोई पूर्व धारणा घर कर गई थी। उन्होंने डा. आंबेडकर के मातहत काम करने से पहले इंकार कर दिया। बाद में आंबेडकर ने उन्हें मिलने के लिए बुलवाकर उनसे कहा, "किसी अमेरिकी या बरतानवी इंजीनियर को इस काम के लिए नियुक्त करना मेरे लिए मुश्किल नहीं है मगर मुझे भारतीय यंत्र विशेषज्ञ चाहिए।" खोसला के मन से संदेह दूर हुआ। उनकी आंखें खुल गईं और उन्होंने इस काम को तुरंत स्वीकार कर लिया।[1]

दामोदर घाटी योजना डा. आंबेडकर के दिमाग की उपज है। वे उसके जन्मदाता हैं और उन्होंने ही इस योजना के स्वप्न को साकार करवाया था। मगर इस योजना के संपन्न होने से पूर्व ही देश के विभाजन की विपत्ति से सारा देश दहल उठा था। आजादी के बाद श्री एन. वी. गाडगिल ने इस योजना को पूरा करवाया। सन् 1922 में जार्ज डब्लू. बॉरिस ने इस प्रकार की प्रादेशिक योजनाओं की नींव रखी थी। वहां की जनता ने उनकी स्मृति में एक बांध को उनका नाम दिया था। लेकिन भारत में डा. आंबेडकर इस सम्मान से वंचित रहे हैं। जिस दामोदर नदी घाटी योजना के लिए डा. आंबेडकर ने अथक परिश्रम किया, मुसीबतें झेलीं, परेशानियां मोल लीं, जान लड़ा दी, और बिहार, उड़ीसा, बंगाल को बहार दी, नवजीवन दिया, उनकी हमें याद भी नहीं आती।

राजनीति की गड़बड़ भरी जिदंगी में भी डा. साहब का लेखन कार्य बराबर चलता रहता था। साथ ही एक महाविद्यालय शुरू करने का भी उनका विचार था जो एक साल से उनके मन को प्रेरित कर रहा था। परंतु धन की व्यवस्था करने में उन्हें विलंब हुआ। उन्होंने 'पीपल्स एजुकेशन' सोसायटी की स्थापना की। इस संस्था के तत्वावधान में उन्होंने 20 जून, 1946 को सिद्धार्थ कालेज की स्थापना की। उसके लिए कर्तव्यनिष्ठ, क्षमाशील शिक्षकों को नियुक्त किया। कालेज के लिए सिद्धार्थ नाम चुनकर उन्होंने फिर एक बार बौद्ध धर्म के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की। मुंबई में कालेज की स्थापना कर डा आंबेडकर दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

---

1. भगवानदास : वाल्यूम 3 (प्रस्तावना)

47

जब 25 जून को डा. साहब दिल्ली से लौटे तो बांबे सेंट्रल स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया गया। उस समय उन्होंने अपने अनुयायियों को इशारा दिया, "आप सब लोग अपने अधिकारों और इंसाफ के लिए हथेली पर सिर रखकर संग्राम के लिए तैयार रहें।"

29 जून को अंतरिम सरकार की स्थापना हुई। इस प्रभारी शासन के चलने के बाद 25 जुलाई को मुंबई विधान सभा का वर्षाकालीन अधिवेशन प्रारंभ हुआ। आंबेडकर के अनुयायियों ने अपनी मांगों की ओर जनता और सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए भारत भर में सत्याग्रह प्रारंभ किया। 15 जुलाई को पुणे में सत्याग्रह शुरू हुआ। लखनऊ, नागपुर, कानुपर इत्यादि शहरों में जहां प्रादेशिक विधान सभाओं की बैठकें हो रही थीं, वहां भी सत्याग्रह किया गया। आंबेडकर ने पत्रकारों से कहा कि यह आंदोलन त्रिमंत्रीय परिषद की योजना के विरुद्ध है। इस सत्याग्रह में दलित फेडरेशन के अधिकांश कार्यकर्ता हजारों अनुयायियों सहित जेल गये। डा. आंबेडकर ने घोषणा की, "जरूरत महसूस हुई तो मैं भी जेल जाऊंगा।" जेल जाते समय सत्याग्रही 'पुणे समझौता रद्द करो', 'हमारा ध्येय है शासन अधिकार', 'हम शासनकर्ता जमात बनेंगे', 'आंबेडकर जिंदाबाद' इत्यादि नारे बुलंद कर रहे थे।

21 जुलाई को संवाददाताओं को मुलाकात देते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "अंग्रेज भारत छोड़ने वाले हैं। हम कांग्रेस से सवाल करते हैं कि यह स्पष्ट किया जाय कि छह करोड़ दलितों को संविधान में कौन-सा स्थान प्राप्त होगा ? दलितों को उनके न्यायपूर्ण अधिकार दिलवाने के लिए हम सारे देश में सत्याग्रह करेंगे। हमारा यह आंदोलन चलता रहेगा। हमारे स्वयंसेवक जो अहिंसावृत्ति अपना रहे हैं, वह गांधीजी को भी आदर्श लगेगी।" उन्होंने मांग की, "पुणे समझौते को रद्द करो।"

यह सत्याग्रह पंद्रह दिनों तक चला। इसके प्रभाव से मुंबई विधान सभा का अधिवेशन तक स्थगित करना पड़ा। मुंबई प्रदेश कांग्रेस के नेता स. का. पाटील ने सिद्धार्थ कालेज में 27 जुलाई को आंबेडकर से भेंट की और उनके साथ चर्चा की। फिर वे दोनों सरदार वल्लभभाई पटेल से भी मिले। परंतु बातचीत निष्फल रही।

24 अगस्त को वायसराय ने अंतरिम मंत्रिमंडल के सदस्यों के नामों की घोषणा की। मुस्लिम लीग ने असहयोग किया था। इस मंत्रिमंडल में जगजीवन राम का समावेश किया गया था।

लगभग इसी समय दलित फेडरेशन की कार्यकारिणी समिति की बैठक पुणे में चल रही थी। इस समिति ने जगजीवन राम से तार द्वारा यह अनुरोध किया कि वे मंत्री पद स्वीकार न करें। साथ ही उन्होंने यह प्रस्ताव पास किया कि दलित समाज के व्यक्ति सभी सम्माननीय पदवियों को त्याग दें। इसके मुताबिक कई कार्यकर्ताओं ने 'राय साहब' और 'राय बहादुर' की उपाधियों का त्याग कर दिया।

2 अक्तूबर को मुस्लिम लीग ने मंत्रिमंडल में प्रवेश किया। ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनी मांगों पर कुछ सुलह हो सके, इस उद्देश्य से डा. आंबेडकर 15 अक्तूबर को लंदन के लिए रवाना हुए। वहां पहुंचते ही उन्होंने प्रेस प्रतिनिधियों से निवेदन किया, "मजदूर दल के मंत्रिमंडल ने अस्पृश्यों के साथ विश्वासघात किया है।" उन्होंने एक वक्तव्य तैयार कर उसे सभी दलों के प्रमुख नेताओं को प्रेषित किया। उन्होंने भूतपूर्व भारत मंत्री लार्ड टेंपलवुड तथा सैम्युअल होअर से मिलकर अपना पक्ष उनके सामने प्रस्तुत किया। उसके बाद वे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली और भारतमंत्री से मिले। पार्लियामेंट के कुछ उदार दल तथा मजदूर दल के सदस्यों को आमंत्रित कर उनके सामने दलितों की समस्याओं को समझाने का भी उन्होंने प्रयत्न किया। अस्पृश्यों के प्रश्न को वे अपने जीवन मरण का सवाल समझकर रात दिन संघर्ष करते रहते थे। अपनी सारी कोशिशों के बाद वे भारत लौटे।

मुंबई के 'ग्लोब' समाचारपत्र को दी गई मुलाकात में उन्होंने कहा, "सहभोज और सहजीवन अर्थात अंर्तजातीय विवाह द्वारा अस्पृश्य समाज हिंदू समाज के साथ घुल मिल सकता है। सामाजिक दर्जा बढ़ जाने के बाद यह समरस होने की प्रक्रिया तीव्र हो जायेगी।"

इन्हीं दिनों डा. आंबेडकर का ग्रंथ 'हू वर द शूद्राज' प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में बताया गया है कि शूद्र पहले सूर्यवंश के क्षत्रिय थे। पहले केवल तीन ही वर्ण अस्तित्व में थे। शूद्र समाज का क्षत्रियों में समावेश था। परंतु ब्राह्मण और क्षत्रियों में लगातार संघर्ष चलता रहा। इस आपसी लड़ाई के कारण ब्राह्मणों ने राजाओं का उपनयन करने से इंकार कर दिया। इस कारण क्षत्रियों का यह समाज अलग हो गया और उसे वैश्यों से निकृष्ट समझा जाने लगा। इस तरह चौथा वर्ण अस्तित्व में आया। आंबेडकर ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

इस ग्रंथ की प्रस्तावना में डा. आंबेडकर लिखते हैं, "ऐतिहासिक सत्य का शोध करने के लिए आवश्यक डा. जॉनसन के दृढ़ निश्चय से मैं पवित्र धर्म ग्रंथों को

उलथा कर रखना चाहता हूं। इससे हिंदुओं को पता चल सकेगा कि उनके समाज तथा देश के अधोपतन तथा विनाश का कारण बने हैं, इन धर्म ग्रंथों के सिद्धांत। दूसरी बात यह है कि भवभूति के कथनानुसार काल अनंत है और पृथ्वी अपार है। कभी न कभी कोई एक ऐसा इंसान पैदा होगा जो, मैंने जो कुछ कहा है उस पर विचार करेगा।" इस ग्रंथ को डा. आंबेडकर ने आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ शूद्र पुरुष ज्योतिबा फुले को अर्पित किया है।

अंतरिम मंत्रिमंडल में मुस्लिम लीग की ओर से बंगाल के शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के नेता जोगेन्द्र नाथ मंडल को विधि मंत्री के रूप में लिया गया।

9 दिसंबर, 1946 से संविधान समिति की बैठकें प्रारंभ हुईं। मुस्लिम लीग के नेताओं ने संविधान समिति का बहिष्कार किया। 13 दिसंबर, 1946 को संविधान समिति के उद्देश्यों और ध्येय को स्पष्ट करने वाला प्रस्ताव रखा गया। इस प्रस्ताव पर डा. जयकर ने एक उपसूचना सुझाई। इस उपसूचना में कहा गया कि मुस्लिम लीग और रियासतों के प्रतिनिधि सम्मिलित होने तक यह प्रस्ताव पारित न किया जाये। उन दिनों डा. जयकर भारत के महान कानून विशेषज्ञ माने जाते थे। लेकिन वल्लभभाई पटेल, मसानी आदि कांग्रेस वालों ने खूब कड़ी आलोचना कर डा. जयकर को शांत कर दिया। इस समय संविधान सभा के अध्यक्ष डा. राजेन्द्र प्रसाद ने आंबेडकर से बोलने की विनती की। अचानक ही इस तरह के अनुरोध पर कांग्रेसी सदस्यों में कानाफूसी होने लगी। डा. आंबेडकर तुरंत खड़े हुए और चारों ओर निहार कर उन्होंने अपनी धीर-गंभीर आवाज में बोलना शुरू किया। लगभग आधा घंटे तक वे धाराप्रवाह बोलते रहे। संविधान के इतिहास में उनके अवर्णनीय वक्तृत्व का यह एक अविस्मरणीय दिन माना गया।

उन्होंने अपने भाषण में कहा, "आज हम भले ही राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से टूट गये हों फिर भी परिस्थिति और समय अनुकूल होते ही हमारी एकता को कोई रोक नहीं सकेगा। भले ही आज मुस्लिम लीग हिंदुस्तान के टुकड़े करने के लिए आंदोलन चला रही है, फिर भी एक ऐसा भी दिन उदित होगा जब वह भी महसूस करेंगे कि अखंड भारत ही हम सबके लिए हितकर है।" बर्क के वाक्य को दुहराते हुए उन्होंने कहा, "शासनाधिकार सौंपना तो सरल बात है, मगर समझदारी देना कठिन बात है। सबको अपने साथ लेकर आगे बढ़ने और आगे चलकर हमारी एकता बलवान हो, ऐसा मार्ग अपनाने की हममें क्षमता है, शक्ति है तथा बुद्धिमत्ता है। इसे हम अपने व्यवहार से सिद्ध करने का प्रयास करें।"

डा. आंबेडकर के इस भाषण के बाद कांग्रेस का उनकी ओर देखने का दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया। सारे भारतीय समाचारपत्रों ने "अखंड हिंदुस्तान की घोषणा" शीर्षक

देकर अग्रलेख लिखकर आंबेडकर पर स्तुतिसुमन बरसाए। आचार्य अत्रे ने उसी दिन से आंबेडकर के विरुद्ध कुछ न लिखने की शपथ ली। उस अवसर का वर्णन करते हुए अत्रे ने लिखा, "जो हाथ पत्थरों की बौछार करने के लिए उठे थे उन्हीं हाथों ने फूल बरसाए।" 'विविधवृत्त' समाचार ने शेक्सपीयर के 'ज्यूलियस सीजर' नाटक के सीजर के वर्णन में किंचित परिवर्तन कर लिखा, "आंबेडकर खड़े हुए। उन्होंने देखा और उन्होंने जीत लिया।" एक आलोचक और निंदक के रूप में जाने गए डा. आंबेडकर अब संविधान समिति के सलाहकार बन गये। इस भाषण के बाद सभा ने प्रस्ताव पास करना स्थगित कर दिया जिसे बाद में 20 जनवरी, 1947 को पास किया गया।

48

20 दिसंबर, 1946 को अखिल दलित विद्यार्थी फेडरेशन के विद्यार्थियों को भेजे गये उपदेश भरे संदेश में बाबासाहब ने लिखा है, "दलित नवजवानों को जब कभी अवसर मिले तो वे यह सिद्ध करने का प्रयास करें कि वे बुद्धिमानी और योग्यता में किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा रत्ती भर भी काम नहीं हैं। साथ ही, उन्हें सदा ही निजी स्वार्थ की ओर ध्यान देकर अपने समाज को स्वतंत्र, बलशाली और प्रतिष्ठित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।"[1]

मुंबई-नागपुर विभाग में आंबेडकर के अनुयायियों और कांग्रेस के कुछ कार्यकर्ताओं में जातीय मनमुटाव के कारण तनाव फैला हुआ था। डा. साहब मुंबई लौटने पर सिद्धार्थ कालेज के कामकाज में ध्यान देने लगे थे। उनके निवास 'राजगृह' के आसपास कुछ गुंडे चक्कर काट रहे हैं इसलिए वे बाहर न निकलें, इस सलाह की परवाह न कर वे 'राजगृह' में रहने के लिये गये। उन्होंने 27 फरवरी को बिहारी अस्पृश्य सैनिकों पर देवलाली में चल रहे मुकदमों में मुलजिमों के बचाव का कार्य किया।

भारत को आजादी मिलने का समय निकट आ रहा है, इसका पता लगते ही डा. आंबेडकर ने संविधान का मसौदा तैयार करके संविधान समिति में पेश कर दिया। यह मसौदा मार्च 1947 में "स्टेट्स एंड मायनारिटीज" शीर्षक से छपा था। यह मसौदा भारतीय संविधान का प्रारूप ही था। शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की ओर से पेश किये गये इस मसौदे में, अस्पृश्यों को अल्पसंख्यक न समझने वालों को करारा जवाब दिया गया था। साथ ही, भारत के भावी संविधान में नागरिकों के मूलभूत अधिकार क्या होने चाहिए, अल्पसंख्यकों को संरक्षण कैसे मिल सकेगा, अल्पसंख्यकों के अधिकारों के बचाव के लिए क्या व्यवस्थाएं की जानी चाहिए इत्यादि मामलों का स्पष्टीकरण भी इसमें किया गया है। डा. आंबेडकर के संविधान रचना का पांडित्य इस प्रारूप में झलकता है। उन्होंने 1946 के चुनावों का आंकड़ों सहित विश्लेषण कर यह सिद्ध कर दिया कि पुणे का समझौता किस प्रकार दलितों के लिए हानिकारक रहा है।

---

1. श्री टी. बी. गेडाम के लिखे हुए पत्र : रिपोर्ट आफ आल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट स्टूडेंट्स फेडरेशन, सेकंड सेशन, हेल्ड एट नागपुर आन 25-27 दिसंबर 1946; 1947

इस प्रारूप में जो मुख्य बात सुझाई गई है वह है बीमा कंपनियों का राष्ट्रीयकरण, उद्योगधंधों का राष्ट्रीयकरण और खेती का राष्ट्रीयकरण। संविधान में राष्ट्रीयकरण करने की व्यवस्था को समाविष्ट करने की सलाह भी दी गई है। समाजवादी राज्य व्यवस्था का समर्थन करने के बाद भी आंबेडकर ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को निर्विवाद रखा है।

संविधान सभा का तीसरा अधिवेशन अप्रैल 1947 में हुआ। 29 अप्रैल, 1947 को सरदार पटेल ने अस्पृश्यता की परंपरा को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा और वह पारित हो गया। समाचारपत्रों ने "ऐतिहासिक घटना", "मानवीय स्वतंत्रता की विजय" कहकर इस घटना का वर्णन किया। सभी सदस्यों ने मेजें थपथपाकर महात्मा गांधी का जयजयकार किया। डा. आंबेडकर ने जीवनभर अस्पृश्यता को समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया था, मगर अखबारवालों ने उनके नाम का जिक्र तक नहीं किया।

3 जून, 1947 को लॉर्ड माउंटबेटन लंदन से वापस लौटे। उन्होंने गांधी और नेहरू के सामने देश के विभाजन का प्रस्ताव रखा। दोनों ने उसे कांग्रेस कमेटी की अखिल भारतीय समिति से स्वीकृत करवा लिया। हिंदू महासभा ने इसका कड़ा विरोध किया, लेकिन उनकी सारी चीख पुकार अरण्यरोदन बनकर रह गई। 15 जुलाई को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने हिंदुस्तान की आजादी का प्रस्ताव पास किया। बंगाल और पंजाब का विभाजन हुआ। बंगाल के विभाजन की वजह से बाबासाहब आंबेडकर का स्थान रिक्त हो गया। परंतु कांग्रेस ने बाबासाहब के ज्ञान और अनुभव का राष्ट्र के हित तथा निर्माण के लिए उपयोग करने का निश्चय किया। बंबई विधान मंडल ने डा. जयकर के त्यागपत्र के कारण रिक्त स्थान पर डा. आंबेडकर को चुना।

जब 3 जुलाई को डा. आंबेडकर मुंबई आये उस समय वे संविधान सभा की ध्वज समिति के सभासद थे। उनके मुंबई प्रवास के समय हिंदू महासभा के अनेक कार्यकर्ताओं ने उनसे भेंट की और उन्हें यह सुझाया कि राष्ट्रध्वज भगवा हो। 10 जुलाई को डा. आंबेडकर दिल्ली वापस जाने लगे तो उन्हें सांताक्रुज हवाई अड्डे पर भगवा ध्वज भी अर्पित किया गया। उस समय उन्होंने आंबेडकर को यह वचन दिया था कि यदि भगवा ध्वज के लिए आंदोलन करना पड़े तो वे उसका समर्थन करेंगे। परंतु 22 जुलाई को संविधान सभा ने अशोक चक्र अंकित तिरंगे ध्वज को राष्ट्रध्वज के रूप में स्वीकृत किया। भगवा ध्वज समर्थकों ने कोई आंदोलन नहीं किया।

डा. आंबेडकर ने नयी दिल्ली में सीमा निर्धारण करते समय सरकार को सतर्कता का संकेत देते हुए कहा, "देश की सीमाएं यदि नैसर्गिक न होंगी तो भारत सरकार को उसकी रक्षा करने में बहुत कठिनाइयां होंगी। देश के संरक्षण और उसकी सुरक्षा के लिए बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जायेगा।"

जुलाई 1947 के अंतिम सप्ताह में कांग्रेस दल ने मंत्रिमंडल के गठन में संभावित मंत्रियों के नामों की सूची तैयार की। पंडित नेहरू ने डा. आंबेडकर को बुलवाकर उनसे पूछा, "क्या आप विधि मंत्री का पद स्वीकार करेंगे ?" उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि उन्हें नियोजन तथा विकास विभाग भी दिया जायेगा। डा. आंबेडकर ने इसे अपनी स्वीकृति दे दी।

3 अगस्त को केंद्रीय मंत्रियों की सूची में डा. आंबेडकर का नाम सभी ओर झलका। उस दिन वे मुंबई में थे। वहां उन्होंने चेंबूर में आयोजित नगरपालिका के मजदूर संघ की ओर से बुलाई गई सभा में भाषण दिया। इस अवसर पर उन्हें इमारत फंड के लिए दो हजार रुपयों की थैली अर्पित की गई। 6 अगस्त को मुंबई के वकीलों की संस्था की ओर से मंत्रिपद पर नियुक्त होने के उपलक्ष में सम्मानित कर उनका सत्कार किया गया।

15 अगस्त को भारत आजाद हुआ। 29 अगस्त को संविधान सभा ने संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए प्रारूप समिति का गठन किया। उसका अध्यक्ष पद बाबासाहब आंबेडकर को दिया गया। इस तरह भारत के भवितव्य का शिल्प निर्माण करने का कार्य उनको सौंपा गया।

25 सितंबर को डा. आंबेडकर ने सिद्धार्थ महाविद्यालय के वक्तृत्व विभाग का उद्घाटन किया। भाषण देने की कला किस तरह प्राप्त और विकसित की जाये, इस बारे में उन्होंने विद्यार्थियों को हितोपदेश दिया। उन्होंने विद्यार्थियों के मन पर प्रभाव अंकित करने के लिए कहा, "वक्तृव्य शक्ति प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को साधना करनी होगी। प्रयत्नों से तो असंभव भी संभव है। इसीलिए भाषण देने की साधना करो।"

इन्हीं दिनों देश की पूर्वी तथा पश्चिमी सीमा पर भीषण जातीय दंगों की रक्तरंजित ज्वालाएं भड़क उठीं। लाखों का कत्लेआम हुआ, नारियों के अपहरण और उन पर जुल्म-सितम, उन्हें कलंकित करना इत्यादि घृणित कार्यों की कोई सीमा ही नहीं रही। डा. आंबेडकर ने पाकिस्तान पर लिखे गए अपने ग्रंथ में हिंदुस्तान से मुसलमानों और पाकिस्तान से हिंदुओं के स्थानांतरण के बारे में तजवीजें सुझाई थीं। उन पर ध्यान न देने के कारण दोनों देशों की असहाय गरीब जनता हत्याकांड-कत्लेआम की शिकार हुई। डा. आंबेडकर ने एक बयान निकालकर पाकिस्तान सरकार की निंदा की। और, दलित समाज को राय दी, "वे जो भी रास्ता मिले, जो भी साधना संभव हो किसी भी तरह हिंदुस्तान पहुंच जायें।" उन्होंने यह भी कहा कि धर्मांतरण करने वाले दलितों को भी समाज में दुबारा स्वीकार किया जायेगा। आखिर अस्पृश्यों को वहां से छुड़ा लाने के

लिए उन्होंने नेहरूजी से अनुरोध किया कि वे महार रेजिमेंट को वहां भिजवाएं। इन सैनिकों ने लगभग पचहत्तर हजार अस्पृश्य नर-नारियों को गुंडों के चंगुल से छुड़ाकर भारत पहुंचाया।

पश्चिम पाकिस्तान से भारत आये अस्पृश्य शरणार्थियों को, पूर्वी पंजाब में मुसलमानों द्वारा छोड़ी गई जमीन दी जाये। यह सुझाव बाबासाहब ने पंडित नेहरू को दिया। यह लगभग चालीस लाख एकड़ जमीन थी। लेकिन मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरों की साजिश की वजह से दलितों को केवल एक लाख एकड़ जमीन ही मिल पाई।[1]

इन्हीं दिनों में डाक्टर पी. लक्ष्मी नरसू के लिखे हुए ग्रंथ 'एसेंस आफ बुद्धिज्म' का तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ की प्रस्तावना में बाबासाहब ने लेखक की सर्वधर्मों के प्रति प्रकट निष्ठा की सराहना की है और लिखा है, "आज तक प्रकाशित सारे ग्रंथों में यह पुस्तक बौद्ध धर्म पर लिखी गई सर्वोत्तम किताब है। इस दृष्टि से मैं इस ग्रंथ की विशेष सिफारिश करता हूं।"

अब बाबासाहब संविधान का मसौदा तैयार करने के काम में लग गये थे। वे अपने स्वास्थ्य की चिंता न कर दिन-रात संविधान बनाने के काम में जुट गये। भिन्न-भिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं और रहन-सहन वालों को देश के एक सूत्र में बांधकर एकत्र रख सकने वाले संविधान की उन्हें रचना करनी थी।

जनवरी 1948 में वे मुंबई पधारे। धोबी तालाब नाइट स्कूल की वादविवाद प्रतियोगिता के अवसर पर विद्यार्थियों को उन्होंने उपदेश दिया। भाषण देने की कला को कोशिशों से हासिल किया जा सकता है, यह कहकर उन्होंने कुछ नाम और शोहरत पाए हुए मशहूर वक्ताओं की बातें सुनाईं। गोपालकृष्ण गोखले जानेमाने लेखकों के उद्धरण मुखाग्र कर लिया करते और उनका अपने भाषण में उपयोग किया करते थे। फीरोजशाह मेहता अपने घर में तैयार किये गये शीशमहल में अपने भाषण का पूर्वाभ्यास किया करते थे। चर्चिल अपने शर्ट के छोर पर वाद के हेतु नोट कर लिया करते थे। ऐसी कुछ स्मृतियां सुनाकर उन्होंने विद्यार्थियों को मेहनत कर वक्तृत्व कला सीखने की सलाह दी।

30 जनवरी, 1948 को महात्मा गांधी की बिरला भवन के प्रांगण में गोली मारकर हत्या की गई। सारा देश शोक के सागर में डूब गया। गांधीजी की शव यात्रा में कुछ समय के लिए सम्मिलित होकर डा. साहब वापस लौटे। वे स्वयं इतने थके हुए थे कि अधिक समय तक उस शव यात्रा का श्रम नहीं सहन कर सकते थे।

---

1. सोहनलाल शास्त्री : पृ. 63

महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद अलवर रियासत के प्रधानमंत्री डा. एन. बी. खरे को बरखास्त कर दिया गया था। अलवर नरेश को भी नजरकैद में रखा गया था। वैसे अलवर रियासत के प्रधानमंत्री की हैसियत से डा. खरे संविधान समिति के सदस्य भी थे। उनकी यह सदस्यता भी रद्द कर दी गई। यह खबर 7 फरवरी, 1948 को रेडियो पर प्रसारित की गई थी। उसे सुनकर डा. आंबेडकर पूछताछ के लिए डा. खरे से मिले। उन्हें धीरज बंधाते हुए उन्होंने कहा, "इस खबर के बाद कोई भी आपकी तरफ नहीं आयेगा। आपका मित्र और हितचिंतक भी आपकी तरफ भूलकर भी नहीं भटकेगा। यहां आपको बहुत ही अकेलापन महसूस होगा। इसलिए आप जब चाहें तब किसी भी समय मेरे साथ गप्पें मारने आ सकते हैं। मेरा घर आपके लिए हमेशा खुला है।" इसके बाद डा. खरे तीन-चार बार डा. आंबेडकर की तरफ आए थे। अपने विचार प्रकट करते हुए डा. खरे ने लिखा है, "हम आपस में ब्राह्मण-अब्राह्मणों के गुण-दोषों पर और महाराष्ट्र की राजनीति पर बहुत गप्पें मारा करते थे। आंबेडकर की बातों से पता चल जाता था कि उन्हें महाराष्ट्र के उज्वल इतिहास का बहुत अभिमान है। डा. आंबेडकर का अनुमान सच निकला। मैं जब तक दिल्ली में था मुझसे मिलने एक भी महाराष्ट्रीय मित्र नहीं आया।"[1]

फरवरी 1948 में केवल छह महीनों में ही आंबेडकर ने संविधान का कच्चा मसौदा संविधान सभा के अध्यक्ष, डा. राजेन्द्र प्रसाद को पेश किया। वह प्रारूप जनमत जानने के लिए देश की जनता के सामने प्रस्तुत किया गया।

संविधान का मसौदा तैयार करने की जिम्मेदारी डाक्टर साहब ने जब से संभाली थी उनका स्वास्थ्य बहुत वेग से गिरने लगा। अगस्त 1947 में उन्हें लगातार पंद्रह दिनों तक नींद नहीं आई। अनेक दिनों तक उनके दिमाग से संबंधित नस का दर्द कष्ट देता रहा। उन्होंने एलोपैथी तथा होमियोपैथी दोनों प्रकार के इलाज करवाए। साथ ही उनका मधुमेह का कष्ट भी बढ़ गया था। संविधान का कच्चा खाका तैयार हो जाने पर डा. आंबेडकर अपनी तबियत को आराम देने के लिए मुंबई आये। जिस नर्सिंग होम में वे आराम कर रहे थे वहां उनका परिचय कु. डा. शारदा कबीर से हुआ। दिल्ली लौटने पर उनकी तबियत फिर खराब हो गई। दो प्रसिद्ध डाक्टरों ने उनकी जांच कर इलाज किया, मगर उन्हें आराम नहीं हुआ। ऐसे गिरते स्वास्थ्य में उनकी देखरेख करने वाला कोई चाहिए, इस इच्छा से उन्होंने डा. शारदा कबीर से विवाह करना तय किया।

---

1. डा. एन. बी. खरे : माई पोलिटिकल मेमोयर्स एंड बायोग्राफी : प्रकाशक जे. आर. जोशी, बुटीवाड़ा, नागपुर, पृ. 356-357

15 अप्रैल, 1948 को सुबह बाबासाहब के हार्डिंग एवेन्यू निवास में कुछ गिने-चुने मित्रों की उपस्थिति में डा. बाबासाहब आंबेडकर और डा. शारदा कबीर ने रजिस्टर्ड विवाह किया। इस अवसर पर केवल सोलह व्यक्ति उपस्थित थे।

इसके पूर्व 14 अप्रैल को डा. बाबासाहब आंबेडकर का जन्मदिवस दलित समाज की बस्तियों में बहुत उत्साह के साथ मनाया गया था।

49

अप्रैल मास के अंतिम सप्ताह में डा. आंबेडकर ने उत्तर प्रदेश दलित वर्ग परिषद की सभा में भाषण दिया। अपने भाषण में लोगों में फैले हुए इस भ्रम को, कि वे कांग्रेस में मिल गए हैं, दूर करते हुए उन्होंने कहा, "मैं सरकार में शरीक हो गया हूं, कांग्रेस में नहीं। कांग्रेस तो भस्म होता हुआ मकान है जो एक-दो साल में भस्म हो जायेगा। अपनी झोपड़ी छोड़कर दूसरे के महल में मत जाओ।"

इस भाषण से कांग्रेस के तबके में तहलका मच गया। नेहरू और पटेल के साथ जमकर कहासुनी हो गई। उस समय डा. आंबेडकर इस्तीफा देने पर तुल गये। उन्होंने इस बारे में एक वक्तव्य निकालकर उसमें स्पष्ट किया, "मै बिना शर्त मंत्रिमंडल में शामिल हुआ था। दलितों की भलाई सिद्ध करना ही मेरा मुख्य हेतु था।"

भारत सरकार ने भाषा पर आधारित प्रदेश निर्माण पर विचार करने के लिए एक मंडल की स्थापना की। डा. आंबेडकर ने भी महाराष्ट्र में एक निवेदन इस 'धार समिति' को प्रस्तुत किया। "प्रजातंत्र के लिए भाषा पर आधारित प्रदेश रचना आवश्यक है, लेकिन प्रादेशिक भाषा को राष्ट्रीय भाषा नहीं बनने देना चाहिए। नहीं तो प्रादेशिक राष्ट्रवाद पैदा होने की संभावना है।" उन्होंने यह प्रतिपादित करते हुए मुंबई के बारे में भी अपने स्पष्ट विचार रखे और यह साबित कर दिया कि मुंबई महाराष्ट्र का एक अविभाज्य अंग है।

अक्तूबर 1948 में डाक्टर साहब का ग्रंथ 'दि अनटचेबल्स' अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ। अपने इस प्रबंध में डाक्टर साहब ने यह सिद्ध किया है कि अस्पृश्यता का उद्गम लगभग सन् 400 से हुआ है। इस ग्रंथ में यह सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है कि बौद्ध धर्म से अपना श्रेष्ठत्व सिद्ध करने के लिए ब्राह्मणों ने गोमांस खाना वर्जित किया, परंतु जिन लोगों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया और गोमांस खाना नहीं छोड़ा उन्हें अस्पृश्य माना गया।

इन्हीं दिनों डा. आंबेडकर ने एम. आर. एडगुंजी की किताब, 'सोशल इंश्योरेंस इन इंडिया' की प्रस्तावना लिखी थी।

"सामाजिक बीमा पर व्यवस्थित ढंग से लिखा गया यह शोध प्रबंध है।" वे आगे

लिखते हैं, "यह भारत के लिए नवीन विषय है। लेखक के कहे अनुसार यदि उपज बीमा शुरू करने की योजना स्वीकार कर ली गई तो ग्रामीण जनता की दरिद्रता दूर करने और अकाल में उन्हें राहत पहुंचाने में इस योजना से बहुत लाभ होगा।"[1]

संविधान का खाका 4 नवंबर, 1948 को संविधान सभा के विचाराधीन प्रस्तुत किया गया। 315 अनुच्छेदों और आठ परिशिष्टों के इस संविधान की विशेषताओं का उन्होंने अपने शैलीप्रधान भाषण में विश्लेषण किया। अपने भाषण का समापन करते हुए उन्होंने कहा, "यह संविधान प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने योग्य है। यह लचीला है, साथ ही शांति के दिनों में हो, या युद्ध के काल में हो, देश को एकता के सूत्र में बांध रखने के लिए अत्यंत प्रभावशाली और सक्षम है।......यदि संविधान का सही प्रकार से अनुसरण नहीं हो पाया तो यही कहना होगा कि दोष संविधान का नहीं है, लेकिन इंसान में बसे अवगुणों का है।" आंबेडकर के इस भाषण पर सभासदों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर स्तुति-सुमन बरसाए।

अनुच्छेद अनुसार संविधान पर चर्चा शुरू हुई। 20 नवंबर, 1948 को अस्पृश्यता समाप्त करने वाले अनुच्छेद को पारित किया गया। 18 दिसंबर को डा. आंबेडकर ने शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के कार्यकर्ताओं के समक्ष भाषण किया। 15 जनवरी, 1949 को उन्हें मनमाड शहर में थैली अर्पित की गई। उस समय अपने भाषण में उन्होंने कहा, "कोई भी समाज शिक्षा के क्षेत्र में कितना आगे जाता है, इस पर ही उस समाज की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है।"

इसके बाद वे हैदराबाद गये। वहां उन्होंने औरंगाबाद में कालेज शुरू करने के बारे में निजाम रियासत के अधिकारियों से चर्चा की। अपने इस प्रवास में वे अजंता की गुफाएं देखने भी गये थे। कालेज के काम के लिए उन्हें मार्च और मई महीनों में बार बार मुंबई आना पड़ा। जब वे 7 जुलाई को मुंबई पधारे तब उन्होंने मुंबई मजदूर संघ की चल रही हड़ताल को समाप्त करवाने का प्रयत्न किया।

30 जुलाई से 17 अक्तूबर, 1948 के अंतर्गत डा. आंबेडकर ने संविधान सभा में संविधान पर दूसरा पठन पूरा करवा लिया था। अधिकतर आंबेडकर स्वयं हर अनुच्छेद को प्रस्तुत करते और उसका महत्व समझाते। यद्यपि उनकी तबियत ठीक नहीं रहती थी फिर भी संविधान के कामकाज में उन्होंने कभी लापरवाही नहीं की। सितंबर 1948 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक गोलवलकर गुरुजी ने उनसे भेंट की।

1948 में डा. आंबेडकर ने भारत के ब्रिटिश कामनवेल्थ के साथ कैसे संबंध रहें, इस विषय पर एक महत्वपूर्ण विज्ञप्ति तैयार कर उसे निजी तौर पर भारत

---

1. एडगुंजी : प्रस्तावना, डा. आंबेडकर

के अर्थ मंत्री को भिजवाई। अर्थ मंत्री ने डा. आंबेडकर को अपने 19 दिसंबर, 1948 के पत्र में लिखा था, "इतने कठिन सवाल का इतना सरल और चुस्त दुरुस्त विश्लेषण मैं बहुत शौक से पढ़ गया।"

अपनी इस विज्ञप्ति में बाबासाहब लिखते हैं, "भारत की तरह राष्ट्रमंडल को भी भारत के सहयोग की आवश्यकता है। औद्योगिक प्रगति के लिए तथा प्रतिरक्षा के लिए जितनी जल्दी मदद ब्रिटिश कामनवेल्थ से मिल सकती है उतनी जल्दी और कहीं से नहीं मिल सकती। इसलिए राष्ट्रमंडल से संबंध विच्छेद करना भारत के लिए उचित नहीं है।"

उपनिवेश के बारे में समझाते हुए बाबासाहब कहते हैं, "अब राष्ट्रीय दर्जा मिल जाने पर औपनिवेशिक स्थान स्वीकार करना सहीं नहीं है, क्योंकि अब हम राजा से एकनिष्ठ रह नहीं सकते। साथ ही हमारा राष्ट्रध्वज राजा का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। दूसरा महत्वपूर्ण कारण मानसिक है। भले ही हम 'ब्रिटिश' शब्द हटा दें, फिर भी कामनवेल्थ में प्रमुखता तो गोरों की ही होगी। ऐसी स्थिति में हम नागरिकता के बल पर भले ही कामनवेल्थ के सदस्य हो सकते हैं, लेकिन हमारी साधारण नागरिकता सदा खतरे में रहेगी।" इन बातों को विस्तार से समझाते हुए उन्होंने कहा, "राष्ट्रमंडल की नागरिकता एक पोली धरती के समान है। इस नागरिकता में राजनिष्ठा अंतर्निहित है और भारत प्रजातंत्र होने के कारण राजनिष्ठ रह ही नहीं सकता। इसलिए 1921 में आयरलैंड के स्वतंत्रता सेनानी डी. वेलेश ने जिन शर्तों पर सहयोगी राज्य की हैसियत से कामनवेल्थ में प्रवेश किया था हमें भी उसी व्यवस्था की मांग करनी चाहिए। राष्ट्रमंडल में रहना या उससे बाहर रहना पूरी तरह भारत की मर्जी पर होगा।" उन्होंने सुझाया कि कामनवेल्थ की सदस्यता सुलहनामे से नहीं, वरन् संविधान में एक अनुच्छेद जोड़कर की जा सकती है।

राष्ट्रमंडल के साथ हमारे वर्तमान संबंध बाबासाहब द्वारा सुझाई हुई शर्तों पर ही आधारित हैं।

5 नवंबर, 1949 को टी. टी. कृष्णमाचारी ने संविधान सभा में बाबासाहब डा. आंबेडकर के संविधान के निर्माण के लिए दिए गए योगदान पर भाषण देते हुए कहा, "संविधान का निर्माण करने वाली चुनिंदा सात सदस्यों की कमेटी से एक सदस्य ने त्यागपत्र दिया, एक सदस्य का देहांत हो गया, एक अमेरिका चला गया, एक सदस्य रियासतों के कामकाज में व्यस्त रहा, एक-दो सदस्य दिल्ली से दूर रहते थे। उनका स्वास्थ्य ठीक न रहने से वे उपस्थित न रह सके। अंजाम यह हुआ कि संविधान निर्माण

करने का सारा भार अकेले डा. आंबेडकर को ही उठाना पड़ा।" कृष्णमाचारी के इस बयान से यह कल्पना की जा सकती है कि डा. आंबेडकर को कितना कठिन परिश्रम करना पड़ा होगा।

14 नवंबर से संविधान का तीसरा पठन प्रारंभ हुआ। सभासदों ने संविधान पर अपने अपने विचार रखे। मुनिस्वामी पिल्लै ने डा. आंबेडकर की तुलना तिरुवल्लूर जैसे समाज सुधारक के साथ की। अधिकतर सदस्यों ने डा. आंबेडकर के कार्यों की प्रशंसा की।

25 नवंबर, 1949 को बाबासाहब आंबेडकर जब चर्चा का उत्तर देने के लिए खड़े हुए उस समय तालियों और जयघोष से भवन गूंज उठा। इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भाषण में डा. आंबेडकर ने कहा, "यह संविधान अच्छा हो या बुरा, उसकी अच्छाई या बुराई उसका व्यवहार करने वालों पर अवलंबित होगी। इसके पूर्व भारत ने अपनी स्वाधीनता अपने ही लोगों के देशद्रोह के कारण गंवाई थी।" भारत के इतिहास से देशद्रोह के उदाहरण देते हुए उन्होंने उद्विग्नता के साथ आह्वान दिया, "हमें अपनी आजादी कायम रखने के लिए अपने खून की आखिरी बूंद तक पूरी लगन के साथ जुट जाना होगा।"

इसके बाद उन्होंने प्रजातंत्र की रक्षा के लिए क्या करना आवश्यक है, इसका विश्लेषण किया। उनकी राय थी कि अब जनता को केवल संवैधानिक तरीकों से ही अपने सामाजिक और आर्थिक सवालों को सुलझाना चाहिए। सत्याग्रह या असहयोग का रास्ता हमें अराजकता की ओर ले जायेगा।

महत्व की दूसरी बात थी 'विभूति पूजा'। उन्होंने कहा, "राजनैतिक क्षेत्र में यहां नेताओं की भक्ति करने की प्रथा हो गई है। हो सकता है, मोक्ष पाने के लिए भक्ति सहायक हो लेकिन राजनीति में भक्ति से हमारा अधोपतन होगा और इसका अपरिहार्य परिणाम होगा अधिनायकवाद।

"तीसरी अहम बात है कि हमें केवल राजनैतिक प्रजातंत्र से ही संतोष नहीं कर लेना चाहिए। हमें यह कोशिश लगातार करनी चाहिए कि यह प्रजातंत्र हमारे सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में पूरी तरह समा जाये। अर्थात् प्रजातंत्र केवल राजनैतिक ही नहीं, आर्थिक और सामाजिक भी होना चाहिए।"

अपने भाषण के अंत में उन्होंने लालझंडी के समान खतरे की लालटेन दिखाते हुए सचेत किया, "26 जनवरी, 1950 से देश के राजनैतिक जीवन में समता का पदार्पण होगा, लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में विषमता ही बनी रहेगी। यदि यह असंगति कायम रही तो इस विषमता की आंच में झुलसा वर्ग हमारे महान प्रयासों से निर्मित इस राजनैतिक महल को ध्वस्त किए बगैर नहीं रहेगा।"

डा. आंबेडकर के इस धाराप्रवाह भाषण को सारा सभागृह चालीस मिनटों तक पूरी शांति के साथ सुनता रहा। बीच बीच में तालियां बज उठती थीं। दूसरे दिन देश के कोने कोने से इस भाषण का स्वप्रेरित सहज स्वागत हुआ। समाचारपत्रों के कालम डा. आंबेडकर की प्रशंसा से भरे हुए थे।

29 नवंबर को संविधान सभा ने इस संविधान को अपने राष्ट्र के लिए स्वीकार किया। अपने उपसंहारीय भाषण में संविधान सभा के अध्यक्ष डा. राजेन्द्र प्रसाद ने डा. आंबेडकर के कार्यों का गौरव भरा उल्लेख किया। "अपनी गिरती हुई सेहत की परवाह न कर डा. आंबेडकर ने अपनी कार्य निपुणता से केवल अपने चुनाव को सार्थक ही नहीं किया, वरन् अपने पद को गरिमा प्रदान की।"

50

भारतीय संविधान का कार्य पूरा होते ही बाबासाहब हिंदू कोड बिल तैयार करने के काम में लग गये। इससे पहले राव कमेटी ने हिंदू कोड बिल तैयार किया था। लेकिन डा. आंबेडकर ने उसमें समूल परिवर्तन कर अक्तूबर 1948 में संविधान सभा में खुद का तैयार किया हुआ हिंदू कोड बिल पेश किया। इस कारण फिर एक बार सारे भारत में हलचल मच गई।

2 जनवरी, 1950 को आंबेडकर मुंबई लौटे। उस समय हवाई अड्डे पर उनका भव्य स्वागत किया गया। 11 जनवरी को सिद्धार्थ कालेज की पार्लियामेंट के सामने भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि प्रस्तुत किया गया बिल प्रगतिशील कदम है। भारतीय संविधान में सारे देश के लिए एक ही नागरिक कानून तैयार करने के लिए प्रयत्नशील होने का सुझाव है। यह हिंदू कोड बिल, हिंदुओं के धर्मशास्त्र पर आधारित है।

उसी दिन संध्या समय बंबई प्रदेश शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की ओर से उनका सत्कार किया गया और उन्हें भारतीय संविधान की एक प्रति अर्पित की गई। इस सत्कार का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, "इंसान की जिंदगी में ऐसा सुअवसर बिरले ही आता है और मुझे इस सुयोग का अभिमान है।" उन्होंने यह सलाह दी, "दलितों को अपने आप में राष्ट्रीय प्रवृत्ति का विकास करके अन्य समाज की सहानुभूति अर्जित करनी चाहिए।"

29 जनवरी, 1950 को दिल्ली नगर निगम के महाराष्ट्र मंडल तथा अन्य मराठी संस्थाओं की ओर से डा. आंबेडकर का सत्कार किया गया। उस अवसर पर उन्होंने कहा, "हर महाराष्ट्रवासी राष्ट्रीय प्रेम और कर्तव्यनिष्ठा में अन्य किसी भी व्यक्ति से कम नहीं है। ज्ञान और त्याग के गुणों में मराठी व्यक्ति सबसे अग्रणी हैं।"

इन्हीं दिनों डा. आंबेडकर ने ब्लेक क्लार्क नामक एक लेखक को साक्षात्कार दिया। उस मुलाकात में उन्होंने कहा, "जब गरुड़ उड़ता है तो ऊंची उड़ान भरते समय उसे हवा के विरोध का सामना करते हुए ऊपर उड़ना पड़ता है। वह हवा के रुख की मदद नहीं लेता। अस्पृश्यों को भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना करते हुए ऊपर उठना है, उन्नत होना है।"[1]

---

1. रीडर्स डायजेस्ट : मार्च 1950

14 अप्रैल, 1950 को सारे देश में डा. आंबेडकर का जन्मदिन बड़े उत्साह के साथ मनाया गया।

मई 1950 में नयी दिल्ली में बुद्ध जयंती मनाई गई। उस अवसर पर डा. आंबेडकर ने महत्वपूर्ण भाषण दिया। "बुद्ध के अलावा सभी धर्म संस्थापकों ने अपने आपको मोक्षदाता की भूमिका में रखा। इसके विपरीत बुद्ध ने अपने स्वयं में किसी भी दैवी शक्ति की छाप न लगाकर खुद को एक राह दिखाने वाला कहा। बुद्ध का धर्म नीति धर्म है।"

महाबोधि सोसायटी ने बुद्ध जयंती विशेषांक निकाला। इस विशेषांक में "बुद्ध एंड दि फ्यूचर आफ हिज रिलीजन" शीर्षक से डा. आंबेडकर का लेख प्रकाशित हुआ। इस लेख में उन्होंने चार दलीलें पेश कीं : (1) समाज को निग्रह की आवश्यकता है अर्थात् उसे नीति चाहिए। (2) यदि धर्म उपयोगी हो तो वह व्यवहार्य धर्म विवेक पर आधारित होना चाहिए। (3) धर्म के नीति नियम ऐसे हों जो समता, स्वाधीनता और बंधुभाव से सुसंगत हों। (4) धर्म कभी भी दरिद्रता को उदात्त न बनाए। ये दलीलें देकर उन्होंने अपने लेख में यह साबित किया कि इन चार कसौटियों पर धर्म को कसने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि केवल बौद्ध धर्म ही विश्वव्यापी धर्म हो सकता है।

5 मई, 1950 को वे नयी दिल्ली से मुंबई पधारे। 'जनता' समाचार पत्र को दी गई अपनी मुलाकात में उन्होंने यह स्पष्ट शब्दों में सूचित किया कि वे बौद्ध धर्म स्वीकार करने वाले हैं।

कोलंबो में निमंत्रित बौद्ध परिषद् में उपस्थित रहने के लिए डा. आंबेडकर 25 मई, 1950 को हवाई जहाज से कोलंबो पहुंचे। अखबार वालों को दी गई मुलाकात में उन्होंने कहा कि वे धार्मिक समारोहों और धार्मिक विधि का अभ्यास करने वाले हैं। उसके बाद वे कैन्डी में आयोजित परिषद में उपस्थित हुए। कोलंबो के यंगमेन्स बुद्धिस्ट एसोसिएशन के प्रतिनिधियों के समक्ष, "भारत में बौद्ध धर्म का उत्कर्ष और ह्रास" विषय पर डा. आंबेडकर ने भाषण दिया। उन्होंने कहा, "भले ही यह लगता हो कि भारत से बौद्ध धर्म का लोप हो गया है। लेकिन उसकी जड़ें बहुत गहराई तक पहुंच चुकी हैं। बौद्ध धर्म हमें समता की सीख देता है। शंकराचार्य और उनके गुरु बौद्ध थे।" यह कहकर फिर उन्होंने बौद्ध धर्म के ह्रास होने के कारणों की मीमांसा की।

इस सभा के बाद उन्होंने कोलंबो के टाउन हाल में एक सभा का मार्गदर्शन किया। वहां उन्होंने उपस्थित दलित समाज को यह सलाह दी कि वे बौद्ध धर्म को स्वीकार कर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को वहां के बौद्ध समाज में विलीन कर दें। उनके इस भाषण का भारतीय मूल के निवासियों पर इतना प्रभाव पड़ा कि वहां 450 भारतीयों ने बौद्ध

धर्म को स्वीकार किया। फिर डा. आंबेडकर वहां से भारत लौटे। वे त्रिवेंद्रम और मद्रास भी गये। त्रिवेंद्रम में उन्होंने कहा, "संविधान से अधिक महत्वपूर्ण होती है संवैधानिक नीति।" त्रिवेंद्रम के विश्रामगृह में उन्होंने केरल के मुख्यमंत्री, एडवोकेट जनरल और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, वकीलों और उच्च पदासीन व्यक्तियों को हिंदू कोड बिल का महत्व समझाया।[1] उन्होंने मंदिरों में होने वाली अंधाधुंध हानि के लिए भी खेद व्यक्त किया।

अपने मद्रास प्रवास में उन्होंने साउथ इंडियन बुद्धिस्ट एसोसियेशन से पी. लक्ष्मी नरसू की अप्रकाशित पांडुलिपि "बुद्धिज्म इन माडर्न लाइट" हस्तगत की। 700 टंकित पन्नों की यह पांडुलिपि वारिसों की अनुमति न मिलने से अप्रकाशित रही थी।[2] बाबासाहब ने आपोधीदास के तमिल लेख का भी भाषांतर करवाया था।

बाबासाहब के मुंबई लौटने पर 25 जुलाई को रायल एशियाटिक सोसायटी की ओर से आयोजित एक सभा में भाषण देते हुए उन्होंने बौद्ध धर्म पर की गयी आलोचनाओं-आरोपों का खंडन किया। यह सभा प्रो. एन. के. भागवत की अध्यक्षता में हुई थी। इस सभा में उन्होंने कहा, "मुझे बचपन से बौद्ध धर्म के प्रति आस्था है।" वे मद्रास से सीधे दिल्ली लौटे।

29 सितंबर को बंबई में वरली बौद्ध विहार में उन्होंने भाषण दिया। अपने भाषण में उन्होंने बौद्ध धर्म को स्वीकार करने का आह्वान किया और उन्होंने यह घोषणा की कि बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान और प्रचार के लिए वे अब अपनी सारी जिंदगी लगा देने वाले हैं।

---

1. श्री वी. पी. एस. मनियार का बाबासाहब को लिखा पत्र, दि. 25-9-1950 (हाईकोर्ट के कागजात)
2. श्री के. एस. गणेशन का निजी पत्र व्यवहार (डा. आंबेडकर के खत दि. 10-7-1950; 7-10-50; 11-7-51) ; बहत्तर वर्षीय गणेशन ने बाबासाहब से कई बार मिलकर इस ग्रंथ के प्रकाशन का अनुरोध किया था लेकिन बाबासाहब की व्यस्तता के कारण यह प्रकाशित न हो सका।

51

मुंबई से डा. आंबेडकर दिल्ली गये। उन्होंने हिंदू कोड बिल पर अपनी सारी ताकत दांव पर लगा दी। दिसंबर 1950 तक इस बिल के बारे में कोई प्रगति नहीं हुई थी। उन्होंने हिंदू कोड बिल के स्वरूप, उद्देश्य आदि स्पष्ट करने वाली एक 39 पृष्ठवाली पुस्तिका प्रकाशित कर सभागृह में वितरित करवाई।

संसद सदस्यों का यह कहना था कि हिंदू कोड बिल एक विशेष जमात पर लागू होगा। आश्चर्य इस बात का था कि डा. पंजाब राव देशमुख जैसे अब्राह्मण शिक्षाविद् ने भी इस बिल के प्रति विरोध प्रदर्शित किया था।[1] सारे विरोधियों द्वारा उठाये हुए हर सवाल को डा. आंबेडकर ने दलीलें देकर काट दिया। अध्यक्ष ने भी सदस्यों के वक्त गंवाने के इन इरादों का परोक्ष रूप में साथ दिया था। जब यह कहा गया कि इस बिल को नव-निर्वाचित सदस्यों के सामने रखा जाये तो डा. आंबेडकर ने चिढ़कर कहा, "यदि हर समय किसी महत्वपूर्ण विषय पर निर्णय लेने से पूर्व संसद को कानून से नावाकिफ लोगों के सामने विचार विमर्श के लिए जाना पड़े तो फिर इस संसद को समेट लेना ही बेहतर होगा।" सन् 1830 से हिंदू की विधि परिभाषा में बौद्ध, सिख, जैन, लोगों का समावेश है, इसलिए यह बिल उन सब पर लागू होने वाला था। इस बिल पर तीन दिनों तक चर्चा होती रही, मगर उसका कोई नतीजा नहीं निकला।

इन्हीं दिनों 'ईव्ज वीकली' के महिला मासिक पत्र में महिलाओं के बारे में एक लेख लिखते हुए एक लेखक ने इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया था : "बौद्ध धर्म के कारण नारियों का अधोपतन हुआ था।" इसका उत्तर देते हुए डा. आंबेडकर ने 'महाबोधि' नामक एक मासिक पत्र में 1951 में "राइज एंड फाल आफ दि हिंदू वीमेन" शीर्षक से एक लेख लिखा। इस लेख में उन्होंने यह सिद्धांत प्रस्तुत किया है, "बौद्ध काल में भारतीय नारी को जो स्वतंत्रता मिली थी उसे मनु ने नष्ट किया। बुद्ध ने नारियों को परिव्राजक या भिक्षुणी होने के लिए जो सम्मति दी, उससे नारी को विद्या प्राप्ति की स्वाधीनता मिली। साथ ही उसे आत्मोन्नति की भी स्वतंत्रता प्राप्त हुई। परिणाम यह हुआ कि सारे समाज में बुद्ध ने एक क्रांति की ओर नारियों को आजादी और

---

1. आई. नारायण एंड उप्रेती : पृ. 353

इज्जत के साथ सम्मान भी मिला। लेकिन मनु ने बौद्ध धर्म में जाने वाली नारियों के प्रवाह को रोकने के लिए उन पर तरह तरह के बंधन लगा दिये और उन्हें गुलामी की बेड़ियों से जकड़ दिया था।"

अप्रैल 1951 में डा. आंबेडकर ने दिल्ली में आंबेडकर भवन की आधारशिला रखी। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने सरकार पर यह आरोप लगाया कि उसने अस्पृश्यों के लिए कुछ नहीं किया है।

मई 1951 में दिल्ली में बुद्ध जयंती समारोह में भाषण देते हुए बाबासाहब ने हिंदू धर्म की कड़ी आलोचना की। फ्रांस के राजदूत इस समारोह के अध्यक्ष थे और अनेक देशों के प्रतिनिधि इस सभा में उपस्थित थे।

9 सितंबर, 1951 को डा. राजेन्द्र प्रसाद के हाथों औरंगाबाद के मिलिन्द महाविद्यालय का आधारशिला समारोह संपन्न हुआ। बाबासाहब स्वयं डा. राजेन्द्र प्रसाद के साथ अंत तक घूमते रहे।

10 अगस्त, 1951 को डा. आंबेडकर ने पत्र द्वारा पंडित नेहरू को सूचित किया कि उनकी तबियत दिनों दिन तेजी से गिरती जा रही है। इसलिए 16 अगस्त से 1 सितंबर तक हिंदू कोड बिल चर्चा के लिए लिया जाये और उसे मंजूर किया जाये। नेहरू ने उन्हें सब्र करने की सलाह दी।

17 सितंबर, 1951 को जब बिल दुबारा चर्चा के लिए लाया गया तब डा. श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने व्यंग्य से कहा, "आंबेडकर को वर्तमान युग का मनु और याज्ञवल्क्य कहलाने की अभिलाषा है।" पंजाब राव देशमुख ने यह राय दी कि जनमत तैयार होने पर ही कानून बनाना अधिक उपयुक्त रहेगा। कु. जयश्री नामक संसद सदस्या ने तथा डा. कुंजरू ने बिल का जोरदार समर्थन किया। जानबूझकर बिला वजह ही चर्चा को लंबा बढ़ाने की कोशिश की जा रही थी। प्रधानमंत्री के अनुरोध का भी सदस्यों पर कोई असर नहीं हुआ।

पंडित मदनमोहन मालवीय जैसे हिंदू नेता बिल के विरोध में संसद के भीतर और बाहर जनमत जागृत कर रहे थे। लेकिन कु. पद्मजा नायडू बिल का समर्थन करने और जुटाने के लिए अपनी सारी ताकत बाजी पर लगा रही थीं।

बिल पर चर्चा लंबी खिंचती जा रही थी। बात बात में देर लगाई जा रही थी, इसलिए किसी भी तरह उसे शीघ्र निपटाने की आशा धुंधला रही थी। डा. आंबेडकर ने बहुत क्षुब्ध होकर कहा, "संसद के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक एक अनुच्छेद पर सात सात दिन चर्चा चलती रहे।"

तलाक की चौथी धारा पर चर्चा होते समय सभी संसद सदस्य आंबेडकर पर बरस पड़े। किसी ने आंबेडकर को "कलियुग का मनु" कहकर संबोधित किया। वैयक्तिक

टीका के प्रति उदासीन डा. आंबेडकर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बोले, "आपको मुझे जितनी गालियां देनी हों दे लीजिए लेकिन अधिक समय बरबाद मत कीजिए। मुझे इस गाली-गलौज से ज्यादा महत्व वक्त की कीमत का लगता है।"

परंतु उसके बाद इस हिंदू कोड बिल की अन्य धाराएं बहस के लिए ली ही नहीं गयीं, तब डा. आंबेडकर को ऐसा लगा कि पंडित नेहरू ने उनके साथ विश्वासघात किया है।

27 सितंबर, 1951 को डा. आंबेडकर ने मंत्री पद से मुक्त होने के लिए त्यागपत्र नेहरू जी को भिजवा दिया। उन्हें त्यागपत्र के बारे में वक्तव्य देने के लिए 11 अक्तूबर, 1951 को अध्यक्ष की ओर से मनाही की गयी। वे तुरंत सभा गृह त्यागकर बाहर निकल आये और अपने इस्तीफे की कापी उन्होंने समाचार प्रतिनिधियों को भिजवाई। डा. आंबेडकर ने अपने निवेदन में कहा है, "जब समाज अपने भूतकाल को छोड़ रहा हो और भविष्य का अंदाजा लगाया जा रहा हो, तब बस विवेक ही एक कसौटी है, जिस पर किसी भी बात को परखना चाहिए। इसलिए जिस हिंदू समाज की, आपसी वर्गों और स्त्री-पुरुषों में, विषमता ही आत्मा है उसे झकझोरे बगैर यदि हम केवल आर्थिक पहलू पर ही एक के बाद एक कानून बनाते रहे तो यह संविधान का मखौल उड़ाने के समान है, या रेत पर किला खड़ा करने का प्रयास है।"[1]

22 दिसंबर को पार्लियामेंट अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गयी, इस वजह से डा. आंबेडकर मुंबई आ गये। उन्होंने वरली के बौद्ध विहार में बौद्ध धर्म पर भाषण दिया।

---

1. आ. प. नारायण : पृ. 248-49

52

जुलाई 1951 में डा. आंबेडकर ने इंडियन बुद्धिस्ट सोसायटी की स्थापना की। दिल्ली में अक्तूबर 1951 में दलित फेडरेशन की कार्यकारिणी समिति की बैठक बाबासाहब की अध्क्षता में हुई। इस सभा में बाबासाहब द्वारा तैयार किया हुआ फेडरेशन का चुनाव घोषणा पत्र मंजूर किया गया। मानवेन्द्रनाथ राय ने कश्मीर पर प्रकट की गयी डा. आंबेडकर की राय से अपनी सहमति जाहिर की।

थोड़े ही दिनों बाद लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के सामने सबको सचेत करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "यदि देश कम्युनिस्ट हो जाता है तो फिर इस देश का भवितव्य खतरे में पड़ जायेगा। यदि हम सारे कश्मीर को नहीं बचा सकते तो कम से कम अपने बंधुओं को तो बचा लें।" हिंदुओं के लिए उनका यह संदेश था।

इन्हीं दिनों उन्होंने समाजवादी दल के साथ चुनाव सहकार्य करने के हेतु से कदम उठाया। जब वे 18 नवंबर को मुंबई पधारे तो समाजवादी पार्टी और दलित फेडरेशन की ओर से उनका भव्य स्वागत किया गया। बोरीबंदर स्टेशन से उनका शानदार जुलूस निकाला गया जो सिद्धार्थ कालेज के परिसर में, उनके निवास स्थान तक, उन्हें पहुंचाने गया। शाम को चौपाटी पर विशाल सभा हुई। उस सभा में चुनाव अभियान का श्रीगणेश करते हुए उन्होंने कहा, "सुभाष बोस के कारण ही देश स्वतंत्र हुआ है।" दूसरे दिन फेडरेशन और समाजवादी पार्टी द्वारा जहांगीर हाल में आयोजित सभा में उन्होंने यह दोषारोपण किया, "कांग्रेस के कारण ही भ्रष्टाचार का भूत सिर पर सवार हो गया है।" नरे पार्क में आयोजित सभा में भी उन्होंने अस्पृश्यों के सवाल पर सरकार को कड़ी फटकार लगाई। 25 नवंबर को शिवाजी पार्क में दो लाख दर्शकों की विशाल सभा में उन्होंने एक शक्तिशाली विरोधी दल की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने यह आह्वान भी किया कि नेहरू समाजवादी दल में शरीक हो जायें।

जनवरी 1952 में आम चुनाव हुये। चूंकि आंबेडकर की भूमिका कम्युनिस्ट विरोधी थी, इसलिए का. डांगे ने यह प्रचार शुरू किया कि आरक्षित सीट के लिए नागरिक किसी को भी अपना मत न दें। लगभग पचास हजार मत अवैध घोषित किये गये। इस आम चुनाव में डा. आंबेडकर चौदह हजार मतों से पराजित हुये। जब चुनावों के

परिणाम घोषित हुए तब डा. आंबेडकर मुंबई में थे। उन्हें चुनाव के इस नतीजे से आश्चर्य हुआ। वैसे ही कलकत्ते में समाजवादी पार्टी के नेता जयप्रकाश नारायण ने भी आश्चर्य व्यक्त किया।

डा. आंबेडकर स्वभाव से ही एक संसदविद् थे। वे राजनीति से अलिप्त रहना नहीं चाहते थे। 1952 में मुंबई विधान मंडल से राज्यसभा के सदस्यों का चुनाव होना था। उसके लिए उम्मीदवारों को चुना जाना था। डाक्टर ने उसके लिए अपना नामांकन पत्र भर दिया और सतरह उम्मीदवारों में वे विजयी हुये।

मई 1952 में राज्य सभा के अधिवेशन में उपस्थित रहने के लिए बाबासाहब दिल्ली गये। बजट पर चल रही चर्चा में भाग लेते हुए उन्होंने सरकार पर दलीलों की बौछार कर दी। उन्होंने यह मांग पेश की, "देश के विकास के लिए आवश्यक धन सेना पर खर्च किया जा रहा है। उस में कटौती करनी चाहिए।"

कोलंबिया विश्वविद्यालय ने अपने भूतपूर्व विद्यार्थियों का सम्मान करने का निश्चय किया। 5 जून, 1950 को विश्वविद्यालय का दीक्षांत समारोह संपन्न होने वाला था। उस समारोह में डा. आंबेडकर को 'डाक्टर आफ लॉज' की पदवी प्रदान करने का निश्चय किया गया था।

31 मई को डा. साहब दिल्ली से मुंबई पधारे। उन्हें यहां क्रिकेट क्लब आफ इंडिया के प्रांगण में शानदार दावत दी गयी। वहां वक्ताओं ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि भारत के किसी भी विश्वविद्यालय को डा. आंबेडकर का गौरव करने का विचार क्यों नहीं सूझा। इस अवसर पर बोलते हुए डा. साहब ने कहा, "मन में आप लोग यह कल्पना भी न कीजिए कि मैं वहां अपने देश के खिलाफ एक बात भी कहूंगा। मैं हमेशा देश की भलाई के लिए सदा लगन और तत्परता से काम करता रहा हूं। मैंने एक पल भी देशहित के अलावा किसी बात पर विचार नहीं किया है। गोलमेज परिषद में भी देशप्रेम के मामले में मैं महात्मा गांधी से भी दो सौ मील आगे चलता था।"

बाबासाहब बंबई से 1 जून, 1952 को हवाई जहाज द्वारा न्यूयार्क के लिए रवाना हुये। पत्नी को साथ ले जाने के लिए आवश्यक रकम न होने से वे साथ नहीं ले जा सके। हवाई अड्डे पर उन्हें विदा करने के लिए असंख्य जनसमूह उपस्थित था। कोलंबिया विश्वविद्यालय ने नौ प्रतिष्ठित विद्वानों को 'डाक्टर आफ लॉज' की उपाधि से सुशोभित किया था। बाबासाहब को यह सम्मान देते समय उनका प्रशंसात्मक उल्लेख करते हुए उन्हें संविधान रचयिता, मंत्रिमंडल तथा राज्य सभा का माननीय सदस्य, भारत का एक अत्यंत प्रमुख नागरिक, महान समाजसुधारक और मानवीय अधिकारों का जुझारू प्रवर्तक कहा गया।

14 जून, 1952 को डाक्टर साहब वापस भारत लौटे। पत्रकारों को उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, "अमेरिकन लोगों के मन में पाकिस्तान के लिए हमदर्दी नजर आयी। पूछताछ करने पर पता चला कि विदेश के लिए अपने प्रतिनिधि भिजवाते समय पाकिस्तान बहुत ध्यान देता है। भारत के वैदेशिक प्रवक्ता और राजदूत अधिक अनुभवी नहीं होते। उन्हें प्रशिक्षित करने का कार्य भी घटिया दर्जे का होता है।"

मुंबई के एलफिंस्टन हाई स्कूल के स्नेह सम्मेलन में उन्होंने 16 दिसंबर को विद्यार्थियों को हितोपदेश दिया। इसी मास वे पुणे भी गये। वहां उन्होंने 22 दिसंबर को जिला ग्रंथागार में श्री एल. आर. गोखले के फोटो का अनावरण किया। इसी अवसर पर दिये गये भाषण में उन्होंने प्रजातंत्र को सफलतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक बातों को समझाया। उन्होंने कहा कि प्रजातंत्र का स्वरूप और उद्देश्य सतत बदलता रहता है। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि प्रजातंत्र की प्रमुख व्याख्या भारतीय प्रजातंत्र में किस तरह तोड़ मरोड़ कर रख दी जाती है। उन्होंने कहा, "प्रजातंत्र ऐसी शासन व्यवस्था और प्रणाली है जिससे समाज के सामाजिक और आर्थिक जीवन में बिना रक्तपात के क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सके।" उनके इस विचार प्रवर्तक भाषण पर कई दिनों तक अखबारों में चर्चा होती रही।

24 दिसंबर, 1952 को डा. आंबेडकर ने कोल्हापुर स्थित राजाराम महाविद्यालय के विद्यार्थी स्नेह सम्मेलन में शिक्षाप्रद भाषण देते हुए कहा, "कोई भी प्रमुख महिला आज नारियों के उद्धार के लिए नेतृत्व लेकर जी जान से काम में भिड़ जाने को तैयार नहीं है। हिंदू कोड बिल अब फटे दूध के समान दूषित हो गया है।"

भारत के किसी भी विश्वविद्यालय ने बाबासाहब के कार्यों की सराहना नहीं की। लेकिन हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय ने 12 जनवरी, 1952 को उन्हें मानद् 'डाक्टर आफ लिटरेचर' की उपाधि प्रदान कर इस कार्य में अग्रणी होने का मान पाया।

दिल्ली में श्री राजभोज ने फरवरी 1953 में श्री एम. आर. मूर्ति के सम्मानार्थ दावत दी। इस अवसर पर बाबासाहब भी उपस्थित थे। उन्होंने कहा, "आगामी पीढ़ी को बुद्ध और कार्ल मार्क्स—इनमें से किसी एक का चुनाव करना है।"

24 फरवरी को डी. जी. जाधव को उन्होंने एक आत्मचिंतन करने योग्य और बोधप्रद पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था, "अधिकतर लोग निजी सुख प्राप्त करने के लिए भागते फिरते हैं, लेकिन अच्छे व्यवहार और शुद्ध विचारों से मिलने वाला आध्यात्मिक आनंद कुछ निराला और अनूठा होता है। इसीलिए मैं बहुत सुखी हूं। माना कि आरोग्य महत्वपूर्ण बात है, फिर भी संतोष उससे बहुत महान है।"

मई 1953 में बाबासाहब ने मुंबई में लगभग 50,000 लोगों के सामने भगवान

बुद्ध के परिनिर्वाण दिवस पर एक भाषण दिया। इसके बाद वे अपना सारा जीवन बौद्ध धर्म के कार्य में लगा देंगे, यह निश्चय उन्होंने दुहराया।

हैदराबाद रियासत के किसान मजदूर फेडरेशन की ओर से औरंगाबाद में आयोजित अधिवेशन में उन्होंने भाषण दिया। उन्होंने कहा, "राजनीति ही सर्वस्व नहीं है। दलितों के प्रश्न पर विचार और अभ्यास राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी दृष्टिकोणों से किया जाना चाहिए।"

औरंगाबाद में पत्रकारों को मुलाकात देते हुए उन्होंने साफ साफ कहा, "जब आंध्र एक भाषावार राज्य बन चुका है तब अन्य भाषावार राज्य भी निर्मित होंगे ही। महाराष्ट्र को दो राज्यों में रखा जाये। वैसे ही कश्मीरी लोगों का जनमत लेकर उसका भी स्थायी निपटारा हो जाना चहिए।" अपने इस प्रवास में जो भी व्यक्ति उनसे मिलने आया। उसे और संस्था के सभी पदाधिकारियों को उन्होंने बामसेन वन विभाग में वृक्षारोपण करने में लगाया और इस तरह हजारों पेड़ लगवा दिये।

2 सितंबर, 1953 को राज्यसभा में 'आंध्र राज्य' बनाने का विधेयक प्रस्तुत किया गया। इस बिल पर डा. आंबेडकर ने उस समय सरकार की जोरदार आलोचना की। उन्होंने कहा, "अपने सिद्धांत की सिद्धि के लिए पोट्टी श्रीरामुलू को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। यदि किसी दूसरे देश में ऐसा हुआ होता तो वहां की जनता ने सरकार की धज्जियां उड़ा दी होतीं।" उन्होंने तत्कालीन गृहमंत्री पर दोषारोपण करते हुए समझाया कि सरकार ने अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए बिल में कोई व्यवस्था नहीं की है।

दूसरे सप्ताह उन्होंने पेप्सू में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाने के लिए पेश किये गये बिल पर जोरदार टीका की। साथ ही उन्होंने अनिर्वाचित श्री राजगोपालाचारी और मोरारजी देसाई को प्रदेशों के मुख्य मंत्री बनाने के लिए भी सरकार को दोष दिया। उन्होंने 'स्पेशल मैरिज बिल' पर भी भाषण दिया। 18 सितंबर, 1953 को 'स्टेट ड्यूटी बिल' पर बोलते हुए उन्होंने कहा, "दूसरों या परायों का अंधानुकरण कर कुछ नहीं सधेगा। जो कुछ यूरोप के लिए उचित होगा वह भारत के लिए भी ठीक रहेगा, यह संभव नहीं है।" उन्होंने यह चेतावनी देते हुए खतरे की सूचना दी। पूंजीपति और पूंजी, इनका अंतर समझाते हुए उन्होंने कहा, "देश की पूंजी बढ़नी ही चाहिए, मगर पूंजीपति नहीं।"

मराठवाड़ा की दलित फेडरेशन की ओर से भूमिहीनों को सरकारी बंजर भूमि दिलवाने के लिए सत्याग्रह किया गया था। इसमें लगभग 1700 सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया गया था। नवंबर 1953 में डा. आंबेडकर ने सत्याग्रह बंद करने की घोषणा की।

प्रकृति को चाहने वाले आंबेडकर को जब यह पता चला कि उनके अनुयायियों ने सत्याग्रह करते समय पेड़ काट डाले हैं तो उन्हें बहुत दुख हुआ था।

डा. आंबेडकर की वज्रप्रहारी आलोचना के कारण मार्च 1954 में 'दि अनटचेबिलिटी (आफेन्स) एक्ट 1953' विधेयक पारित किया गया।

दिनोंदिन बाबासाहब की तबियत तेजी से गिरती जा रही थी। फिर भी उन्होंने 8 जनवरी, 1954 को आचार्य अत्रे के चलचित्र 'महात्मा फुले' के मुहूर्त पर उपस्थित रहकर अपनी शुभकामनाएं प्रदान की थीं। बाबासाहब ने जिन्हें अपना गुरु घोषित किया था उन महात्मा फुले का यह जीवन चरित्र भी बाबासाहब स्वयं लिखना चाहते थे, लेकिन यह संभव न हो सका। अत्रे की इस फिल्म ने महात्मा फुले का नाम देहात देहात में बूढ़े तथा बच्चों तक पहुंचाया।

53

मार्च महीने में डा. आंबेडकर पार्लियामेंट के अधिवेशन में उपस्थित रहे। भंडारा की रिक्त लोकसभा सीट के लिए उपचुनाव घोषित हुए। सामान्य सीट के लिए अशोक मेहता और आरक्षित सीट के लिए डा. आंबेडकर खड़े हुए। डा. आंबेडकर ने अशोक मेहता को अपना समर्थन दिया था।

कम्युनिस्ट पार्टी की नागपुर शाखा ने डा. आंबेडकर की उम्मीदवारी का समर्थन किया। प्रजा समाजवादी पार्टी ने डा. आंबेडकर की पार्टी से गठबंधन किया था। 20 अप्रैल, 1954 को डा. आंबेडकर अपनी पत्नी सौ. शारदा कबीर आंबेडकर के साथ नागपुर पहुंचे।

माउंट होटल में आमंत्रित व्यक्तियों को संबोधित करते हुए डा. आंबेडकर ने कहा, "सत्तारूढ़ दल पर अंकुश रखने के लिए प्रबल विरोधी पक्ष होना आवश्यक है। दूसरे महायुद्ध से पहले जर्मनी देश चारों तरफ से घेर लिया गया था। हमारे देश की भी वही हालत है। जल्द ही सारे मुस्लिम देशों का संयुक्त इस्लामी राष्ट्र बनने वाला है। आज हमारा एक भी मित्र नहीं है। इसलिए हमारे देश के लिए शस्त्रीकरण के सिवा और कोई रास्ता नहीं है। हमें तुरंत तय कर लेना चाहिए कि हमारे लिए प्रजातंत्र हितकर है या कम्युनिज्म। फिर हमें उस गुट के राष्ट्रों के साथ मित्रता कर लेनी चाहिए।" दूसरे दिन डा. आंबेडकर चुनाव प्रचार के लिए भंडारा गए। वहां उन्होंने अपने भाषण में कहा कि आजादी का गरीब तबके को कोई फायदा नहीं हुआ है और सरकार ने उनकी किसी भी समस्या को नहीं सुलझाया है। उन्होंने विनोबा भावे के सर्वोदयवाद की भी आलोचना की।

29 अप्रैल को डा. आंबेडकर ने वड़सा की चुनाव सभा में भाषण दिया।

2 मई, 1954 को आंबेडकर नागपुर में विदर्भ साहित्य संघ के कार्यालय गये और वहां संघ के कार्यकर्ताओं से चर्चा की।

चुनाव के परिणाम निकलने से पहले बाबासाहब बुद्ध जयंती समारोह के लिए रंगून गये थे। उन्हें वहां पता चला कि वे चुनाव हार गये हैं। उन्हें कुल मिलाकर 1,32,483 वोट मिले थे, परंतु वे सिर्फ 8361 वोटों से हारे थे।

लगभग दो महीनों तक रंगून रहकर उन्होंने वहां के वैशाखी पूर्णिमा के समारोह का सूक्ष्म अध्ययन किया। उन्होंने जून महीने में घोषणा की थी कि बंगलौर में बौद्ध धर्म के प्रचारक तैयार करने के लिए प्रशिक्षण केंद्र प्रारंभ किया जा रहा है।

अपनी गिरती हुई तबियत की परवाह न करते हुए बाबासाहब हमेशा काम में मग्न रहते थे। उनका लेखन तथा वाचन अखंड चलता रहता था। उन्होंने राज्य सभा में विदेश नीति पर 26 अगस्त, 1954 को कसकर आक्षेप किया। उन्होंने रूस की अधिकार भरी नीति की भी कड़ी आलोचना की। "साम्यवाद फैलने वाले दावानल के समान है। वह सब कुछ भस्म कर देता है। प्रजातंत्र भी भस्म हो जायेगा।" यह कहकर उन्होंने यूरोप के देशों और अमेरिका की विदेश नीति का मार्मिक विवेचन किया। अंत में उन्होंने सभी सदस्यों को चीन के बारे में संकेत देते हुए कहा, "भारत पर आक्रमण तो होगा ही और यह आक्रमण वही लोग करेंगे जिन्हें हमला करने की आदत पड़ गई है।" माओत्से तुंग ने बौद्धों के साथ जो व्यवहार किया उस पर आक्षेप करते हुए उन्होंने कहा, "राजनीति में पंचशील का कोई उपयोग नहीं है, कम से कम कम्युनिस्ट देशों में तो है ही नहीं। सारा एशिया आज युद्ध का मैदान बना हुआ है। इसलिए भारत को तुरंत प्रजातंत्रवादी देशों से हाथ मिला लेना बहुत जरूरी है।" उस समय गोवा प्रदेश पुर्तगालियों के कब्जे में था। उन्होंने सुझाया था कि गोवा पर पुलिस कार्यवाही कर उस पर कब्जा कर लेना चाहिए। चीन के बारे में डा. आंबेडकर ने जो भविष्यवाणी की थी वह अक्षरशः सही निकली। चीन ने 1962 में भारत पर हमला किया और हजारों मीलों का इलाका हड़प लिया।

अनुसूचित जाति और जमातों के बारे में जब संसद के सामने रिपोर्ट रखी गई और उस पर चर्चा शुरू हुई तो डा. आंबेडकर ने अस्पृश्यों के सुधार के लिए कुछ सुझाव पेश किये। यद्यपि वे जब चाहे तब संविधान में संशोधन करवाने के विरोधी थे, फिर भी उन्होंने यह सुझाया कि संविधान में उचित संशोधन कर सारी बंजर भूमि को भारत सरकार अपने अधिकार में ले ले और उसे अस्पृश्यों में बांट दे। वैसे ही उन्होंने राय दी कि नमक पर हलका-सा कर लगाकर, साथ ही गांधी ट्रस्ट फंड निर्माण कर उसके जरिए यह सारा महसूल सरकार अस्पृश्यों की उन्नति के लिए और उनके रहने के लिए बस्तियां बनाने में लगाये। उन्होंने सदस्यों को याद दिलाया, "अस्पृश्य गांधी जी के लाडले थे, यह तो आप सब जानते ही हैं।"

अपने भाषण के प्रवाह में उन्होंने श्रोताओं का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि अंग्रेजी शासन द्वारा अस्पृश्य विद्यार्थियों को ऊंची पढ़ाई के लिए इंग्लैंड भिजवाने की योजना, राजगोपालाचारी के शिक्षामंत्री रहते समय बंद कर दी गई थी।

इन्हीं दिनों सरकार ने संविधान संशोधन का तीसरा बिल पेश किया। डा. आंबेडकर के तलवे से सिर तक आग लग गई। लगभग चार ही साल में संविधान में यह तीसरा संशोधन देखकर उन्होंने कहा, "संसार के इतिहास में किसी भी संविधान में इतने जल्दी संशोधन नहीं सुझाए गये हैं। केवल बहुमत के जोर पर इस तरह की जल्दी करना संविधान का मजाक उड़ाने जैसा है। हमें संविधान और कानून में फर्क रखना चाहिए।"

3 अक्तूबर, 1954 को डा. साहब ने "मेरा निजी तत्वज्ञान" विषय पर वार्ता प्रसारित की। वे बोले, स्वतंत्रता, समता और बंधुभाव–यह तीनों तत्व अपने जीवन के आधार हैं। इनके बीज फ्रेंच राज्य क्रांति या राजनीति में न होकर, बौद्ध धर्म में हैं। संविधान में भले ही राजनीति के इन तत्वों का समावेश हो, फिर भी उन्हें सामाजिक जीवन में कार्यान्वित करना आवश्यक है।

54

रंगून में 'वर्ल्ड फेलोशिप आफ बुद्धिस्ट' नामक संस्था के दिसंबर 1954 वाले तीसरे अधिवेशन में डा. आंबेडकर उपस्थित रहे। परिषद को संबोधित करते हुए उन्होंने अपने भाषण में आश्चर्य प्रकट किया, "जिस देश में भगवान बुद्ध का जन्म हुआ उसी देश में उनके धर्म की अवनति हो जाये।"

अपने भाषण में उन्होंने भारतीय संविधान तैयार करते समय के अनुभवों की जानकारी देते हुए कहा, "बिना किसी के विरोध के मैं पाली भाषा के अध्ययन को संविधान में जुड़वा सका, साथ ही राष्ट्रपति भवन के सामने अशोक की 'सिंहमुद्रा' और राष्ट्रध्वज पर अशोक चक्र को रखवा सका। मैंने मुंबई और औरंगाबाद के कालेजों में यह व्यवस्था की है कि बौद्ध धर्म के अध्ययन को प्रोत्साहन मिल सके।" बाबासाहब ने अंग्रेजी, मराठी, हिंदी और गुजराती–इन चार भाषाओं में पाली भाषा का शब्दकोश तैयार करने का कार्य स्वयं प्रारंभ किया था।[1]

परिषद समाप्त होने पर प्रतिनिधियों को बर्मा की भूतपूर्व राजधानी मांडले दिखाने के लिए ले जाया गया। डा. साहब वहां डा. आर. एल. सोनी के घर करीब एक सप्ताह रहे। यहीं उन्होंने बुद्ध के 2500वें जन्मोत्सव के समय बौद्ध धर्म अंगीकार करने का निश्चय किया था।[2]

रंगून से लौटने के लगभग पांच महीनों बाद डा. आंबेडकर ने देहू रोड के बुद्ध विहार में उस बुद्ध मूर्ति की संस्थापना की जो उन्हें रंगून में भेंट की गई थी। इस अवसर पर 20,000 लोगों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "2500 साल बाद बुद्ध के धर्म का भारत में पुनरुज्जीवन हो रहा है। पंढरपुर के विठोबा यह बुद्ध ही हैं, इस बारे में जो लेख लिख रहा हूं उसे मैं भारतीय इतिहास संशोधक मंडल के सामने पढ़ने वाला हूं। पांडुरंग पुंडरीक शब्द का ही रूप है। पुंडरीक का एक अर्थ कमल होता

---

1. महाराष्ट्र शासन के पास बाबासाहब आंबेडकर के जो भी कागज और चिट्ठियां एकत्रित हुई हैं उनमें लगभग दो हजार शब्दों के अर्थ लिखे हुए कार्ड मिले हैं। साथ ही पाली भाषा के व्याकरण के भी 64 पृष्ठ प्राप्त हुए हैं। यह व्याकरण 1' X 1' फुट कागज पर छपा हुआ है।
2. संघरक्षित : पृ. 76

है। कमल बुद्ध का नाम है।" उन्होंने आगे कहा, "मेरे जीवन का सच्चा कार्य अब शुरू हो रहा है, समाप्त नहीं।" डा. आंबेडकर का विठ्ठल के बारे में लेख पूर्ण नहीं हो पाया। उन्होंने यह भी घोषणा की कि वे जनसाधारण के लिए बुद्ध चरित्र लिख रहे हैं और शीघ्र ही वे बौद्ध धर्म को स्वीकार करने वाले हैं।

वली सिन्हा को एक पत्र लिखकर उन्होंने सूचित किया कि जनसाधारण के धर्मांतरण के लिए उन्होंने एक 'धम्म दीक्षा विधि' तैयार की है।

जून 1954 के दरमियान बाबासाहब बंगलौर में मैसूर नरेश से मिले थे। उस समय महाराज ने उन्हें एक एकड़ जमीन दान में दी। इस भूमि पर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए प्रशिक्षण केंद्र स्थापित करने का बाबासाहब ने तय किया।

इन्हीं दिनों बाबासाहब की संविधान संशोधन के सवाल पर पंडित पंत के साथ नोंक-झोंक हो गयी। अपनी गिरती हुई सेहत की परवाह न कर डा. साहब पार्लियामेंट में चल रहे रोजमर्रा के कामकाज में भाग लेते रहते थे।

मई 1955 में बाबासाहब की सेहत बहुत गिर गयी। बिना सहारे के वे चल फिर नहीं सकते थे। उन्हें सांस लेने में भी तकलीफ हो रही थी, तब आक्सीजन सिलेंडर मंगवाना पड़ा था। उसका कभी कभी उपयोग करना जरूरी हो जाता था।

19 जून, 1955 को डा. आंबेडकर भवन में संपन्न शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के वेलफेयर एसोसिएशन द्वारा आयोजित सम्मेलन में उपस्थित रहकर उन्होंने प्रतिनिधियों का मार्गदर्शन किया और कार्यकारिणी समिति की नियुक्ति की।[1]

अपनी अस्वस्थता के कारण अब उन्हें राज्य सभा के अधिवेशन में उपस्थित रहना असंभव हो गया, तब उन्होंने अध्यक्ष को निवेदन भेजा और तदनुसार 29 मार्च, 1955 से उन्हें नौवें अधिवेशन तक अवकाश दिया गया।

27 अगस्त, 1955 को दलित फेडरेशन की कार्यकारिणी ने केंद्रीय और राज्य विधान सभाओं से अनुसूचित जाति के आरक्षित स्थानों को रद्द करने का प्रस्ताव पास किया। इसी बैठक में फेडरेशन के संचालक श्री राजभोज को संचालक पद से हटा दिया गया और उनकी जगह बैरिस्टर राजाभाऊ खोब्रागडे को चुन लिया गया।

1955 के 19 अक्तूबर को महाबोधि सोसायटी को वली सिन्हा का लिखा हुआ पत्र मिला। उन्होंने महाबोधि सोसायटी द्वारा प्रकाशित डा. आंबेडकर के लेख "बुद्ध और उनके धर्म का भवितव्य" का फ्रेंच लेखक द्वारा पुर्नमुद्रण करने की अनुमति चाही थी। 7 नवंबर को डाक्टर साहब ने वली सिन्हा को उत्तर भेजा। उसमें उन्होंने लिखा, "हम औरंगाबाद में अपनी जमीन पर स्थित ऊंची टेकड़ी पर बुद्ध का एक भव्य मंदिर

---

1. शास्त्री, सोहनलाल : पृ. 210

निर्माण कर रहे हैं। वेरूल की दसवीं गुफा के शिल्प के अनुसार तैयार होने वाले इस मंदिर के लिए लगभग तीन लाख रुपचे खर्च होंगे। आप औरंगाबाद में बन रहे इस मंदिर के निर्माण के लिए 25,000 रुपये दे रहे हैं, यह ज्ञात हुआ। इस बारे में चर्चा करने के लिए आप स्वयं पधारें।"[1]

सन् 1956 के प्रारंभ में डाक्टर का 'दि बुद्धा एंड हिज धम्म'–यह अंग्रेजी में लिखा ग्रंथ पूर्ण हुआ। इस ग्रंथ को पहले 'दि बुद्धा एंड हिज गास्पेल' नाम से कागज के एक ओर छपवा कर पचासेक प्रतियां तैयार की गई थीं और उन्हें खास व्यक्तियों को भिजवाया गया था। यह ग्रंथ बाबासाहब 1951 से लिख रहे थे। यह ग्रंथ सही मायने में उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ।

पिछले पांच-छह वर्षों से बाबासाहब 'बुद्ध और कार्ल मार्क्स'[2], 'रेवोल्यूशन एंड काउंटर रेवोल्यूशन'[3] और 'रिडाल्स आफ हिंदुइज्म'–इन तीन ग्रंथों का लेखन कर रहे थे। 'बुद्ध आणि कार्ल मार्क्स' ग्रंथ आज तक किसी को नहीं मिल पाया है। इन तीन विषयों पर जो भी लेखन कार्य हाइकोर्ट के कागजातों में मिला है उसे महाराष्ट्र शासन द्वारा प्रकाशित "डा. आंबेडकरः रायटिंग्स एंड स्पीचेज" ग्रंथमाला के खंड तीन, चार और पांच में समाविष्ट किया गया है। इन सारी रचनाओं से पता चलता है कि बाबासाहब का हिंदू धर्मशास्त्र, तत्वज्ञान और इतिहास का गहरा अध्ययन था। उनके निबंध, 'फिलासफी आफ हिंदुइज्म', 'ट्रायम्फ आफ ब्राह्मिज्म', 'भगवद् गीता–फिलासफिक डिफेंस आफ काउंटर रेवोल्यूशन', 'रिडल्स आफ हिंदुइज्म', 'बुद्ध एंड कार्ल मार्क्स'–इन सबका अवलोकन कर उनकी विद्वत्ता का एक निराला पहलू दृष्टिगोचर होता है।[4] तिलक, भांडारकर, न्यायमूर्ति तेलंग, पां. वा. काणे आदि धर्मशास्त्र के विवेचनात्मक अध्ययन करने वालों की श्रेणी में बाबासाहब का यह लेखन कार्य उन्हें स्थान दिलाते हुए धर्म पंडितों के लिए एक चुनौती है।

बाबासाहब का लेखन कार्य दिन रात चलता रहता था। अपने रत्तू नामक एक निजी सचिव को उन्होंने शनिवार रात्रि को, काम खत्म हो गया है, यह कहकर विदा

---

1. वली सिन्हा को भेजे गये पत्र (दि. 17-11-1955) : हाई कोर्ट के कागज
2. इस ग्रंथ के बारे में कीर अैर वाली–इन दोनों ग्रंथकारों ने लिखा है कि केवल एक अध्याय लिखना शेष रह गया था। लेकिन यह ग्रंथ हाइकोर्ट के कागजातों में भी नहीं मिला। जो निबंध तीसरे खंड में प्रसिद्ध हुआ है वह निश्चय ही यह ग्रंथ नहीं है।
3. 'रेवोल्यूशन एंड काउंटर रेवोल्यूशन'–इस ग्रंथ का प्रारूप मिला लेकिन उसके सारे अध्याय नहीं मिले।
4. इनके अलावा अस्पृश्यता के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक मसलों पर विस्तारपूर्वक विचार प्रकट करने वाले उनके लगभग तीस निबंध महाराष्ट्र शासन द्वारा प्रकाशित पांचवें खंड में सम्मिलित किये गये हैं। उनकी कई रचनाएं अधूरी रह गईं तो कुछ गायब हो गई हैं। डा. आंबेडकर का उपलब्ध लिखित वांग्मय दस हजार पृष्ठों से अधिक है।

किया। दूसरे दिन जब वह काम पर आया तो उसने देखा कि बाबासाहब सारी रात लगातार लिखते रहे थे। रत्तू के चलने फिरने की आहट से उनकी लेखन तंद्रा टूटी और वे सुबह के नित्य कर्म में लगे। 15 मार्च, 1959 को उन्होंने 'बुद्ध एंड हिज धम्म' की प्रस्तावना लिखी थी।

राज्य सभा में भाषावार प्रदेश रचना पर उन्होंने 1 मई, 1956 को चल रही चर्चा में भाग लिया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'महाराष्ट्र एज ए लिंग्विस्टिक स्टेट' में अपने सारे विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने महाराष्ट्र के अविभाज्य अंग के रूप में मुंबई की स्थिति को सबूतों के साथ स्थापित किया है। उनकी दलील थी कि मुंबई के मूल निवासी कोली लोग हैं। यह द्वीप लक्ष्मीबाई को विवाह के उपहार रूप में भेंट किया गया था। उन्होंने यह भी सुझाव दिया था कि औरंगाबाद को महाराष्ट्र की राजधानी बनाया जाये।

मई 1956 में उनका भाषण बी. बी. सी. पर प्रसारित किया गया था। उन्होंने अपनी रेडियो वार्ता में कहा, "मुझे बौद्ध धर्म, उसके तीन सिद्धांतों–प्रज्ञा, करुणा और समता–के कारण अधिक प्रिय है। ईश्वर या आत्मा समाज को उसके अधोपतन से नहीं बचा सकते। बौद्ध धर्म ही व्यक्ति और समाज को गिरने से बचा सकता है। बुद्ध की सीख ही रक्तविहीन क्रांति द्वारा साम्यवाद ला सकती है।"

उन्होंने ''वाइस आफ अमेरिका'' के रेडियो प्रसारण पर "प्रजातंत्र का भवितव्य" विषय पर भाषण दिया। अपनी इस वार्ता में उन्होंने कहा, "प्रजातंत्र के डाल-मूल उसकी शासन व्यवस्था से नहीं बनते, फिर वह प्रजातंत्र संसदीय हो अथवा संघ राज्यात्मक हो। प्रजातंत्र सामूहिक जीवन का एक प्रकार है। प्रजातंत्र का अस्तित्व इस बात पर अवलंबित है कि जिन लोगों से समाज का निर्माण होता है उन लोगों के आपसी संबंध किस प्रकार के हैं। जो लोग जातिवाद को समाप्त करने का बीड़ा उठा चुके हैं ऐसे निम्नवर्गीय समाज को ही सरकार को शिक्षा ग्रहण करने के लिए आर्थिक सहायता करनी चाहिए। तभी प्रजातंत्र की जड़ें सबल होकर वह प्रचलित होगा।"

बाबासाहब नया राजनैतिक दल स्थापित करने का विचार कर रहे थे। परंतु 'बुद्ध और उसका धम्म' ग्रंथ का प्रकाशन अति शीघ्र हो जाये, यह उनकी हार्दिक अभिलाषा थी। अपने इस ग्रंथ की विषय सूची को पुस्तिका का रूप देकर, उसे बौद्ध धर्म के प्रति रुचि रखने वाले पंडित नेहरू को भेजकर ग्रंथ के प्रकाशन के लिए सहायता देने का अनुरोध किया।

24 मई, 1956 को नरे पार्क में बुद्ध जयंती पर विशाल सभा हुई। इस सभा में उन्होंने यह घोषणा की कि वे अक्तूबर 1956 में बौद्ध धर्म का स्वीकार करने वाले हैं। उन्होंने बौद्ध धर्म की आलोचना करने वालों पर कसकर प्रहार किया। उन्होंने कहा, "जो लोग दलित समाज की सेवा करने के लिए लगन से लगे हुए हैं उन्हें ही उन लोगों

पर टीका करने का अधिकार है। हमारे लोग भोली भाली भेड़ों के समान हैं और मैं उनके गडरिए के समान हूं। मेरे पीछे चलने में ही उनका कल्याण है।" इसके बाद उन्होंने बौद्ध धर्म की विशेषताओं का विवेचन किया। "जिस तरह मोजेस ने अपने लोगों को इजिप्ट से निकाल कर उन्हें स्वतंत्र पेलेस्टाइन में बसाया, उसी तरह मैं भी आप लोगों को आजादी दिलाऊंगा।" उनके इस अभय आश्वासन के बाद अनेक वक्ताओं ने मोजेस और डा. आंबेडकर के जीवन में समानता दिखलाने का प्रयास किया।

जून से अक्तूबर तक वे दिल्ली में निवास कर रहे थे। उनकी सेहत गिरती ही जा रही थी। कोई भी उपचार उन पर असर नहीं कर रहा था। अब उन्हें धर्मांतरण करने की जल्दी थी। उन्होंने 23 सितंबर को बै. खोब्रागडे को एक पत्र भेजा। उसमें उन्होंने यह लिखा था कि वे 16 अक्तूबर को चांदा अवश्य आ रहे हैं।

55

इन्हीं दिनों बाबासाहब ने 'बौद्ध जन समिति' की स्थापना की। यह समझा जाता है कि नागपुर में वामनराव गोडबोले और उनके सहयोगियों ने अपनी शाखा शुरू की थी। नागपुर में गोडबोले ने 1950 से बौद्ध धर्म का प्रचार कार्य प्रारंभ कर दिया था। तब से ही सीताबर्डी में नवयुवकों ने उनके मार्गदर्शन में बौद्ध धर्म पर कक्षाएं चलाईं और बुद्ध के जीवन पर तीन अंकों वाला नाटक 'जगाच्या कल्याणा' रंगमंच पर खेला भी था। गोडबोले इन कार्यकर्ताओं के मार्गदर्शक थे। डाक्टर साहब ने पहले यह जाहिर किया था कि धर्मांतर समारोह मुंबई में होगा। उस समय गोडबोले ने बाबासाहब को यह जानकारी दी थी कि ऐतिहासिक दृष्टि से नागपुर कितना उचित स्थान है।[1] उसके बाद बाबासाहब ने नागपुर में दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय किया था। बाबासाहब ने गोडबोले को दिल्ली बुलवाया और उनके साथ नागपुर में इस समारोह का आयोजन करने के बारे में विस्तार से बातचीत की। बौद्ध जन समिति की ओर से एक निवेदन प्रकाशित किया गया जिससे जनसाधारण को जानकारी मिल सके। लोगों से यह निवेदन किया गया कि वे शुभ्रवस्त्र धारण कर दीक्षा ग्रहण करने नागपुर आयें।

23 सितंबर, 1956 को बाबासाहब ने समाचारपत्रों को यह निवेदन भेजा कि वे 14 अक्तूबर, 1956 को विजयदशमी के दिन सुबह 9 से 11 के बीच नागपुर शहर में बौद्धधर्म की दीक्षा ग्रहण करेंगे। इस समारोह में दीक्षा देने के लिए उन्होंने भारत के सबसे वयोवृद्ध अस्सी वर्षीय भिक्षु चंद्रमणी महास्थविर को कुशीनारा से आमंत्रित किया था। महाबोधि सोसायटी के जनरल सेक्रेटरी श्री डी. वली सिन्हा को पत्र भेजकर उन्होंने महाबोधि सोसायटी के सहयोग की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने वली सिन्हा को सूचित किया कि इस समारोह में दीक्षा की जो विधि अपनाई जायेगी, उस बारे में यदि कोई मतभेद हो तो उसे साथ बैठ कर आपस में विचार विनिमय द्वारा हल किया जा सकता है।

30 सितंबर, 1956 को दिल्ली में बाबासाहब की अध्यक्षता में कार्यकारिणी की बैठक हुई। इस सभा में तय किया गया कि एक दल की हुकूमत से प्रजातंत्र की रक्षा

---

1. गोडबोले के साथ की गई बातचीत

करने के लिए एक सशक्त विरोधी दल गठित किया जाये और उसे 'रिपब्लिकन पार्टी आफ इंडिया' नाम दिया जाये।

11 अक्तूबर को डा. साहब अपनी पत्नी और अपने निजी सचिव रत्तू के साथ नागपुर पहुंचे। उनके निवास की व्यवस्था सीताबर्डी के शाम होटल में की गई थी। होटल के सामने की महार बस्ती के सभी नवजवान कार्यकर्ता गोडबोले के मार्गदर्शन में दीक्षा समारोह की तैयारियों में लगे थे। होटल के पार्श्व में ही बौद्ध जन समिति का कार्यालय था। डाक्टर साहब के निवास स्थान पर रात-दिन कर्नलबाग बस्ती के समता सैनिक दल के सैनिक गण उनकी प्राण रक्षा के लिए पहरा दे रहे थे।

13 अक्तूबर, 1956 को संध्या समय उन्होंने दो प्रेस कांफ्रेंस लीं। समाचारपत्रों के संवाददाताओं से उन्होंने कहा, "मैंने गांधीजी को आश्वासन दिया था कि मैं हिंदू धर्म को कम से कम हानि पहुंचाने वाला मार्ग अपनाऊंगा। बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का ही अंग है।"[1] उन्होंने जवाब-सवाल में कहा, "अस्पृश्य समाज इंसानियत पाने की कोशिश कर रहा है। सहूलियतें पाने के लिए अस्पृश्य बने रहना उचित नहीं है। बौद्ध धर्म विश्व धर्म है।" उन्होंने रिपब्लिकन पार्टी स्थापित करने की भी घोषणा की।

उसी रात को फेडरेशन के कार्यकर्ताओं की सभा हुई। उसमें उन्होंने कार्यकर्ताओं को ताकीद की, "जिन्हें धर्मांतरण न करना हो, वे रुकावटें पैदा न करें।"

बाबासाहब ने स्नान वगैरह समाप्त किया। फिर वे शुभ्र बंगाली कुरता और बढ़िया महीन धोती पहनकर, महास्थविर चंद्रमणी और माईसाहब आंबेडकर के साथ ठीक नौ बजे समारोह के स्थान पर पहुंचे। चित्रकार राम तिरपुडे ने मंच के सामने सांची के स्तूप का नमूना खड़ा किया था। सामने लगभग पांच लाख नर-नारियों का जनसमूह उपस्थित था। जयजयकार समाप्त होने पर बाबासाहब ने पत्नी सहित खड़े होकर भिक्षु चंद्रमणी से त्रिसरण-पंचशील ग्रहण कर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।

मालोजी की स्मृति को प्रथम अभिवादन करने के लिए संपूर्ण जनसमुदाय दो मिनट तक स्तब्ध खड़ा रहा। उसके बाद बुद्ध की मूर्ति को शुभ्र सफेद कमलों का पुष्पहार पहनाकर बाबासाहब ने नतमस्तक होकर तीन बार वंदन किया। उसके बाद उन्होंने मराठी भाषा में त्रिसरण-पंचशील को दुबारा ग्रहण किया और स्वयं तैयार की हुई बाईस प्रतिज्ञाएं लीं। लगभग दस बजे बाबासाहब के सम्मुख उपस्थित जनसमुदाय को खड़े होने का अनुरोध कर बाबासाहब ने 22 प्रतिज्ञाएं मराठी में स्वयं पढ़कर सारे दीक्षार्थियों से बुलवाईं और उन्हें बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। यह दीक्षा विधि लगभग 11 बजे समाप्त हुई। श्री वली सिन्हा ने बाबासाहब को बुद्ध की एक मूर्ति भेंट की। सारी बाईस प्रतिज्ञाएं

1. संघरक्षित : पृ. 70

पढ़ते समय बाबासाहब ने चश्मा नहीं लगाया था, इसके लिए अनेकों ने आश्चर्य व्यक्त किया।

15 तारीख को सुबह चौदह एकड़ के उस विशाल मैदान में बाबासाहब ने दो घंटे तक ऐतिहासिक, जोश से भरा भाषण दिया। चारों ओर इतनी शांति थी कि यदि जरा भी खटका हो तो सुनाई दे जाये। अपनी गंभीर, धीरता भरी आवाज में उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करने के कारणों का विवेचन किया। उन्होंने कहा, "नागपुर विभाग में बसे हुए नागलोग बौद्ध धर्म के कट्टर प्रसारक थे। मुझे अंधभक्ति नहीं चाहिए। जिन्हें बौद्ध धर्म में आना हो वे सोच समझकर आयें। जैसे इंसान का शरीर निरोगी होना चाहिए उसी तरह उसका मन भी सुसंस्कृत होना चाहिए। व्यक्ति इस ऊंचाई तक पहुंच जाये कि उसे राजप्रसाद भी छोटा नजर आये। धर्म की गरीब व्यक्ति को आवश्यकता है।" दर्शकों को उन्होंने सरल मराठी भाषा में ऐसी अनेकों बातें समझाकर कहीं। सदा टिकने वाले अमर सिद्धांत, विद्वान धर्मप्रचारक और जन साधारण, धर्म के प्रचार के लिए आवश्यक बातें हैं। यह सब समझाते हुए उन्होंने बौद्ध धर्म की महानता का वर्णन किया।

सुबह 6 से 8 बजे के बीच नागपुर नगरपालिका की ओर से डा. आंबेडकर को मानपत्र अर्पित किया गया। उत्तर में दिये गये भाषण में डाक्टर साहब ने राजनीति में दिखाई देने वाले अधोपतन के प्रति अपना क्षोभ भरा रोष प्रकट किया। इस समारोह से पहले शाम होटल में दलित फेडरेशन के कार्यकर्ताओं की ओर से डा. आंबेडकर को चाय पार्टी दी गई। इस अवसर पर कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए उन्होंने उपदेश के दो शब्द कहे, "अन्य समदुखी जनों को हमें अपने निकट लाकर उन्हें नये दल में शामिल करना चाहिए और अपनी एकता कायम रखनी चाहिए।"

6 अक्तूबर, 1956 को सुबह बाबासाहब चंद्रपुर गये। वहां बै. खोब्रागडे ने दीक्षा समारोह का आयोजन किया था। लगभग एक लाख लोगों ने वहां बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। वहां से रेलगाड़ी द्वारा डाक्टर साहब दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

56

25 अक्तूबर, 1956 को वली सिन्हा ने जो पत्र भेजा था, 30 तारीख को उसका उत्तर देते हुए डाक्टर साहब ने लिखा, "यह एक महान अवसर था। अपेक्षा से अधिक लोग धर्मांतरण के लिए पहुंचे। साधारण जनता को बौद्ध धर्म की शिक्षा प्रदान करने के लिए क्या व्यवस्था की जाये, इस पर हमें विचार करना चाहिए। भिक्षु संघ को अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। उन्हें ईसाई मिशनरी लोगों की तरह सामाजिक कार्यकर्ता तथा प्रचारक की भूमिका निभानी होगी।"

एलफिंस्टन कालेज के शताब्दी महोत्सव के लिए प्राचार्य ने डा. आंबेडकर को समारोह में उपस्थित रहने तथा स्मारिका के लिए एक लेख प्रकाशनार्थ भिजवाने का अनुरोध किया। डाक्टर साहब ने "प्रजातंत्र क्या है और भारत में उसका क्या भवितव्य है ?" विषय पर बोलने की इच्छा व्यक्त करते हुए निमंत्रण स्वीकार किया। किंतु उनकी सेहत बहुत खराब रहने के कारण उन्होंने उन्हें सूचित किया, "इसके लिए मुझे दिल्ली से खास सफर करना होगा।"

बाबासाहब को इन्हीं दिनों काठमांडू में हो रही विश्व बौद्ध परिषद का निमंत्रण मिला। बाबासाहब 14 नवंबर, 1956 को पटना से रवाना हुए।

15 नवंबर को काठमांडू शहर के सिंह दरबार हाल में नेपाल नरेश राजा महेन्द्र ने परिषद का उद्घाटन किया। श्रीलंका के प्रसिद्ध विद्वान डा. मल्लशेखर इस परिषद के अध्यक्ष थे। बाबासाहब ने उपस्थित विद्वानों को संबोधित करते हुए कहा, "बौद्ध धर्म केवल धार्मिक विधि का धर्म न होकर सामाजिक जीवन का तत्व ज्ञान है।"

20 नवंबर को उनसे भाषण देने का अनुरोध किया गया। प्रतिनिधियों के आग्रह पर उन्होंने "बुद्ध और कार्ल मार्क्स" विषय पर बोलना प्रारंभ किया। उन्होंने कहा, "मार्क्स और बुद्ध दोनों का अंतिम हेतु समाज है। मार्क्स ने निजी संपत्ति को दुख का मूल कारण माना है, बुद्ध ने भी दुख शब्द का उपयोग संपत्ति के अर्थ में ही किया है।" बौद्ध धर्म सही मायने में किस तरह साम्यवादी है, इसका विश्लेषण करते हुए उन्होंने समझाया कि बुद्ध का मार्ग मार्क्स से भिन्न है लेकिन वह किस तरह अधिक हितकारी

है। उन्होंने कहा, "मार्क्स का मार्ग हिंसा का है, तानाशाही का है, इसलिए वह क्षणिक है। बुद्ध का रास्ता अहिंसक और प्रजातंत्रवादी है।"

काठमांडू से लौटते समय बाबासाहब ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भाषण दिया। शंकराचार्य के सूत्र 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या'—इस तत्वज्ञान का क्रम बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, "यदि ब्रह्म सत्य है और सर्वव्यापी है तो फिर शंकराचार्य ब्राह्मण और शूद्र में भेद क्यों करते हैं ? वेदांत का यह तत्व व्यवहार में उपयोग-रहित रहा है।" इसलिए उन्होंने यह प्रश्न पूछा "क्या आज के विद्यार्थी समता, स्वतंत्रता, साथीपन—इन तत्वों पर आधारित समाज रचना अपनाना चाहेंगे या पुरुष सूक्त में दर्शायी नयी ऊंच-नीच का छलावा अपनाएंगे ?"

वहां से डा. आंबेडकर सभी बौद्ध तीर्थों को देखने गये। अंत में वे भगवान बुद्ध के कुशीनारा स्थित परिनिर्वाण स्थान को देखकर 30 नवंबर, 1956 को दिल्ली लौटे।

बाबासाहब के शरीर पर बुढ़ापे की छाया गहराने लगी। अपने अधूरे कामों की याद आते ही उनका मन चिंताओं से भर जाता। दिल्ली लौटने तक वे बहुत थक चुके थे। उन्होंने अपने निजी सचिव श्री रत्तू को उस रात रुकने के लिए कहा ।

1 दिसंबर को वे मथुरा रोड पर लगी बुद्ध कला प्रदर्शनी देखने गये। प्रदर्शनी में रखी गयी वस्तुओं का उन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण किया। उनसे किसी ने प्रश्न किया कि, बुद्ध के पुतलों में विभिन्न स्थानों में अंतर क्यों है ? उन्होंने जवाब दिया, "बुद्ध के बाद छह सौ सालों तक पुतले बनाने की प्रथा नहीं थी। फिर संभवतया किसी ने उनका पुतला बनाया। उसके बाद हर देश में वहां की सुंदरता की कल्पना के अनुरूप पुतले बनाये गये।"

2 दिसंबर, 1956 को अशोक विहार में दलाईलामा का स्वागत करने दिल्ली में एक समारोह आयोजित किया गया। इस पर बाबासाहब भी उपस्थित हुए। शाम तक उन्हें खासी थकान हो गयी थी। 3 दिसंबर को उन्होंने अपने निकट व्यक्तियों के साथ फोटो खिंचवाए। रात में वे अपने बंगले के बगीचे की देखभाल करने वाले माली की तबियत देखने खुद उसके घर गये और उससे सेहत के बारे में बातचीत की। उसकी चिंताजनक हालत में उसे मौत के डर से बिलखते देखकर बाबासाहब ने रत्तू से कहा, "देखो यह मौत की कल्पना से ही कैसे भयभीत हो रहा है। मैं मौत से नहीं डरता। मौत जब आना चाहे आये, मैं उसका स्वागत करने के लिए तैयार हूं।"

19 दिसंबर को बाबासाहब मुंबई में लोगों को दीक्षा देने जाने वाले थे, इसलिए उन्होंने रत्तू को 14 तारीख को रेलवे आरक्षण करवाने के लिए कहा।

4 दिसंबर को वे कुछ समय राज्यसभा में भी उपस्थित रहे। शाम को उन्होंने अपने स्टेनो को दो चिट्ठियां भी लिखवाईं। महाराष्ट्र के विरोधी दल के दो प्रमुख नेताओं,

श्री एस. एम. जोशी और श्री प्र. के. अत्रे को लिखे हुए इन पत्रों में उन्होंने उनसे अनुरोध किया था कि वे उनकी नवनिर्मित होने वाली रिपब्लिकन पार्टी में आयें। स्टेनो ने इन पत्रों को रात 1-30 तक तैयार किया और वह वहीं रुका। दूसरी सुबह 5 तारीख को वह वहां से सीधे अपने कार्यालय गया।

शाम 5-30 रत्तू के आते ही डाक्टर साहब ने उन्हें कुछ काम टाइप करने के लिए दिया। रात कुछ जैन मुनि बाबासाहब से मिलने आये। उन्होंने जैन और बुद्ध धर्म पर बाबासाहब से चर्चा की, उन्हें 'जैन और बुद्ध' नामक किताब भेंट की। आगामी दिन के एक कार्यक्रम का निमंत्रण देकर जैन मुनि विदा हुए।

उसके बाद बाबासाहब 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि' का जाप गुनगुनाते रहे। उनके निजी सचिव रत्तू उनकी सेवा करते रहे। रात को डाक्टर साहब ने हल्का भोजन किया। जब रात में 11-15 को रत्तू घर जाने लगे तब बाबासाहब ने उन्हें बुलाकर 'बुद्ध एंड हिज धम्म' ग्रंथ की प्रस्तावना और अर्पण की टाइप्ड प्रतिलिपि लाने को कहा। साथ ही उन्होंने अत्रे तथा एस. एम. जोशी और बर्मा सरकार को लिखे पत्रों को भी मंगवाया। उन्होंने रत्तू से कहा, "मैं रात में इन सब को पढ़ लूंगा। कल तुम इन्हें भिजवा देना।"

सुबह 6.30 बजे जब माईसाहब बाबासाहब के अभ्यासकक्ष में उन्हें जगाने गईं तो उन्हें पता चला कि बाबासाहब अब इस दुनिया में नहीं रहे। उन्होंने रत्तू को लाने के लिए फौरन मोटर भिजवाई।

रत्तू ने आते ही तुरंत सभी परिचितों, कार्यकर्ताओं और केंद्रीय मंत्रियों को यह दुखद समाचार दिया। पंडित नेहरू स्वयं बंगले पर आये और उन्होंने संवेदना देते हुए खोजखबर ली। अनेक मंत्रीगण बंगले पर आकर अपनी संवेदनाएं प्रकट कर गये। एक विशेष हवाई जहाज से बाबासाहब के पार्थिव शरीर को मुंबई ले जाने का निश्चय हुआ।

बाबासाहब के देहांत का समाचार तूफान की तरह सारे भारत में फैल गया। झुंड के झुंड दिल्ली-मुंबई के लिए रवाना हो गये। बाबासाहब के राज्य सभा का सदस्य होने के कारण, राज्यसभा की बैठक स्थगित की गई।

सुबह 10 बजे से बाबासाहब के अंतिम दर्शनों के लिए 26 अलीपुर रोड में उनके बंगले पर लंबी कतार लगी हुई थी। दोपहर 2-3 बजे बाबासाहब के पार्थिव शरीर को मुंबई ले जाना तय हुआ था, लेकिन हवाई जहाज का इंतजाम होने में वक्त लगा। तब लोगों की इच्छानुसार शाम छह बजे बाबासाहब का शव ट्रक पर रखा गया। उसे फूलों से सजाया गया। हजारों लोग उस ट्रक पर बढ़ रही शवयात्रा में सम्मिलित हुए। 26 अलीपुर रोड से यह शव यात्रा दिल्ली के प्रमुख रास्तों से होती हुई पार्लियामेंट भवन तक पहुंची। तब तक रात्रि के दस बजे चुके थे। जनसमूह उमड़ता जा रहा था, लोग भागते दौड़ते साथ बढ़ रहे थे। चूंकि डकोटा हवाई जहाज रात दस बजे उड़ना था,

इसलिए विलंब को देखते हुए, लोगों से अनुरोध करना पड़ा और ट्रक को पूरे वेग से चलाकर हवाई अड्डे पर उस पार्थिव शरीर को बहुत जल्दी पहुंचाना पड़ा। वहां भी हजारों की संख्या में भीड़ जमा थी।

बाबासाहब के शव के साथ रत्तू, सोहनलाल शास्त्री, आनंद कौसल्यायन, यशवंतराव, माईसाहब—सब मिलाकर ग्यारह व्यक्ति थे जो हवाई जहाज में मुंबई रवाना हुए।

अर्धरात्रि के बाद 2.30-3.00 बजे हवाई जहाज मुंबई हवाई अड्डे पर पहुंचा। राजगृह से शांताक्रूज हवाई अड्डे तक लोग दोपहर के 1.30 से राह देखते बैठे थे। शोकाकुल लोग क्रंदन कर रहे थे, जोर जोर से विलाप कर रहे थे। शांताक्रूज से देर रात निकली हुई शवयात्रा शांति के साथ चली जा रही थी। राजगृह पहुंचते पहुंचते सूरज निकल आया। बाबासाहब का पार्थिव शरीर लोगों के अंतिम दर्शनों के लिए वहां रखा गया। लाखों लोगों को उनके अंतिम दर्शन करने के लिए दस दस घंटों तक कतार में खड़े रहना पड़ा। सात तारीख को सारी मुंबई बंद थी। सारा महाराष्ट्र ही दुखी होकर उस दिन बंद का पालन कर रहा था। दुखद समाचार सुनकर बेहोश हो जाने वालों की भी कई खबरें मिलीं। मुंबई के इतिहास में शोक और दुख का ऐसा सागर पहले कभी नहीं उमड़ा था।

दोपहर के बाद लगभग तीन और चार के बीच डा. आंबेडकर की अंतिम यात्रा प्रारंभ हुई। बाबासाहब का पार्थिव शरीर सुसज्जित ट्रक पर फूलों से आच्छादित था। सिरहाने की ओर बुद्ध की मूर्त्ति रखी हुई थी। चारों और मोमबत्तियां और अगरबत्तियां जल रही थीं। जुलूस शांति से आगे बढ़ रहा था। उत्तर मुंबई का जनजीवन ठप्प हो गया था। बाहर गांवों से लाखों लोग जिन-तिन साधनों से मुंबई पहुंचे थे। रास्ते के दोनों ओर की इमारतों से लोग फूल बरसा रहे थे। सारा वातावरण शोकमग्न था। यह अंतिम यात्रा चार घंटों बाद दादर की श्मशान भूमि पहुंची। यहां लगभग दस लाख लोगों ने[1] अंतिम दर्शन किये। रात्रि के 7.30 बजे जब यशवंतराव आंबेडकर ने चिता को अग्नि दी तो हजारों लोग फूट फूटकर रो पड़े। मुंबई के इतिहास में ऐसा अंतिम समारोह लोगों ने नहीं देखा था। चिता के समक्ष पचास हजार लोगों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।

भारत के सभी प्रमुख दलों के नेताओं और गणमान्य लोगों ने बाबासाहब को श्रद्धासुमन अर्पित किये। पंडित नेहरू, वीर सावरकर, मुंबई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, भारत के पहले राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी—सबने

---

1. नवशक्ति : 9-12-1956

डा. साहब के कार्यों की सराहना की। भारत के समाचार पत्रों ने अग्रलेख लिखकर बाबासाहब को श्रद्धांजलि अर्पित की। ब्रह्म देश के प्रधानमंत्री ऊ नू ने भी मार्मिक शब्दों में उनका गुणगान किया। अमेरिका के अखबार 'न्यूयार्क टाइम्स' ने लिखा, "सारा संसार उन्हें अस्पृश्यों के नेता के रूप में पहचानेगा, लेकिन उन्होंने भारत के संवैधानिक निर्माण में जो अमर छाप अंकित की है उसकी लोगों को अधिक जानकारी नहीं है।" लंदन के 'टाइम्स' अखबार ने लिखा, "भारत के ब्रिटिश शासन के अंतिम दिनों के राजनैतिक और सामाजिक इतिहास में उनका नाम प्रमुखता से जगमगायेगा। उनका धीरज और दृढ़ निश्चय उनके चेहरे पर सदा झलकता था। उनकी बुद्धिमानी का सानी तीनों लोकों में नहीं था, फिर भी उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता का कभी ढिंढोरा नहीं पीटा। इसका कारण यह था कि उन्हें आडंबर करना नहीं आता था।"

उपसंहार

भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन से अपने तेज में दैदीप्यमान ज्ञानभास्कर डा. आंबेडकर का अस्त हुआ। उनके देहांत से एक युग समाप्त हुआ। उन्होंने जाति की उत्पत्ति के कारणों की मीमांसा प्रस्तुत की और अस्पृश्यता को कानून के बल पर समाप्त किया। उन्होंने 'मनुस्मृति' का होमकर विषमता को ललकारा और संविधान की सुरंग लगाकर उसे नष्ट करने का प्रयास किया।

उनका ज्ञान असीमित था। उन्होंने अर्थशास्त्र में उपाधियां प्राप्त कीं। उन्होंने पाकिस्तान बनने की भविष्यवाणी की और ऐसे उपाय भी सुझाए थे जिनसे प्राण हानि न हो। उन्होंने संसद में चीनी आक्रमण की भविष्यवाणी की। प्रजातंत्र की रक्षा के लिए उन्होंने अनेक बार खतरे की जानकारी दी। वे राजनीति के दृष्टा थे।

डा. आंबेडकर ज्ञान के महर्षि थे। वेवरले निकोलस नाम के पत्रकार ने 1914 में उनकी गणना भारत के प्रथम श्रेणी के विद्वानों में की थी। परंतु उन्हें डा. आंबेडकर के धर्मशास्त्र के गहन अध्ययन की कल्पना ही नहीं थी। उनके अप्रकाशित लेखों में भी उनकी विद्वता भरी उड़ान देखकर मन स्तंभित हो जाता है। तिलक, रानाडे, भांडारकर, तेलंग—इस क्रम की विद्वत्तमाला की वे अंतिम कड़ी थे।

वे निपुण राजनीतिज्ञ थे, परंतु उनकी राजनीतिक योग्यता को विद्वत्ता की झालर लगी हुई थी। राजनीति में कदम कदम पर बेईमानी दिखने पर भी उन्होंने सत्य का पथ कभी नहीं छोड़ा। वे अभिमान से कहा करते थे कि मैंने कभी गंदी राजनीति नहीं की। वे अहिंसा के प्रवर्तक थे। उनकी यह स्पष्ट भूमिका थी कि बिना सत्य के अहिंसा का कोई अर्थ नहीं है। नींद में सुन्न पड़े रहना अहिंसा नहीं कहलाता। अहिंसा हो तो शेर की। उन्हें बलवान की अहिंसा पसंद थी। इसलिए उन्होंने बर्ट्रांड रसेल की अहिंसा का कौतुक किया है। महाड़ सत्याग्रह के समय उनके साथ बहादुर सैनिक होते हुए भी, उन पर नाहक हमले होने पर भी, उन्होंने अपने अनुयायियों को हिंसक प्रतिकार करने से बराबर परावृत्त किया था। वे राजनैतिक तत्ववेत्ता थे, साथ ही उन्होंने तत्वज्ञान में भरी राजनीति को भी सुलझाया है।

उन्होंने हर तरह से लूले, अपंग, मौन, बहरे और दृष्टिहीन अस्पृश्य समाज को

स्वाभिमान से जीना सिखाकर उसे स्वावलंबी बनाया। उन्हें किसी ने मोजेस कहा, तो किसी ने अब्राहम लिंकन, तो किसी ने बुकर टी. वाशिंगटन। इन सबकी कार्यक्षमता और समझदारी उनमें एकरूप हो गई थी। सम्राट अशोक के बाद लाखों लोगों को बौद्ध धर्म में प्रविष्ट करवाने वाले डा. आंबेडकर एकमेव महापुरुष हैं। उनकी असंदिग्ध वाकपटुता हृदय के तार छेड़ देती थी। साधारण व्यक्तियों से बातचीत करने की उनकी सामान्य भाषा और विद्वानों के सामने विद्वत्तापूर्ण भाषा। आमसभा में बोलने के लिए जब वे खड़े होते तो लाखों लोगों को खामोश कर देने वाली मोहनी उनकी वाणी में थी। लेकिन जब वे संसद भवन में सांसदों के सामने बोलते तो धुरंधर सभा-चतुर भी मोहित हो घंटों उनका भाषण सुनते ओर उनकी वाणी के प्रभाव के कारण गर्दन हिलाते। हिंदू कोड बिल पर दिये गये भाषण के समय सारी गैलरियों और दरवाजों पर लोगों की खचाखच भीड़ थी। नारियां बहुत अधिक संख्या में उपस्थित रहतीं। उनके भाषण के समाप्त होते ही दर्शक बाहर निकल आते। वे मंत्री का उत्तर सुनने के लिए नहीं रुकते थे। बै. जयकर की उपसूचना का समर्थन करते हुए उन्होंने जो भाषण दिया था उसे सुनकर तो उनके विरोधी भी उनके मित्र बन गये थे। निकोलस ने तो उनके उद्‌गारों को पिस्तौल से छूटने वाली गोलियों की उपमा दी थी। लेकिन संविधान की हर धारा को समझाकर, उनकी गुत्थियों को सुलझाकर, वे विरोधी दल के सदस्यों के कुशलता से मन जीतते थे और उनका समर्थन प्राप्त करते थे।

उनकी संगठन शक्ति और कुशलता के बारे में तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। पहले उन्होंने अस्पृश्यों में आत्माभिमान जगाने और उसका बोध पैदा कर देने वाले आंदोलनों को चलाया। फिर खेतिहर मजदूरों और मिल मजदूरों के संगठन स्थापित किये। लोगों के विचारों को झकझोरने के लिए उन्होंने अखबार चलाये। उन्होंने विरोधियों की आलोचनाओं का सामना किया। ये विरोधी भी केवल राजनैतिक ही नहीं होते थे। सनातनी हिंदू, समाज सुधारक, अस्पृश्यों में हरिजन, कांग्रेस हिंदू महासभा के नेतागण और द्वेष रखने वाले भारतीय समाचार पत्र—इन सबकी परवाह न कर उन्होंने एक अभेद्य संगठन खड़ा किया। इस शक्तिशाली संगठन को देखकर शौकतअली जैसे मुसलमानों के नेता, हिंदू महासभा के डा. मुंजे, कांग्रेस के बालासाहब खरे और वल्लभभाई पटेल, क्रांतिवीर सावरकर, इन सबने उनकी दिल से प्रशंसा की। अस्पृश्यों की एकता इतनी मजबूत थी कि 1946 के आम चुनाव में अस्पृश्यों के मतदान का अनुपात जहां 80 प्रतिशत था वहां हिंदुओं का केवल 30 प्रतिशत मतदान हुआ, यह अखबारों में छपा था।[1]

डा. आंबेडकर के आंदोलनों की उपलब्धि क्या हुई ? स्वाभिमान और स्वावलंबन,

---

1. ब्लेक क्लार्क : रीडर्स डायजेस्ट मार्च, 1950

इंसानियत की जिद, लाचारी से न जीने का निश्चय, भारतीय के नाते सारे क्षेत्रों में अधिकार प्राप्त करने का आग्रह, अपना रास्ता खुद खोज निकालने का फैसला, जो भी दिशा दिखे उससे अपना उत्कर्ष करने का निश्चय, शिक्षा और आर्थिक तथा सामाजिक समता पाने के लिए संघर्ष—यह सारी सफलताएं आंबेडकर के आंदोलन की विशेषताएं थीं। वे हमेशा कहा करते थे कि त्याग और संघर्ष के बिना सार्थकता कभी भी प्राप्त नहीं होती।

डा. आंबेडकर केवल बातूनी विचारक नहीं थे। वे किसी भी सुधार को किस तरह अमल में लाया जा सकेगा, इस पर भी खूब सोचते थे। वे देवदासियों को सिर्फ बाजारू पेशा छोड़ने की राय देकर खामोश नहीं रहे, बल्कि जिन्होंने राय मानने की तैयारी दिखाई उन्होंने उनकी शादियां भी करवा दीं।[1] उन्होंने अस्पृश्य समाज में अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने खुद भी अंतर्जातीय विवाह किया। वे सारे भारतीय अस्पृश्यों की भलाई के बारे में सोचा करते थे। श्रम मंत्री बनते ही उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाकर सारे भारतीय मजदूरों के कल्याण के लिए कानून बनवाए। इतना ही नहीं, उन्होंने अस्पृश्यों की शिक्षा के लिए भारत सरकार से छात्रवृत्तियां दिलवाईं और उच्च शिक्षा के लिए उन विद्यार्थियों को विदेश भिजवाने की व्यवस्था की।

अपनी जिदंगी का एक भी पल व्यर्थ न गंवाने वाले डा. आंबेडकर अपनी आखिरी सांस तक लिखते-पढ़ते, ज्ञान साधना करते रहे। बुद्ध की तरह वे ज्ञान के पिपासु बने रहे।

डा. आंबेडकर अपने आपको पहले भारतीय मानते थे और आखिर में भी भारतीय ही समझते थे। अपनी इस भारतीयता पर उन्होंने धार्मिकता का पुट कभी नहीं चढ़ने दिया। उनके रोम रोम में प्रजातंत्र की प्रकृति समाई हुई थी। इसीलिए उन्होंने कई निवेदन स्वयं तैयार किये थे, फिर भी उन्हें पार्टी के नाम पर ही पेश किया। वे कहा करते थे कि विभूति पूजा प्रजातंत्र में विकृति पैदा कर देती है। संसद में भी वे सतर्क रहते थे कि कहीं भी प्रजातंत्र के संकेतों का उल्लघंन न हो पाये। उन्हें जब कभी किसी दावत में जाना होता तो वे प्रधानमंत्री नेहरू को उसकी पूर्व सूचना देकर ही जाते।[2]

कश्मीर के मसले पर उन्होंने पंडित नेहरू से कहा, "मेरे लोगों को आप कश्मीर भिजवा दीजिए।"

डा. साहब को कभी भी किसी पद की लालसा नहीं रही और न ही उन्हें संपत्ति का मोह रहा। देश के ऊंचे से ऊंचे ओहदे उन्हें पेश किये गये। हाई कोर्ट न्यायाधीश का पद उन्हें मिल रहा था। राष्ट्रपति पद के लिए भी उनके नाम की चर्चा

---

1. टिपणीस, सु. गी. : महाड़ विशेषांक, मार्च 1962
2. टिपणीस, सुरवा : महाड़ विशेषांक, 1962

थी, परंतु वे कभी इन पदों को पाने के लिए लालायित नहीं हुए। जिन पदों का प्रस्ताव आया उसे उन्होंने विचाराधीन रखा और समय आने पर उन्हें ठुकरा भी दिया।

भारत में सम्मान के उच्च शिखर पर पहुंचने वाले गृहस्थ ने सतह पर रहने वाले व्यक्ति की ओर कभी दुर्लक्ष्य नहीं किया। जब वे दिल्ली में रहते थे तब अपने बंगले के लाउंज में आराम कुर्सी पर बैठकर आम खाना खाते और अपने माली को भी साथ खिलाते।[1] वे अपने आचरण से स्वयं दिखाते कि सब इंसान समान हैं। परेल (मुंबई) में रहते समय खुरदरे मोटे कपड़े पहने वे बेंच पर लेटे रहते । दामोदर हाल के प्रांगण में दो बेंचों को सटाकर उस पर अपनी घोंगड़ी (काली कमलिया) बिछाकर अथवा कुछ बिछाए बगैर ही वे सो जाते। महाड़ परिषद में उन्होंने अपने लिए अलग से खाना पकवाने की मनाही कर दी थी।[2]

डा. आंबेडकर का व्यक्तित्व तूफान के समान था। उन्होंने हिंदू समाज को सुधारने के लिए अपने विचारों द्वारा भूकंपी धक्के दिये। पंडित नेहरू ने सच ही कहा है, "डा. आंबेडकर, हिंदू समाज की दमनकारी प्रवृत्तियों के विरुद्ध किये गये विद्रोह का प्रतीक थे।"

चिढ़ना और संतप्त होना उनके स्वाभाव का एक स्थायी अंग था। अन्याय, अत्याचार और अंधश्रद्धा के विरुद्ध वे क्रोध से भड़क उठते। उन्होंने महात्मा गांधी की नीतियों पर तीव्र प्रहार किया। फिर भी उनके प्राण बचाने के लिए वे तुरंत दौड़ गये। किसी किसी अवसर पर चंडी रूप धारण करने वाले डा. आंबेडकर झट ही सब कुछ भूलकर जी भर कर हंसने लगते थे। वे कहा करते, इंसान को दिल खोलकर खूब हंसना चाहिए।

उन्होंने प्रजातंत्र को जीवन का मूल्य मानकर समाज को बदलने का प्रयत्न किया। उन्होंने समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की उपासना करने वाला, भारत से जुड़ा हुआ बौद्ध धर्म ग्रहण किया। उन्होंने राजनैतिक प्रजातंत्र को सामाजिक प्रजातंत्र बनाने का सपना चित्रित किया था। उन्होंने हजारों दरारों से भरी भारत रूपी इमारत का पुनरुत्थान करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने भारत को संविधान रूपी देवालय दिया है। उस मंदिर को संभालने का पूर्ण उत्तरदायित्व हमारा है।

---

1. शास्त्री, सोहनलाल : पृ. 24
2. प्रधान, भा. वि. : जनता विशेषांक, 1933

संदर्भ-ग्रंथ सूची

(क) हिंदी एवं मराठी

1. कीर धनंजय	(मराठी) डा. बाबासाहेब आंबेडकर	पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबइ, आवृत्ति दूसरी, 1977
	(अंग्रेजी) डा. आंबेडकर, लाइफ एंड मिशन	पॉप्युलर प्रकाशन, सेकंड एडिशन, डिसेंबर, 1962
2. केलूस्कर, कृ. अ.	डा. भीमराव रामजी आंबेडकर	जनता, विशेषांक, 1933 संपा. भा. र. कद्रेकर
3. कोसारे, हि. ल.	विदर्भातील दलित चलवलीचा इतिहास	ज्ञानदीप प्रकाशन, नागपुर, नवी शुक्रवारी, नागपुर, 1984
4. खरात, शंकरराव	दादासाहेब गायकवाड यांना डा. बाबासाहेब आंबेडकरांची पत्रे	ठोकल प्रकाशन, 62 बुधवार पेठ, पुणे 20, 1961
5. खैरमोडे, चां. भ.	डा. भीमराव रामजी आंबेडकर खंड—1	य. भी. आंबेडकर, भारत भूषण प्रिंटिंग प्रेस, गोकुलदास पास्ता रोड, दादर, मुंबई, 1952
	2) —"—खंड—2	बौद्धजन पंचायत समिति, नाना बिल्डिंग, पहला मणला, परेल, मुंबई नं. 12, 1958
	3) —"—खंड—3	प्रताप प्रकाशन, 29 ई, आंबेवाडी, गिरगांव, मुंबई 4, 1964
6. गणवीर रत्नाकर	विलायतेहून डा. बाबा साहेबांची पत्रे	राजगृह प्रकाशन, सिद्धार्थ नगर, नागपुर-17, 1976

7. गायकवाड, भा. कृ.	सत्याग्रही डा. आंबेडकर	जनता, विशेषांक, अप्रैल 1942
8. चित्रे, अनंतराव	आठवणींची मोहनमाल	जनता, विशेषांक, 1933
9. टिपणीस, सुरेन्द्रनाथ	महाडच्या स्वतंत्र्ययुद्धाची मुहूतर्तसेद	जनता, विशेषांक, 1933
10. टिपणीस, सुरेन्द्र	माझा आदर्श– डा. आंबेडकर	डा. बाबासाहब आंबेडकर कालेज, महाड़–मासिक, मार्च 1962
11. देसाई, ह. वि.	मोठयाच्यां मुलाखती	हिरजी मोहनजी प्रकाशन, मुंबई-2, 1940
12. दोंदे, एम. बी.	साहित्यिक डा. आंबेडकर	जनता, विशेषांक, 1942
13. प्रधान, भा. वि.	डा. आंबेडकर साहेबांच्या यशाचे रहस्य	जनता, विशेषांक, 1933
14. पानतावणे, गंगाधर	पत्रकार डा. बाबासाहेब आंबेडकर	अभिजीत प्रकाशन, नागपुर-22, 1987
15. फडके, य. दि.	र. धों. कर्वे	ह. वि. मोटे प्रकाशन, 3 वर्षा गली क्र. 5, डेक्कन जिमखाना, पुणे-4 14 अक्तूबर, 1881
16. बनौधा, रामचंद्र	आंबेडकर का जीवन संघर्ष (हिंदी)	325, राजापुर, इलाहाबाद, 1947
17. बोले, सी. के.	डा. आंबेडकर यांची सार्वजनीक कामगिरी	जनता, विशेषांक, 1933
18. माने, जी. बी.	डा. बाबासाहेब आंबेडकर यांचा दलित मुक्ती संग्राम (1942-45)	पी. इ. सोसायटी, आनंद भवन, दादाभाई नवरोजी रोड, फोर्ट, मुंबई, 6 दिसंबर, 1986
19. मोटे, ह. वि.	विश्रब्ध शारदा खंड–पहला	ह. वि. मोटे प्रकाशन, 3 वेस्ट व्यु, दादर, मुंबई-14
20. लठ्ठे, अण्णासाहेब	माइया विलायतेच्या आठवणी	जी. आ. तेंडोलकर, तरुण, भारत प्रेस, बेलगांव, 1936
21. शास्त्री, शंकरानंद	प्रबुद्ध भारत	विशेषांक, 14-4-1957

22. शास्त्री, सोहनलाल	बाबासाहब बी. आर. आंबेडकर के संपर्क में पच्चीस वर्ष	सिद्धार्थ साहित्य सदन, 7/54, साउथ पटेल नगर, नयी दिल्ली-8, 1975
23. सत्बोध, हुदलीकर	"सिद्धार्थ कॉलेजातील सिद्धार्थता"	जनता, आंबेडकर जयंती अंक, 14-4-1948
24. सत्यग्राही	ग्रह आणि तारे	रा. ज. देशमुख, देशमुख आणि कंपनी, 191, शनिवार, पुणे 2, 15 अक्तूबर, 1943
25. सहस्त्रबुद्धे, ग. नी.	आमचे आंबेडकर	जनता, विशेषांक, 1933

(ख) अंग्रेजी

Alva, Joachim	Men and Supermen of Hindustan	Thacker & Co. Ltd., Bombay, 1943
Ambedkar, B.R.	(1) The Evolution of Provincial Finance in British India	P.S. King & Son Ltd. Orchard House, 2-4 Great Smith Street, Westminster, 1925
	(2) Pakistan or Partition of India	Thacker & Co. Ltd., Rampart Row, Bombay, 3rd Ed. 1946
	(3) History of Indian Currency and Banking	1947
	(4) Untouchables and Indian Constitution, Indian Paper No. 4	International Secretariat, Institute of Pacific Relations, 129 East 52 St., New York, 1942
	(5) Who were the Shudras ?	Thacker & Co. Ltd. Bombay, 1947

Author	Title	Publication
	(6) Administration and Finance of East India Company	Unpublished thesis for the M.A. at Columbia University, 15.5.1915
	(7) Memorandum to Dr. Roger Luimley	
Bhagwan Das (Ed.)	Thus Spoke Ambedkar Vol. 3	Ambedkar Sahitya Prakashana, Bangalore, CA-2, West of Cord Road, 2nd Stage Rajaji Nagar, Bangalore-10, 1979
	— " — Vol. 4	— do—, 1980
Clarke, Blake—	The Victory of an Untouchable	Readers Digest, March 1950
Durgadas	Indian—From Curzon to Nehru and After	Collins, St. James Palace, London, 1969
Edgunji, M.R.	Social Insurance in India	
Hart, Dr. Henry C.	New India's Rivers	Orient Longman's Pvt. Ltd., Calcutta, 1956
Khare, N.B.	My Political Memoirs and Biography	J.R. Joshi, Butiwada, Nagpur
Moon, Vasant (Ed.)	Dr. Babasaheb Ambedkar Writings & Speeches—	Govt. of Maharashtra, Bombay
	Vol. 1	April 1979
	Vol. 2	April 1982
	Vol. 3	April 1987
	Vol. 4	Oct. 1987
Nichols, Beverley	Verdict on India	Thacker & Co. Ltd., Bombay, 1946

Philips, Dr. Godfrey E.	The Untouchables' Quest	The Livingstone Press, 42, Broadway, Westminster, London, SW 1, 1936
Pradhan, G.R.	Untouchable Workers of Bombay City	1936
Sangharakshita	Ambedkar and Buddhism	Windhorse Publications, 136, Renfield Street, Glasgow, G2, 3AU, UK, 1986
Sanjana, J.E.	Caste and Outcaste	Thacker & Co. Ltd., Bombay, 1946
Sapru, T.B.	Sapru Committee on Indian Constitutional Reforms, Appendix XI, pt LXXI	1945
Suman, R.D. (Ed)	Dr. Ambedkar—Pioneer of Human Rights	Bodhistta Publications, Ambedkar Institute of Buddhist Studies I-138, Ashok Vihar, New Delhi-110052, 1984
	(a) Lokhande G.S.— Dr. Ambedkar on the erstwhile princes	
	(b) Narayan, I & N. Upareti — Dr. B.R. Ambedkar and the Hindu Code Bill	
	(c) Zellioo, Eleanor Mao — The American Experience of Dr. Ambedkar	

(ग) रिपोर्ट्स, फाइल्स आदि

(1) National Archives, Jaikar Papers No. 37, File No. 832, Delhi.

(2) Archives Deptt., Govt. of Maharashtra, Education Deptt., Vol. 66 of 1918, Part I

(3) Report of the Committee on Univeristy Reforms, 1925-26

(4) Report of the Royal Commission on Indian Currency and Finance : Appendix 29 ; Vol. II; published by His Majesty's Stationary Office, Adastral House Kingsway, London, W.C.2 (Correspondence between the Chairman and the Hon'ble Dr. Ambedkar)

(5) Home Deptt. File No. 335 (64) II, 1928

(6) India Office Library and Records, Templewood Collection, Dr. Ambedkar's letter to Sir Sammuel Hoare, dt 21-8-1932

(7) Report of the All India Scheduled Caste Students Federation, Second Session held at Nagpur on 25-27 December 1946 ; 1947

(8) Indian Constitutional Documents (I C D), Vol. IV, Pub. A. Mukherji & Co. Pvt. Ltd., 1963

(9) The Buddha Prabha, Vol.5, II, Ed. Dharmanand Kosambi, Bombay, April 1937

(10) Jaibheem, Vol. 1-28, Special Number, 13th April 1947, Madras; Ed. O. Mahipati.

(घ) पत्र-पत्रिकाएं आदि

Bombay Chronicle
Servant of India
Indian Express
Indian Information, 1941-47

(1) केसरी (2) चित्रा (3) जनता (4) तरुण भारत (5) दलितबंधु (6) नवयुग (7) नवाकाल (8) निर्भीड (9) पुरुषार्थ (10) बहिष्कृत भारत (11) विविधवृत्त (12) सकाल (13) ज्ञानप्रकाश (14) नवशक्ति।

मॉडर्न प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।